पाठ-1
कबीरदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

1.1 भूमिका

1.2 उद्देश्य

1.3 कबीरदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन के प्रश्न-1

1.4 हिंदी साहित्य में कबीरदास का स्थान

स्वयं आकलन के प्रश्न-2

1.5 सारांश

1.6 कठिन शब्दावली

1.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1.8 संदर्भित पुस्तकें

1.9 सात्रिक प्रश्न

1.1 भूमिका :

कबीरदास भक्तिकालीन धारा की निर्गुण काव्यधारा के ज्ञानमार्गी शाखा के कवि संत कबीरदास थे। ये 15वीं सदी के एक प्रसिद्ध भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। संत कबीर हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के एक महत्वपूर्ण कवि है।

1.2 उद्देश्य

1. कबीर के संबंध में जानकारी।
2. कबीर की भाषा का बोध।
3. कबीरदास के परिवार की जानकारी।

1.3 कबीरदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय :

भक्तिकालीन धारा की निर्गुणाश्रयी शाखा के अंतर्गत ज्ञानमार्ग का प्रतिपादन करने वाले महान संत कबीर दास जी की जन्मतिथि के संबंध में कोई निश्चित मत प्रकट नहीं किया जा सकता है। प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध न होने के कारण इनके जन्म के संबंध में अनेक जनश्रुतियां एवं किंवदन्तियां प्रचलित हैं। 'कबीर पन्थ' में कबीर का जन्म काल सं. 1455 वि. (सन 1398 ई.) में ज्येष्ठ शुक्ल पथ पूर्णिमा को सोमवार के दिन माना जाता है। कबीरदास जी के जन्म के संबंध में निम्न काव्य पंक्तियां प्रसिद्ध है–

चौदह सौ पचपन साल गये चन्द्रवार एक ठाट ठये।

जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भये।।

'भक्त परम्परा' में प्रसिद्ध है कि किसी विधवा ब्राहमणी को स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद से पुत्र उत्पन्न होने पर उसने समाज के भय से काशी के समीपस्थ लहरतारा, नामक तालाब के किनारे फेंक दिया था जहां से नीमा और नीरु नाम के जुलाहा दम्पति ने उसे ले जाकर पाला पोसा और उसका नाम कबीर रखा। कबीरदास जी के जन्मस्थान के संबंध में तीन प्रकार के मत प्रचलित हैं काशी मगहर और आजमगढ़ जिले में बेहलरा गांव। लेकिन सर्वाधिक स्वीकार मत काशी का ही होता है। 'भक्त परंपरा पर्व' एवं 'कबीर पंथ' के अनुसार स्वामी रामानंद जी इनके गुरु थे। जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर दास जी की यह पंक्तियां भी करती है–

''काशी में परगट भये हैं रामानंद चेताये।''

इस कथन से इनके जन्म स्थान काशी का भी पता चलता है और इनके गुरु का नाम भी पता चलता है कि प्रसिद्ध वैष्णव संत आचार्य रामानंद जी से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की।

कबीर दास जी का विवाह 'लोई' नाम की एक स्त्री से हुआ था जिससे इनके दो बच्चे भी हुए थे जिनके नाम है कमाल (पुत्र) और कमाली (पुत्री)। कबीर दास जी का जीवन बहुत ज्यादा अभावों में गुजरा था। उनके माता पिता की अच्छी आमदनी नहीं होती थी उसी में ही इनको गुजारा करना पड़ता था।

कबीर दास अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मगहर चले गए थे। क्योंकि उस समय यह प्रथा चलती थी कि काशी में मरने पर व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा मगहर में मरने से व्यक्ति को नरक मिलता है। समाज में प्रचलित इस अन्धविश्वास को दूर करने के लिए कबीर जी अन्तिम समय में मगहर चले गए थे।

कबीर दास जी की मृत्यु के संबंध में भी अनेक मत हैं। 'कबीर पन्थ' में कबीर जी का मृत्युकाल सं० 1575 वि० माघ शुक्ल पक्ष एकादशी, बुधवार (सन् 1518 ई.) को माना गया है जोकि तर्कसंगत प्रतीत होता है। 'कबीर परचई' के अनुसार बीस वर्ष में कबीर चेतन हुए और सौ वर्ष तक भक्ति करने के बाद मुक्ति पाई अर्थात, इन्होंने 120 वर्ष की आयु पाई थी। इनकी मृत्यु के संबंध में निम्नलिखित पक्तियां प्रसिद्ध हैं –

संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा कियो मगहर को मौन।

माघे सुदी एकादशी, रलौ पौन में पौल॥

इनके शव का संस्कार किस विधि से हो इस बात को लेकर हिंदू-मुसलमानों में विवाद भी हुआ। हिंदू इनका दाह संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। फिर एक किवदती के अनुसार जब इनके शव पर से कफन उठाया गया तो शव के स्थान पर पुष्प राशि ही दिखाई दी, जिसे दोनों धर्मों के लोगों ने आधा-आधा बांट लिया और दोनों संप्रदायों में उत्पन्न विवाद समाप्त हो गया।

कबीरदास की रचनाएं :

कबीर ने कभी अपनी रचनाओं को एक कवि की भांति लिखने-लिखाने का प्रयत्न नहीं किया था। गाने वाले के मुख में पढ़कर उनका रूप भी एक सा नहीं रह गया। कबीर ने स्वयं कहा है- ''मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गह्य नहिं हाथ।''

कबीर रचनाएं इनके शिष्यों ने संग्रहित कर लिया। उसी संग्रह का नाम ''बीजक'' है। यह संग्रह तीन भागों में विभाजित है -

1. साखी
2. सबद
3. रमैनी

1. **साखी** - कबीर की साखियाँ कबीर दास जी की शिक्षाओं और सिद्धांतों का ही इसमें उल्लेख मिलता है।
2. **सबद** - यह कबीर दास जी की सर्वोत्तम रचनाओं में से एक है। इसमें उन्होंने अपने प्रेम और अंतरंग साधना का वर्णन बड़ी ही अच्छी खूबसूरती से किया है।
3. **रमैनी :** इस ग्रंथ में कबीर ने अपने दार्शनिक एवं रहस्यवादी विचारों की व्याख्या की है। इसको उन्होंने चौपाई शैली में लिखा है।

स्वयं आकलन प्रश्न-1

1. कबीर के माता-पिता का नाम बताओं।
2. कबीर की रचनाओं के नाम लिखों।

1.4 हिन्दी साहित्य में कबीर का स्थान

हिन्दी साहित्य इतिहास में संवत् 1375 से संवत 1900 तक के समय को मध्यकाल के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मध्यकाल को दो भागों में बांटा है। पूर्व मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल। पूर्व मध्यकालका भक्तिकाल तथा उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा देते हैं। कबीर जो कि मध्यकाल में भक्तिकाल की संत काव्यधारा के प्रमुख कवि है। उन्होंने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के बल पर साहित्यिक रचना की है और समाज में फैली उस समय की कुरीतियों के प्रति प्रतिरोध जाहिर कर उसे बदलने की वकालत की है। कबीर के साहित्य के अध्ययन के बाद यह पता चलता है कि उन्होंने विभिन्न धर्म और सामाजिक विसंगतियों, अधविश्वासों पर अघात किया है। उन्होंने किसी भी धर्म को बख्शा नहीं है। उन्होंने मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्र, व्रत, अवतारवाद, पशु-बलि, जाति भेद आदि का खुलकर विरोध अपनी समाज के प्रति जिम्मेदारी का निर्वहन किया है। भक्तिकाल के समय विशेष में उन्होंने अपनी आवाज को बुलंद की है। वर्तमान में भी उनके साहित्य कालजयी बना हुआ है। एक क्रांतिकारी कवि के रूप में, एक समाज सुधारक के रूप में उनका साहित्य पाठकों को प्रेरित करने तथा प्रेरणा के रूप में कार्य कर रहा है। इससे उनके महत्व को समझा जा सकता है।

मध्ययुग : एक परिदृश्य

हिंदी साहित्य का अध्ययन विद्वत परंपरा में लगभग 14वीं सदी के आरंभ से लेकर 19वीं सदी के अंत तक माना गया है। लगभग 500 वर्ष के इस कालखण्ड को पूर्व मध्यकाल (भक्तियुग) एवं उत्तर-मध्यकाल (रीतियुग) कहकर भी संबोधित किया गया है। यह विशाल कालखण्ड हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं दार्शनिक, जातीय राजनैतिक, भाषिक, भावात्मक, साम्प्रदायिक, सामती, राजसी एवं जनान्तिक प्रवृत्तियों का ऐसा परिदृश्य प्रस्तुत करता है जो इस दौर के शुद्ध इतिहास में नहीं मिलता और जो भारत को सतत् परिवर्तनशील परंपरा के उन घटकों/बिदुओं को उभारता है, जिसके फलस्वरूप इस देश में एक महत्त मानवीय संवेदना के आधार पर जनवादी, मानवतावादी वैष्णव सामाजिकता और गंगा-जमुनी तहजीब से परिप्लुत एक सर्वधर्म समभावमूलक सामाजिक संस्कृति ने जन्म लिया, विस्तार पाया और विश्व को एक ऐसा समत्ववादी सहअस्तित्वमूलक राष्ट्रदर्शन दिया, जो अपने आप में अपनी विलक्षणता और सदाशयी सनातनता के कारण चिर होते हुए भी नित नवीन सिद्ध हुआ।

मध्यकाल का हिंदी साहित्य निराशा, जुगुप्सा, अस्थिरता, पराजय बोध और हताशा का काव्य नहीं है। यह काव्य उत्कट आशा, अभिलाषा, प्रभुभक्ति, विश्वास, सदाशयता, मासूमियत, निष्ठा, लोक कल्याण, लोकसंग्रह, नैतिकता, सामाजिक सद्भाव, कर्मठ सक्रियता, निष्काम भक्ति-योग और साम्प्रदायिक सामरस्य का काव्य है।

मध्ययुग के हिंदी कवियों और आचार्यों ने अपने युग को जीने का मकसद दे दिया। उन्होंने जोवन से भागना नहीं सिखाया। अपितु जीवन की समरभूमि के दलदल में धंसकर भी कीचड़ से खिलते शतदल को, पल्लवित और पुष्पित होना सिखाया। मध्ययुगीन काव्य ने अलौकिक प्रभावोत्पादकता, राष्ट्रव्यापी समन्वय भावना तथा जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति रचनात्मक सामाजिक जागरुकता के कारण साहित्यिक गरिमा की उन बैकुंठी ऊंचाइयों को छू लिया कि इस युग का साहित्य अपना उदाहरण आप ही बन गया।

मध्ययुग के काव्य में ऐसे राष्ट्र की अवधारणा पर बल दिया गया जो शक्ति, शील और सौन्दर्य अर्थात् सत्यम-शिवम् का समन्वित रूप हैं। मध्ययुग में भी भक्ति आंदोलन की अहम् भूमिका रही है। भक्ति आंदोलन नर को नारायण की ओर उन्मुख करने वाला एक आत्मशोधन एवं आत्मचिंतनमूलक, लोक कल्याणकारी गुणों से युक्त संश्लिष्ट एवं सामासिक-सामाजिकता की प्रतिष्ठापना करने वाला आंदोलन था। यह आंदोलन अखिल भारतीय स्तर पर प्रसारित हुआ। देश के लगभग सभी क्षेत्रों में वहां की क्षेत्रिय भाषाओं में भक्तिपरक साहित्य विपुल मात्रा में रचा गया। ये भक्त कवि इतने लोकप्रिय हो गये कि आज भी विश्व के प्रमुख कवियों में कुछेक भक्तिकालीन कवियों की गिनती होती है। जिनके काव्य आज भो पाठकों के गले का हार है। इन्हीं भक्तिकालीन कवियों में से तीन विशिष्ट कवियों कबीरदास, तुलसीदास और सूरदास को पाठयक्रम में अध्ययन हेतु चयनित किया गया है जिनका संक्षेप में किन्तु गहनतर आलोचनात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

समाज-सुधारक कबीर-

हिन्दी भक्तिकाव्य के सन्त कवियों में कबीर का स्थान सर्वोच्च है। उनके काव्य में रहस्य-भावना, समाज सुधार तथा भक्ति का अद्‌भुत संगम है। यद्यपि कबीर-काव्य का मुख्य लक्ष्य अध्यात्म-विचार है, कविता-रचना या समाज-सुधार नहीं तथापि उनकी वाणी में तत्कालीन समाज का चित्र अपने यथार्थ रूप में अंकित हुआ हैं। इतना ही नहीं, कबीर ने अपनी वाणी में अपनी सामाजिक विचारधारा को भी व्यक्त किया है, इसलिए कबीर को समाज-सुधारक भी कहा जा सकता है। कुछ समीक्षकों ने उन्हें इस दृष्टि से क्रान्तिकारी माना है और कुछ इन्हें प्रगतिशील भी कहते हैं। उनकी सामाजिक विचारधारा के आधार पर डॉ. विजेन्द्र स्तानक उन्हें मानवतावादी कहते हैं 'कबीर ने खण्डनात्मक शैली में जो कुछ कहा, उसमें मानवतावाद की पुकार है।' इस प्रकार कबीर को मानवतावादी कहें, चाहे प्रगतिशील क्रान्तिकारी समाज-सुधारक, इतना तो निश्चित है कि कबीर ने समसामयिक समाज में प्रचलित भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास और मिथ्या-प्रदर्शनों पर तीव्र प्रहार है। कबीर इसे अपना कर्त्तव्य भी समझते थे।

कबीर के युग में भारतीय समाज में हिन्दू और मुस्लिम, दो विरोधी धर्म और संस्कृतियाँ विद्यमान विरोध, अनाचार और भ्रष्टाचार फैला हुआ था। धर्म उस समय साम्प्रदायिकता का ही पर्यायवाची हो गया था। धर्म के नाम पर उस युग में अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, बाह्याडम्बरों एवं मिथ्या-प्रदर्शनों का बोलबाला था। समाज में कोई उचित व्यवस्था नहीं रही थी और उसमें रूढ़िवादिता ही प्रमुख रूप धारण कर चुकी थी। कबीर ने अपने समय में प्रचलित सभी सम्प्रदायों, विशेष रूप से हिन्दू और मुस्लिम धर्म की परख की। उन्होंने इन धर्मों का सार ग्रहण किया और निरर्थक रूढ़ियों का तीव्र खंडन किया। कबीर को हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मणों के मिथ्याभिमान से तीव्र घृणा थी। उन्होंने सखियों और पदों में इसकी तीव्र आलोचना की है और हंसी भी उड़ाई है। ब्राह्मण और शूद्र में उन्हें किसी प्रकार का अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। कबीर के अनुसार ब्राह्मणों की धमनियों में कभी दूध नहीं बहा करता, जहाँ शूद्रों की नसों में केवल रक्त-संचार होता दिख पड़ता हैं एक ही परमात्मा द्वारा सृजित होने के कारण कबीर की सभी मनुष्यों में किसी प्रकार का भेदभाव मान्य नहीं था। कबीर कहते हैं कि सभी प्राणी एक ज्योति से उत्पन्न हैं, तो फिर ब्राह्मण तथा शूद्र का अन्तर किसी भी प्रकार से उचित नहीं है- 'एक ज्योति से सब उत्पन्न, का वामन का सूदा।' जाति-पाति की कट्टरता को कबीर सामाजिक हित के लिए विरोधी मानते हैं और भक्ति के क्षेत्र में तो इस सर्वथा त्याज्य कहते हैं। इसलिए कबीर कहते हैं- 'जात न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।' ईश्वर-भक्ति पर किसी एक जाति या व्यक्ति का अधिकार नहीं। जो ईश्वर का भजन करता है, वही भक्त है - जात पात पूछो नहीं कोय। हरि कौ भजे सो हरि का होय।

कबीर हिन्दू और मुसलमान में भी कोई मौलिक अन्तर नहीं मानते। वे सभी मनुष्यों को इसलिए एक समान समझते हैं, क्योंकि सारा जगत एक ही मिट्टी, पवन और ज्योति से बना है। भगवान् ने जन्म से न किसी की ब्राह्मण बनाया है न शूद्र न हिन्दू, न मुसलमान। इस प्रकार कबीर मानव-मात्र की एकता को स्वीकार करते है। हिन्दू-मुसलमान तथा ब्राह्मण और शूद्र का भेदभाव सन्त कबीर को किसी प्रकार भी मान्य नहीं। डॉ. स्नातक के शब्दों में ''जन्मजात जाति को कबीर ने स्वीकार नहीं किया। सदैव उनकी वाणी में यही स्वर गूंजता रहा कि हम सब हरि की निर्मल ज्योति के स्फुलिंग है इसमें न तो प्रकाश का भेद है और न वर्ण का।''

धार्मिक-सुधार और समाज-सुधार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म-सुधारक को समाज-सुधारक और समाज-सुधारक को धर्म-सुधारक होना ही पड़ता है। कबीर ने हिन्दू और इस्लाम धर्मों के पाखण्डों और अन्य रूढ़ियों का खण्डन किया है। एक ओर कबीर हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा का खण्डन करते हैं, तो दूसरी ओर मुसलमानों की नमाज, रोजा आदि पर करते हैं-

पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजू पहार।
ताते घर की चकिया भली, पीस खाय संसार॥
कंकड़ पत्थर जोड़ि के, मस्जिद लई बनाय।
ता पर मुल्ला बांग दै, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

वस्तुतः इस खण्डन-पद्धति को अपनाकर कबीर ने लोगों की अंधविश्वासों से मुक्त करने का प्रयत्न किया था। बाबू श्यामसुन्दर दास लिखते हैं ''मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजियेदारी और हिन्दुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मन्दिर सबका उन्होंने काव्य विरोध किया है। कर्मकाण्ड की उन्होंने भरपेट निन्दा की है। इस बाहरी पाखण्ड के लिए उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को खूब फटकारें लगाई हैं।

कबीर ने जहाँ समाज और धर्म के पाखण्डों और अन्धविश्वासों का खण्डन किया है, वहां समाज-सुधार के लिए (व्यक्ति के हित के लिए) उन्होंने नैतिक आदर्शों का भी प्रतिपादन किया है। उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि की निन्दा की है तथा डॉ. कंचन, कामिनी आदि की भर्त्सना की है, वहां सत्य, दया, प्रेम, परोपकार सत्संगति आदि का महत्त्व भी बतलाया है। परोपकार को वे सन्त (पीर) का पहला लक्षण मानते हैं।

कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।

जो पर पीर न जानई, सो का फिरवे पीर॥

कबीर ईश्वर-भक्ति के लिए प्रेम को महत्त्व देते हैं सच्चा भक्त प्रेम के लिए सब कुछ उत्सर्म करने को तैयार रहता हैं इसीलिए कबीर प्रेम की प्राप्ति के लिए कहते हैं-

'सीस उतारे भुई धरै तब बैठे घर माहि।'

वस्तुतः कबीर समदर्शी सन्त एवं महात्मा थे। **'लोहा कंचन सम करि जानै ते मुरत भगवाना'** उनका आदर्श था। सभी प्रकार के ऊँच-नीच, भेदभाव अथवा वैषम्य से रहित व्यक्ति ही सच्चा समदर्शी हो सकता है और वही 'सत्य के मार्ग चल सकता हैं कबीर को न हिन्दुओं से घृणा थी, न मुसलमानों से। वे दोनों को मूलभूत एकता को स्वीकार करते हैं। हां उन्हें दोनों के पाखंड से नफरत थी। इसीलिए उन्होंने उसमें सुधार के लिए उनकी कड़ी आलोचना की है, किन्तु जहां कोई अच्छाई या सार तत्व हो, वह कबीर का ग्राह्य था ही-

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।

सार-सार को गहि रहे, थोथा देत उड़ाय॥

कबीर मानते हैं कि धर्म का मार्ग संसार के कृत्रिम भेदभावों से सर्वथा रहित है। हिन्दू और मुसलमान, दोनों उसका मर्म नहीं समझ सके। उन्होंने ऊँच-नीच के भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाई और मानव मात्र को एकता पर बल दिया। कबीर की यह समदृष्टि सार्वभौमिक बना देती है। कबीर जिस मानवीय एकता के पक्षधर थे, उसमें धर्म एक है, राम-रहीम एक है, हिन्दू-मुसलमान एक हैं-

हिन्दू तुरुक की एक राह है सतगुरु इहै बताई।

कहै कबीर सुनो हो सन्तो राम न कहेउ खुदाई॥

इस प्रकार कबीर को हम क्रान्तिकारी, प्रगतिशील एवं मानतावादी धर्मगुरू और समाज-सुधारक कह सकते हैं। रामकुमार वर्मा इस दिशा में कबीर के प्रभाव और योगदान का मूल्यांकन अक्षरशः सत्य करते हैं **''कबीर ने शताब्दियों की संकुचित चितवृत्ति को परिमार्जित कर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अधिक उदार बना दिया यही उनकी विशेषता है। उन्होंने समाज में क्रान्ति सी उत्पन्न कर दी थी। धर्म के नाम पर किए गए अनाचार का विरोध कर जनसाधारण की भाषा द्वारा समाज को जागृत करने के कबीर का स्थान सर्वप्रथम है।''**

कबीर की प्रासंगिकता

संत कवि कबीर और इनका काव्य आज तदयुग से भी ज्यादा महत्व रखता है क्योंकि कबीर ने अपने युग के समाज-में जो बुराइयां देखी उनके विरोध में डटकर खड़े होकर जो यथार्थ प्रकट किया वह आज के युग में उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है और भी अधिक उग्र रूप में है। वस्तुतः कबीर तदयुग की अपेक्षा अब ज्यादा प्रासंगिक नजर आते हैं। उन्होंने जीवन की सच्चाई को प्रकट करने का प्रयास किया था और वे सफल भी रहे हैं उनको सामाजिक विचारध ारा के आधार पर डॉ. विजयेन्द्र स्नातक उन्हें मानवतावादी कहते हैं। अगर हमें यह ज्ञात करना है कि कवि में समाज चेतना का भाव है या नहीं उसके लिए निम्नलिखित बातों को आधार बनाना पड़ेगा। 1. समसामयिक यथार्थ की पहचान कवि में है या नहीं। 2. सामाजिक व्यवस्था की पहचान है कि नहीं। 3. समसामयिक राजनीति की पहचान है कि नहीं। 4. जनसम्बद्धता में उत्पन्न मूल्य वृत्ति उसमें है या नहीं।

कबीर के युग में भारतीय समाज में हिन्दू और मुस्लिम दो विरोधी धर्म और सांस्कृतियां विद्यमान थी। देश में विरोध, अनाचार और भ्रष्टाचार फैला हुआ था। कबीर ने सदैव समाज की बुराइयों को दूर करके चेतना लाने का प्रयास किया है। अगर कबीर इस काम में संलग्न न होते तो लोधी इन्हें मरवाने का प्रयास नहीं करता। कबीर राजनीति में शासकों के नहीं जनता के पक्षधर रहे है तभी वे **'संतों भाई'** कहते हैं। कबीर ने अपने समाज में पढ़े लिखों का पर्दाफाश

किया कि कैसे वे अनपढ़ समाज को लूट रहे है, तभी वे ब्राह्मणों और मुल्लाओं को उनके प्रपंच के लिए लताड़ते हैं। तू ब्राह्मण हौं कासी का जुलाहा चीन्ह न मोर ते गियाना।

कबीर का स्वर चुनौती का स्वर है, जिसमें विद्रोह का, ओज का स्वर विद्यमान है। कबीर ने समाज में जो देखा उसमें नाना प्रकार की विषमताएं थी। वर्णाश्रम का विकृत रूप सामने था। उन्होंने व्यक्ति की उच्चता का आधार सदाचार एवं साधना को ही माना, न कि उसके जन्म कुल को। कबीर उच्च कुल के न थे किन्तु उन्हें अपने सदाचार एवं भगवत् प्रेम पर स्वाभिमान था। इसलिए वे उच्चकुलोद्भव पंडितों से तर्क करते समय यह बता देते थे कि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो, तो नारद, व्यास का प्रमाण देखो, शुकदेव से जाकर पूछा लो। कबीर का मत था कि मनुष्य सभी समान हैं। उच्चकुलाभिमानी ब्राह्मणों को अकाट्स तर्क देते हुए उन्होंने कहा-जिस तरह और लोग जगत में आते हैं उसी तरह तुम भी आते हो। अन्यों से तुम श्रेष्ठ होते तो किसी अन्य विधि से उत्पन्न होते-

जो बाम्हन तुम ब्राम्हनी का जाया।

और राह तें काहे न आया।

कबीर ने हिन्दू धर्माधिकारियों की तरह इस्लामी धर्माधिकारियों-मुल्लाओं, काजियों की भी आलोचना करते हैं।

कबीर जात-पात, कुल-वंश, रक्त के आधार पर मनुष्य में अंतर के विरूद्ध है उनके अनुसार सबसे पहले अल्लाह ने जो प्रकाश उत्पन्न किया उससे समस्त जगत निर्मित है फिर कौन अच्छा-बुरा, छोटा-बड़ा हो सकता है।

अव्वलि अल्ला नूर उपाया कुदरति के सब बंदे।

एक नहीं ते सब जग उपजा कौन भले कौन मंदे।।

'एक ज्योति से सब उत्पन्न का वामन का सूदा' का विचार रखने वाले कबीर जाति का भेद कराने वालों को गाली देने से भी नहीं चूकते। वामन से कूता भला। इनके अनुसार भगवान की भक्ति इनकी (ब्राह्मणों और मुल्लाओं) जागीर नहीं है, वह सभी के लिए स्वतंत्र हैं, समान है, तभी कहते हैं -

जाति पति पूछै नहिं कोई।

हरि को भजै सो हरि का होई।।

आज यही समस्या हमारे समक्ष विकराल रूप में विद्यमान है। चाहे शूद्र उच्च शिक्षा, विचार वाला हो और ब्राह्मण व्यभिचारी फिर भी समाज शुद्र को ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आज चाहे जाति भेद का नारा लगाने पर जेल का रास्ता है, शूद्र वर्ग को समान बनाने के लिए समान अवसर उपलब्ध है फिर भी आज जाति भेद के पीछे खून बह रहा है। इसीलिए आज कबीर फिर प्रासंगिक नजर आते हैं। उनकी फटकार भरी वाणी को आज पुनः आवश्यकता जान पड़ती है।

कबीरदास धन जोड़ने की प्रवृत्ति के भी तीव्र विरोधी हैं। वे उतना ही धन चाहते हैं कि कुटुम्ब लिए पर्याप्त हो। अपने पेट भरने के साथ साथ अतिथियों का भी सत्कार हो सके-

साई इतना दीजिए जामे कुटुम समाइ।

मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाइ।।

जो व्यक्ति धन कमाने के चक्कर में रहता है। वह राम को भूल जाता है, वह असफल है। तन और धन का गर्व करना मूर्खता है। हैं। कबीरदास प्रायः धनिकों एवं ऐश्वर्यशालियों को ही काल का भय दिखलाते हैं-

चारि दिन अपनी नौबति चलै बजाई।

इतंकु खटिया गडिले मटिया संगि न कछु लै जाइ।।

इससे स्पष्ट है कि धन, ऐश्वर्य और सांसारिक सफलता उनकी दृष्टि से मूल्यहीन अथवा निरर्थक है। आज यही सोच समाज की मांग है क्योंकि जमाखोरों, काला बाजारियों, पूंजीपतियों ने धन को व्यर्थ में अज्ञानतावश अपनी तिजोरियों में घर अर्थव्यवस्था तो चरमरायी ही है साथ ही समाज में विषमता बढ़ गई। अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब

होता जा रहा है। इसी आर्थिक विषमता के कारण गरीब का अस्तित्व कैसे धूमिल हो जाता है, उसके मूल्य-मान मर्यादाएं कैसे ढह जाती है। सबका निचोड़ वे इस प्रकार देते हैं-

निर्धन आदर कोई न दे।

लाख जतन करे कोडउ चित न धरेइ॥

कबीर ने अपने युग में फैले कर्मकांड, बाह्याडम्बर, अंध विश्वास पर अपने विचारों की करारी चोट मारी है। वे मुसलमानों के रोजा रखने की क्रिया पर व्यंग्य कसते हैं क्योंकि इसी की आड़ में हिंसा जैसा घिनौना कर्म करते हैं-

दिन को रोजा रखत है रात हनत है गाय।

यह खून वह बंदगी कैसी खुसी खुदाय॥

हिंदुओं के मूर्तिपूजा, अवतार भावना, माला जाप, तिलक छाप, मुंडन आदि अनेक कर्मकांडों पर कबीर अपनी तीखी प्रतिक्रिया देते हैं

माला फेरत जुग भया फिर न मनका फेर।

कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर॥

इन्हीं तिलकधारियों, छापाधारियों, मुंडनकारियों ने समाज में एक असारता ला दी थी। लोगों का रूप वीभत्स हो गया था। ऐसे ढोंगियों, साधुओं, सन्यासियों पर हंसते हुए वे कहते हैं

मूंड मुँडाए हरि मिले सब कुछ लेइ मुडाँए।

बार-बार के मूंडते भेड़ न बैकुंठ जाए॥

इसी प्रकार वे मुसलमानों के मांस भक्षण पर अपनी दृष्टि रखते हैं। हिंसा करने वालों पर, जीव हत्या करने वालों पर तों के माध्यम से भय स्थापित करते हैं कि शायद ये सही मार्ग पर आ जाएं-

बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल।

जे जन बकरी खात है तिनको कौन हवाल॥

वर्तमान युग में धर्म, आस्था, रीति-रिवाज आदि के नाम पर ऐसे अनेक कर्मकांड, बाहयाडम्बर हिंसा की प्रवृत्तियां आज भी विद्यमान हैं। ऐसे में कबीर का स्वर प्रासंगिक ही नजर आता है। कबीर ने अपने युग में दहेज प्रथा को देखा कि किस प्रकार लोग लड़का-लड़की बेच रहे हैं इस बनिज वृत्ति पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं- कोई लखिका बेचई लरको बैचइ कोइ। तदयुगीन बाप बेटे के आंतरिक यथार्थ को कबीर ने अभिव्यक्ति दी है, जो आज भी सार्थक व सही है - जीवत पितर न माने कोई श्राद्ध करे मरत पर सोइ।

वर्तमान युग में मद्यपान की समस्या विकराल रूप में विद्यमान है। जिससे मानव दिग्भ्रमित है। ऐसे में भी कबीर की वाणी प्रासंगिक नजर आती है क्योंकि कबीर ने अपने समय में नशा आदि पर भी अपने पाषाण प्रहार किए हैं।

भांग माचुली सुरापान जो जो प्राणी खाहीं।

तीर्थ व्रत नेम किए ते सब रसातल जाही॥

कबीर ने कहा कि समाज में वही श्रेष्ठ है जो अपने से दीन हीन के हित में लगा है-

सूरा सो पहचानियो जो लडे दीन के हेत।

वस्तुत: कबीर ने अपने समाज को बहुत बारीकी से देखा। उन्होंने अपने समाज में जो विषमताएं, समस्याएं देखी उन पर उन्होंने अपने अनुभव और विचार व्यक्त किये। उनके ये विचार आज भी तद्‌युगीन की अपेक्षा ज्यादा प्रभावी जान पड़ते हैं, आज प्रासंगिक हैं। कबीर की दृष्टि में श्रेष्ठ समाज के निम्न गुण होने चाहिए -

- जिस समाज में जाति भेद, धर्म भेद न हो।
- मुल्ला, काजी, पंडित का शासन न हो।
- मंदिर, मस्जिद न हो।
- बाह्याचार, कर्मकांड, जपतप, ढोंग न हो।
- लोग अपनी गलतियां पहचाने।
- लोगों में मानवीयता हो।

इन्हीं कारणों से 'ढाई आखर प्रेम' को प्रधानता देने वाले कबीर कवि की अपेक्षा समाज सुधारक की संज्ञा से पुकारे जाते हैं उनका काव्य आज भी प्रासंगिक है, समाज को अज्ञान की नींद से जगाने वाला है।

स्वयं आकलन प्रश्न-2

1. कबीर के गुरू का नाम क्या था ?
2. कबीर दास का जन्म कब और कहां हुआ था ?
3. कबीर दास के माता पिता का क्या नाम था?
4. कबीर दास की मृत्यु कब और कहां हुई थी?

1.5 सारांश :

कबीर एक सच्चे समाज सुधारक थे। उनका मार्ग सत्य का मार्ग था। वे ढोंग तथा अन्धविश्वास को समाप्त करना चाहते थे। कबीर नैतिक मूल्यों के पक्षधर ऐसे सन्त कवि थे, जो जनता के पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं।

1.6 कठिन शब्दावली :

मासि - स्याही। कागद - कागज। जेठ - ज्येष्ठ मास। छुऔ - छुना। गह्यो - ग्रहण करना।

1.7 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर :

1. उत्तर - नीरू और नीमा।
2. उत्तर - साखी, सबद, रमैणी।

अभ्यास प्रश्न-2

1. उत्तर - संत रामानंद।
2. उत्तर - 1398 ई. में उत्तर प्रदेश के वाराणसी के लहरतारा नामक स्थान में हुआ था।
3. उत्तर - कबीर के माता-पिता का नाम नीमा और नीरू था।
4. उत्तर - कबीरदास की मृत्यु संवत् 1575 वि० (सन् 1518 ई.) को मगहर, उत्तर प्रदेश में हुई थी।

1.8 संदर्भित पुस्तक :

1. श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली।

2 अभिलाषा दास - कबीर व्यक्तित्व और कर्तृत्व।

1.9 सात्रिक प्रश्न :

1. कबीर दास का जीवन परिचय कैसे लिखें।
2. कबीर दास की रचनाओं का जीवन परिचय लिखें।

****

पाठ 2
कबीर दास : काव्यगत विशेषताएं

संरचना

2.1 भूमिका

2.2 उद्देश्य

2.3 कबीर दास : काव्यगत विशेषताएं

2.3.1 भावपक्ष

2.3.2 कलापक्ष

स्वयं आकलन प्रश्न–1

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न

2.1 भूमिका :

कबीर के काव्य सृजन का उद्देश्य भव्य कविता करना नहीं बल्कि अपनी अनुभूतियों का शब्दांकन करना था। वह मूलत: सन्त थे और उन्होंने आध्यात्मिक साधना हेतु ही वाणी का माध्यम ग्रहण किया। उनकी आध्यात्मिक साधना एक और तो अगोचर, अगम्य, परब्रह्म से साक्षात्कार को संकल्पित है व दूसरी और इसी आध्यात्मिक साधना ने अद्वैतवाद के व्यावहारिक रूप से समाज में व्याप्त कदाचार व कुरीतियों को समूल नष्ट करने का निश्चय किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कबीर ने कभी काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, तथापि उनके आध्यात्मिक रस की नगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में रस इकट्ठा नहीं हुआ था।

कबीर के काव्य में पौरुष सहज ही झलकता है। कबीर ऐसे कवि बिरले थे जो अपने संकल्प, अनुभूति के प्रति निष्ठा भाव रखते थे। कबीर हिन्दी काव्य के वह सूत्रधार थे जिन्होंने कविता को आम जिन्दगी का दर्पण बनाया तथा समाज और धर्म को अपने वर्ण्य विषय का केंद्र बिन्दु चुना।

2.2 उद्देश्य :

1. कबीर के काव्यगत विशेषताओं की जानकारी।
2. कबीर की काव्य भाषा की जानकारी।
3. कबीर के शिल्प पक्ष की जानकारी।

2.3 कबीर के काव्य की विशेषताएं

कबीर के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

• **निर्गुण की उपासना :** सभी संत कवि निर्गुण के उपासक है। उनका ब्रह्म अविगत् है। उसका न तो कोई रूपाकार है एवं न निश्चित आकृति। वह तो अनुपम, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वसुलभ हैं। घट-घट में बसता है तथा ब्राहोन्द्रियों से परे है। स्वयं सन्तकवि कबीर के शब्दों में-

'जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पहुप बास से पातरा, ऐसा तत्त अनूप॥

• **गुरु-महिमा :** कबीर ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। उन्होंने गुरु को सर्वोपरि माना है, सच्चा गुरु ही ब्रह्म से मिलाता है।

''सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उधाड़िया, अनंत दिखावण हार॥

गुरु के रूठने पर व्यक्ति की सद्गति असंभव है।

हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहिं ठौर।

• **बौद्धिकता की प्रधानता :** कबीर का काव्य असाधारण है। उनका समूचा जीवन सांसारिक वृत्तियों तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने में गया। उनका काव्य सायुक्त व मौलिकता से परिपूर्ण है। उन्होंने कविता लिखने के लिए मात्र शब्दों का चयन नही किया, बल्कि उन शब्दों का चिन्तन व मन्थन किया। तत्पश्चात उसे काव्य में प्रयुक्त किया। इस प्रकार उनका काव्य भावुकता से परे बुद्धि तत्व की प्रधानता लिए हैं।

• **नारी के प्रति दृष्टिकोण :** संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके विश्वासानुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियां है। कबीर का कहना है कि-

''नारी की झाई पतर, अन्धा होत भुजंग।
कबीरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग॥''

जहां इन्होंने नारी की इतनी निन्दा की है वहीं दूसरी और सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी की है। कबीर ने कहा है-

''पतिव्रता कैसी भली, काली कुचित वुरूप।

पतिव्रता के रूप पर, बारो कोटि सरूप॥''

• रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध : प्राय: सभी संत कवियों ने रुढ़ियों, मिथ्याडम्बरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इन्होंने मूर्ति पूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हज्ज आदि विधि विधानों, बाह्याआडम्बरों, जाति-पाति भेद आदि का हटकर विरोध किया हैं।

• निर्गुण ब्रह्म के उपासक : कबीर निर्गुण ब्रह्म के सच्चे उपासक थे। उन्होंने निराकार ब्रह्म को भी राम! नाम से अभिहित किया है, उनका राम निराकारे।

परमब्रह्म है दशरथ पुत्र राम नहीं-

''दशरथ सुत तिहुँ बरवाना।

राम नाम का परम है आना॥

उनके निराकार ब्रह्म का कोई मुख माथा रूप कुरुप नहीं है एक अनुपम तत्व है-

''जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूपकुरूप।

पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनुप॥''

• उलटबांसियां : कबीर के काव्य में उलटबांसी पद्धति उल्लेखनीय है। इनमें लोक-विपरीत बातें कही गई हैं। ऊपरी अर्थ बोध होने पर इन लोक विरुद्ध बातों की प्रस्तुति से श्रोता अथवा पाठक को आश्चर्य होता है। लेकिन इन प्रतीकों के आध्यात्मिक अर्थो का जब उघ्द्घाटन होता है तब हमें यह असंगत अथवा विरोधमूलक प्रतीक नहीं होती। कबीर के काव्य में अलंकार प्रधान उलटबांसी, प्रतीक प्रधान उलटबांसी व अद्‌भुत रस प्रधान उलटबांसी के दिग्दर्शन मुख्यत: होते हैं।

• तत्व चिन्तन का स्वरूप : संत कवि मूलत: दार्शनिक थे फिर भी उनकी भक्ति रस से सिक्त बनियों में दार्शनिक तत्वों के निरुपण का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रयत्न अवश्य दृष्टिगोचर होता हैं। डॉ. बड़थ्वाल के मत से संत कवियों का परम तत्व एकेश्वरवादी विचारधारा से पुष्ट अद्‌वैतवाद के अधिक निकट है। संतों का ब्रह्मा त्रिगुणातीत, दवैताद्वैत, विलक्षण, अलख, अगोचर, सगुण, निर्गुण से परे, प्रेम पारावार और दार्शनिकवादों तथा तर्को के ऊपर है। वह अनुभूतिगम्य और सहज प्रेम से प्राप्य हैं।

• साधन मार्ग : संतों की साधना का भवन जान, कर्म, योग और भक्ति इन चारों स्तम्भों के सहज संतुलन पर टिका हुआ है। जिस प्रकार संत लोग अन्य विचारों में प्रगतिशील है वैसे ही साधना मार्ग के निर्धारण में भी पर्याप्त सजग है। निर्गुण संत ज्ञानत्मिका भक्ति के उपासक है। कोरा ज्ञान उन्हें अहंकार मूलक प्रतीत हुआ है। पोथी जान के भी वे विरोधी है। पोथी ज्ञान के भार से लदा हुआ आदमी उस गधे के समान है जो चन्दन का भार ढोकर भी उसकी सुगंध का सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार प्रत्यक्ष् अनुमान और अप्रत्यक्ष इन तीनों प्रमाणों में से ये संत केवल प्रत्यक्ष या अनुभूति जन्य ज्ञान को ही प्रमाणिक मानने के पक्ष में हैं। कबीर ने कहा भी है 'तू कहता कागज की लेखी मैं कहता आखिन की देखी।'

• भक्ति मार्ग : सत्य भाषण और सत्याचरण को संत, कवि भक्ति का सर्वप्रमुख तत्व मानते हैं। इसी को वे अपने शब्दों में कथनी की समरसता की संज्ञा देते हैं। नाम जप या 'नाम स्मरण' संतों की भक्ति का मूल आधार है। भक्ति के प्रेरक तत्वों में श्रद्धा, सत्संग, उपदेश, गुरु, जीवन तथा जगत की क्षण भंगुरता के ज्ञान से उत्पन्न वैराग्य भावना आदि का स्थान महत्वपूर्ण हैं। संत कवियों ने इन सबकी आवश्यकता और महत्ता का विवेचन विस्तार से किया हैं। आश्रय में निहित प्रेम या भक्ति को अभिव्यक्त करने वाले तत्वों में दैन्य, आत्म-निवेदनमय आसक्ति आदि मुख्य हैं।

• **कबीर दास : कला-पक्ष**

कबीर के साहित्य में रसानुभूति अद्‌भुत हैं। उपदेशात्मक सूक्तियां व हठ योग संबंधी कविताओं के अतिरिक्त उनका काव्य पूर्ण रससिक्त है। उनकी कविता में शान्त, को वह शान्त रस से आप्लवित करते हैं। उनके काव्य में भावपक्ष भी ज्ञान तत्व की भांति विद्यमान है। आध्यात्मिक विचारों को अपने काव्य का विषय बनाकर उसे सरलता व सहजता से लोकमात्र में प्रस्तुत कर कबीर ने सही अर्थो में काव्य की आत्म को पहचाना है। उनके काव्य में भक्ति भावों की प्रचुरता है। उन्होंने आत्मा-परमात्मा समान अदृश्य पदार्थों को प्रतीक व उपयुक्त उपमानों के द्वारा सादृश्य के रूप में चित्रित किया है। आत्मा को प्रेयसी व परमात्मा को प्रेमी मानकर वह सरस काव्यवर्षण करते हैं।

• **रसानुभूति**

रस की दृष्टि से कबीर के काव्य में मुख्यतः तीन रसों यथा श्रृंगार, अदभुत एवं शान्त का समावेश है किन्तु प्रधानता श्रृंगार की है। उनका भक्ति व आध्यात्मिक साहित्य प्रिय और प्रियतम की अटूट कड़ी है जो आत्मा परमात्मा की प्रतीक हैं। कबीर ने अपने काव्य का सृजन रस सिद्धान्त के अनुसार किया, काव्यशास्त्रीय परंपरा के अनुसार नहीं किया, फिर भी श्रृंगार उनके काव्य में प्रभावी रूप से उभरकर आया हैं। कबीर ने संयोग व वियोग का सशक्त चित्रण कर अपनी पटुता का परिचय दिया हैं। उनके आध्यात्मिक संयोग व वियोग के चित्रों की तुलना में अन्य कवि सफलता के सोपान तक में असमर्थ पहुंचने रहे हैं। इस संदर्भ में एक विद्वान समीक्षक का मत प्रासंगिक हैं। ''कबीर की कविता में तो भावना नृत्य करती है और उसी से रस प्रवाह होता है। कबीर की रहस्यमयी कविताओं में जो रस की धारा बहती है, वह आत्मा की कामना और वासना के क्षेत्र से बाहर निकालकर निर्वाण के परमानन्द की स्थिति को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। इस स्थिति को प्राप्त करके कवि स्वयं प्रेम रस का पान करता है और ब्रह्म के रंग में रंगकर मतवाला हो जाता हैं। कबीर की रचनाओं में इस रस की न जाने कितनी शीतल धाराएं बहती हुई मिलती हैं, जिनमें स्नान करके सहृदय पाठक जीवन की वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकता हैं।''

• **अलंकार सौंदर्य**

कबीर के काव्य में अनायास ही बहुलता में अलंकारों का समावेश है। कबीर के काव्य में उपमा, रूपकों की तो प्रचुरता है ही, साथ ही अन्योक्ति, सांगरूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी दृष्टव्य है। यमक, श्लेष, अनुप्रास अलंकारों की भी आवृत्ति उनके काव्य को सौंदर्य प्रदान करती हैं। कबीरदास ने अपने काव्य में अलंकारों का सहज ही प्रयोग किया है। काव्य प्रतिभासम्पन्न होने के उपरान्त भी कबीर के जीवन का लक्ष्य कविता करना नहीं, बल्कि इसके माध्यम से साधना, भक्ति भावना का प्रचार-प्रसार व सामाजिक कूप-मण्डूकता पर प्रहार करना रहा।

• **प्रतीक विधान**

काव्य में सौंदर्य की दृष्टि से प्रतीक योजना का अपना विशेष महत्व है। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ निशान, अंग, पता व अवयव है। प्रतीक के द्वारा जो मूलतः अप्रस्तुत है, हम प्रस्तुत के द्वारा उसके गुण-धर्म का स्मरण करते हैं। मानव जीवन प्रतीकों से आप्लावित है। कुछ प्रतीक सार्वभौमिक होते हैं, जैसे श्वेत रंग पवित्रता का एवं सिंह पौरुष का प्रतीक हैं। कबीर की अनुभूतियां आध्यात्मिक रंगों से सराबोर है। अपने विचारों को बोधगम्य बनाने के लिए उन्हें अधिक प्रतीक का आलम्बन करना पड़ा है। प्रतीक शैली वस्तुतः कबीर-काव्य की प्रमुख शैली कही जा सकती है। उनके काव्य में कुछ प्रतीक तो विचित्र है जिनका प्रतीकात्मक अर्थ खोजना कठिन है। इन प्रतीकों का आध्यात्मिक अर्थ जाने बिना उनके काव्य को समझना सरल नहीं है। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

(अ) दाम्पत्य प्रतीक

दुलहिनी गाबहुं मंगलाचार।
लाली मेरे लाल की, जित देखौंतित लाल।
लाली देखनि में चली, मैं भी हो गयी लाल।।

(ब) पारिभाषिक प्रतीक

गंगतीर मोरी खेती बारी, जमुनातीर खरिहाना।
सातों बिरवी मोरे वीपजैं, पांचू मोर किसाना॥

आकासे मुख औंधों कुवां, पाताले पनिहाारि।
ताकां पाणि को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारि॥

• **छन्द**

कबीर ने अपने काव्य में मुख्य रूप से मुक्तकों का ही प्रयोग किया हैं। उन्होंने छन्दों में दोहा, चौपाई का प्रयोग किया है। साखियां दोहा छन्द में है और रमैनी में कुछ चौपाइयों के पश्चात एक दोहा है। इसी क्रम में रमैनी का सृजन किया हैं।

• **भाषा**

कबीर की भाषा में राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं का मिश्रण हैं। उनकी भाषा को सधुक्कड़ी भी कहा जाता है जिसमें बिना व्यतिक्रम के विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। कबीर की भाषा के संबंध में डा. सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन उल्लेखनीय हैं-

कबीर यद्यपि भोजपुरी क्षेत्र के निवासी थे, किन्तु तात्कालीन हिन्दुस्तानी कवियों की तरह उन्होंने ब्रजभाषा तथा कभी-कभी अवधी का भी प्रयोग किया। उनकी ब्रजभाषा में भी कभी-कभी पूर्वी (भोजपुरी) रूप झलक आता है, किन्तु जब वे अपनी भोजपुरी बोली में लिखते हैं जो ब्रजभाषा तथा अन्य भाषाओं के तत्व प्राय: दिखाई पड़ते हैं।

आचार्य श्यामसुन्दरदास का मत है कि, कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है। खड़ी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट उनकी उक्तियों पर चढ़ा हैं।''

विभिन्न विद्वानों की सम्मति से कबीर की भाषा के संबंध में यह विशेषताएं उभरकर आती हैं--

1. कबीर की बोली का प्रमुख आधार पूर्वी बोली (भोजपुरी व अवधी) हैं।
2. कबीर की भाषा पर खड़ी एवं ब्रजभाषा का अधिक प्रभाव हैं।
3. कबीर की भाषा में राजस्थानी एवं पंजाबी भाषा के शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है।
4. कबीर की भाषा साधुक्कड़ी मानी जाती है। जिसे पंचमेल खिचड़ी की संज्ञा दी जाती है। उसे किसी एक भाषा की परिधि में नहीं बांधा जा सकता।

स्वयं आकलन प्रश्न-1

1. कबीर की दो प्रमुख रचनाएं ?
2. कबीरदास किस काल के कवि थे ?
3. कबीर की भाषा शैली की मुख्य विशेषता क्या है ?
4. कबीर की भाषा शैली क्या है ?

2.4 सारांश

कबीर का प्रमुख ध्येय कविता करना नहीं, वरन् अपनी आत्मानुभूतियों का प्रचार-प्रसार कर मानव को संयमित रास्ते का अनुसरण कराना था। भाषागत दोष होने के उपरांत भी कबीर का हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान है। इन्होंने पहली बार कविता को धरातल से जोड़ा व आम-आदमी एवं कविता का परस्पर तादात्म्य स्थापित किया। कबीर का

साहित्य वस्तुत: उच्च नैतिक आदर्शों का प्रतिस्थापक है। उनका जीवन और काव्यादर्श समान रहे। वह समरसता व मानवता के पुजारी है। हिन्दी साहित्य में कबीर मात्र कवि न होकर एक लोकनायक के रूप में अवतरित हुए है जो समाज की सड़ी गली प्रथाओं का समूल नाश करके इस धरा के स्वर्ग बनाने का उद्‌यम करते है। निर्गुण भक्तिधारा के श्रेष्ठ कवि कबीर काव्य में आध्यात्मिक प्रभाव के प्रवर्तक हैं। उनकी वाणी में कला पक्ष का अभाव होते हुए भी भावगत सरलता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कबीर हिन्दी जगत का वह व्यक्तित्व है जो समता, विश्वबन्धुत्व व सामाजिक न्याय का अनुयायी हैं।

2.5 कठिन शब्दावली :

बाधा - रुकावट। अलंकार - सुशोभित करना। लयबद्धता - लय में बांधना । लाली - प्रेमिका।

2.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर

1. उतर- उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं में कबीर बीजक, सुखनिधन, होली अगम, शब्द, वसंत, साखी और रक्त शामिल हैं।
2. उतर- ''कबीरदास'' भक्तिकाल की संत काव्य धारा धारा के कवि थे।
3. उत्तर- इनकी भाषा मिली-जुली है। इनकी साखियाँ संदेश देने वाली होती हैं। वे जैसा बोलते थे वैसा ही लिखा है। लोकभाषा का भी प्रयोग हुआ है।

   जैसे-खायै, नेग, मुवा, जाल्या, आँगणि आदि भाषा में लयबद्धता, उपदेशात्मकता, प्रवाह, सहजता, सरलता शैली है।
4. उतर- भाषा कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी है।

2.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. श्यामसुन्दर दास - कबीर ग्रंथावली।

2 अभिलाषा दास - कबीर व्यक्तित्व और कृतित्व

2.8 सात्रिक प्रश्न :

1. कबीर की भाषा शैली की मुख्य विशेषता क्या है?
2. कबीर दास काव्यगत विशेषताएं क्या है?

*****

इकाई-3
कबीर : रहस्यवाद

संरचना

3.1 भूमिका

3.2 उद्देश्य

3.3 कबीर : रहस्यवाद

3.3.1 कबीर के रहस्यवाद के प्रकार

3.3.2 कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न-1

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्दावली

3.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भित पुस्तकें

3.8 सात्रिक प्रश्न

3.1 भूमिका :

हिन्दी साहित्य में कबीर रहस्यवादी कवि माने जाते हैं। वे वेदांती थे। इसी कारण वे जीव तथा ब्रह्म की एकता के समर्थक थे। दूसरी तरफ वे सूफियों के प्रेम की पीर से भी प्रभावित थे। अत: उनके रहस्यवाद में अद्वैतवाद का माया तथा चिंतन व सूफियों का प्रेम भाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन दर्शनीय है। कबीर का रहस्यवाद एक तरफ तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद की क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्धांतों को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के संतों की सत्संग में रहे तथा वह प्रारंभ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जायें। ''इसी विचार से वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से संबंध रखते हुए अपने सिद्धांतों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्वैतवाद तथा सूफीमत की 'गंगा-जमुना' साथ ही बहा दी।''

3.2 उद्देश्य

1. कबीर के काव्य की जानकारी।
2. कबीर के रहस्यवाद की जानकारी।
3. कबीरदास के काव्य का वर्ण्य विषय की जानकारी।

3.3 कबीर : रहस्यवाद

हिन्दी साहित्य में कबीर रहस्यवादी कवि माने जाते हैं। वे वेदांती थे। इसी कारण वे जीव तथा ब्रह्म की एकता के समर्थक थे। दूसरी तरफ वे सूफियों के प्रेम की पीर से भी प्रभावित थे। अत: उनके रहस्यवाद में अद्वैतवाद का माया तथा चिंतन व सूफियों का प्रेम भाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन दर्शनीय है। कबीर का रहस्यवाद एक तरफ तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद की क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्धांतों को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के संतों की सत्संग में रहे तथा वह प्रारंभ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जायें। ''इसी विचार से वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से संबंध रखते हए अपने सिद्धांतों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्‌वैतवाद तथा सूफीमत की 'गंगा-जमुना' साथ ही बहा दी। इसके अतिरिक्त कबीर पर हठयोग का प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। हठयोगी साधन-पद्धति के आधार पर उन्होंने कुंडलिनी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, मूवधार आदि छ: चक्रों, सहस्त्रार या हरन्ध्र आदि पर प्रकाश डाला हैं।

3.3.1 कबीर के रहस्यवाद के प्रकार

मुख्यत: रहस्यवाद दो तरह का होता हैं-साधनात्मक और भावात्मक।

साधनात्मक रहस्यवाद में परमात्मा तक पहुंचने की प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है तथा भावात्मक में आत्मा के विरह-मिलन के विविध प्रसंगों की सुंदर झांकी प्रस्तुत होती हैं।

कबीर के काव्य में साधनात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार का रहस्यवाद दृष्टिगत होता हैं--

• साधनात्मक रहस्यवाद

कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद का विकास योगियों के नाथ संप्रदाय से हुआ है। अत: उन पर योगियों तथा हठयोग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता हैं। उनका मत है कि जब साधक की कुंडलिनी जाग्रत होकर सुषुम्ना के मार्ग से छहों चक्रों को पार करके ब्रह्मरंध में पहुंच जाती है तो एक अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। यह आनंद मोक्ष का द्वार है। कबीर कहते हैं-

रस गगन गुफा में अजर झरै।

बिना बाजा झनकार उठै जहां, जहं समुझि पर

जब ध्यान धरै।

कबीर के साधनात्मक रहस्यवाद पर भारतीय अद्वैत का भी प्रभाव है। उसे व्यक्त करने के लिए उन्होंने वेदांतियों की तरह मायावाद को भी स्वीकार किया है तथा विभिन्न दृष्टांतों से अद्वैत का प्रतिपादन किया है। शंकर के अद्वैतवाद का समर्थन करते हुए वे कहते हैं--

पानी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया विलाई।

जो कुछ था सोइ भया, अब कछू कहा न जाई।

कबीर के रहस्यवाद में कहीं अनहद सुनाई पड़ता है तथा कहीं गगन घंटा का घहराना सुनाई पड़ता है। उन्होंने अपने साधनात्मक रहस्यवाद को भक्ति और प्रेम का पुट देकर सरस और मधुर भी बना दिया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि और शष्क न होकर सरस तथा मधुर हैं।

- **भावात्मक रहस्यवाद**

कबीर में भावात्मक रहस्यवाद भी पाया जाता है। इसमें जीवात्मा अपने आधार से प्रेम करती है तथा उसके अभाव में विरह-व्यथा से दग्ध रहती है। इस पर सूफियों की प्रेम पद्धति का अभाव है पर कबीर ने इसे भारतीय रूप दे दिया है। उन्होंने साधक, जीव व आत्मा की प्रेमिका तथा पत्नी रूप में ब्रह्म का प्रियतम रूप में चित्रित किया हैं। यथा :

दुलहिन गावहु मंगलचार।

हमारे घरि आए हो राजा राम भरतार।

अथवा

नैना अंतरि आव तू ज्यू हौं नेन झैपेउं।

ना हां देखूं और कू, ना तोहि देखन देंउं।।

भावात्मक रहस्यवाद का मूलाधार प्रेम हैं। कवि ने प्रेम की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया। आत्मा परमात्मा को प्रतीक्षा करते-करते कह उठती हैं--

आंखड़ियाई झाई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।

जीभडिया छाला पड़ा, राम पुकारि-पुकारि।।

प्रियतम के विरह में आत्मा बहुत दु:खी है। आठों पहर का यह कष्ठ उसे असहय हो उठता है। इसलिए कहती हैं-

कै विरहनि कु मींच दे, कै आपा दिखलाई।

आठ पहर का दाझणा, मोपै सहा न जाइ।।

कबीर के हृदय में परमात्मा को खोजने की तीव्र अभिलाषा जाग उठी। अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं--

परवति परवति में फिरया, नैन गंवाई रोई।

सो बूंटी पाऊ नहीं, जाते-जीवनि होई।।

अंत में आत्मा को अपने चिर प्रतीक्षित प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं तथा वह कह उठती हैं-

बहुत दिनन में प्रीतम आए। भाग बड़े घरि बैठे आए।।

इस प्रकार भावात्मक रहस्यवाद में कवि ने आत्मा के कई भावों आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं।

3.3.2 कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं :

रहस्यवाद का विकास क्रम है - सीमा का असीम के प्रति कुतुहल, विस्मय, जिज्ञासा, तादात्म्य अनुभव, अनुराग, नम्रता, तन्मयता, विरह तथा मिलन। कबीर ने इन सभी स्थितियों का निर्वाह किया हैं। कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

- **साधनात्मक रहस्यवाद**

कबीर के रहस्यवाद की एक विशेषता यह है कि कबीर का रहस्यवाद साधनात्मक है। कबीर ने साधना के लिये अनेक निर्गुण पंथों को अपनाया है। उन्होंने पूर्ववर्ती सिद्धों और नाथ-पंथियों से हठयोग-साधना और क्रिया संबंधी विचार ग्रहण किये हैं। दृष्टव्य हैं- अनहद नाद का वर्णन--

''कबीर कँवल प्रकासिया ऊग्या निर्मल सूर।

निसि अंधियारी मिटि गई, बागे अनहद नूर॥''

- **प्रेम-मूलकता**

कबीरदास जी का रहस्यवाद साधनात्मक होकर भी प्रेममूलक है। उसमें साधनात्मक और भावात्मक, दोनों का समन्वित रूप देखा जा सकता है। यही कारण है कि उनका रहस्यवाद, नीरस न होकर सरस एवं मार्मिक हैं। इस दृष्टि से दृष्टव्य यह चित्र-

''काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।

जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास॥''

- **जिज्ञासा की भावना**

कबीर निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म के उपासक है। वैसे उनकी दृष्टि में न तो उनके इष्टदेव का कोई रूप है तथा न कोई आकार। फिर भी वह सर्वत्र विद्यमान है। कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ उसका अस्तित्व न हो। कबीर की यह अस्तित्व बुद्धि ही अपने इष्टदेव के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करती है तथा इसी से वे यह जानना चाहते है कि वह ब्रह्म कैसा है? कहाँ हैं? और किस तरह अपनी क्रियाएं करता हैं? वास्तव में कोई भी व्यक्ति इस मर्म को नहीं जानता है इसलिए कबीर बड़े बेचैन रहते हैं। उनका कहना है जब इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि नाड़ियां ही नहीं है तो फिर समस्त गुण कहाँ समा जाते हैं?

- **भौतिक विघ्न एवं वेदना की प्रवृत्ति**

कबीर ने अपने रहस्यवाद में साधनापथ के अनेक विघ्नों तथा कष्टों का भी उद्घाटन किया है। सबसे पहले कबीर ने उस ठगिनी माया का ही उल्लेख किया है जो बड़ी मीठी है, जिसका छोड़ना कठिन है जो अज्ञानी पुरुष को बहका-बहका कर खाती रहती हैं-

''मीठी-मीठी माया तजी न जाई।

अग्यानी पुरुष को भोली-भाली खाई॥''

फिर कहते है कि यह 'मोर तोर को जेवडी' है और यह इतनी विश्वास-घातनी है कि इसके आकर्षण के कारण भक्त भगवान का भजन नहीं कर पाता। यह ऐसी पापिनी है कि एक वैश्या की तरह संसार रूपी हाट में जीवों को फंसाने का फंदा लिए बैठी रहती हैं-

''कबीर माया पापिणी, फंद लें बैठी हाटि॥''

कबीर ने इस माया के दो रूप बतायें हैं– 'कंचन और कामिनी।' इन दोनों के रूप में यह जीवों को ठगती है जिसके कारण जीव जन्म–मरण के चक्कर में फंसकर संसार में भटकता रहता हैं।

• अथक एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का आभास

कबीर ने इस स्थिति का अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है। कबीर कह रहे है कि मैंने देह तथा आकार का ऐसा कौतुक देखा है तथा बिना कार्य और चंद्रमा के प्रकाश का दर्शन किया हैं–

''कौतुक दीठि देह बिन, रवि ससि बिना उजास॥''

यह प्रकाश असीम एवं अनंत हैं, उसे देखकर ऐसा लगता है मानों सूर्य की सेना हो या अनेक सूर्य एक साथ उदित हो रहे हों–

''कबीर तेज अनंत का मानो अगी सूरज सेणि॥''

इस तरह कबीर ने उस अव्यक्त एवं अगोचर सत्ता के दर्शन का बड़े प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया हैं।

• सांसारिक ज्ञान एवं अपरोक्ष अनुभूति

कबीर ने अपनी इस अपरोक्ष अनुभूति का अत्यंत मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कबीर कहते है कि जिस उत्कृष्टता तथा तीव्रता के साथ मन माया जन्म विषयों में रमता है उतनी ही उत्कृष्टता तथा तीव्रता के साथ मन राम में रम जाये तो वह साधक तारामंडल से भी परे वहाँ पहुँच जाता है। राम के गुण–गान करने के त्रिगुणात्मक माया का पाश कट जाता है। कबीर यह भी कहते है कि यहाँ पर राम नाम की लूट हो रही हैं जिससे जितना लूटा जाये लूट लो–

''लूटि सकै तो लूटियों, राम नाम की लूटि।
पीछे ही पछिताहुगे, यह तन जैहे छूटि॥''

कबीर की इस अनुभूति का मूलाधार प्रत्यक्ष जीवन है। कबीर ने ''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता हूँ आँखों की देखी'' कहकर अपने अपरोक्ष अनुभूति की वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया हैं।

• चिर–मिलन

रहस्यवाद की अंतिम स्थिति आत्मा तथा परमात्मा का 'चिर मिलन' मानी गई है। कबीर ने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में इस अंतिम स्थिति का भी उद्घाटन किया हैं। इस मिलन की अवस्था का रूपक बांधते हुए उन्होंने स्वयं को दुलहिन तथा राम को प्रियतम कहा है और विवाह होने पर जिस प्रकार पति–पत्नि मिलते है उसी प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक आत्मा और परमात्मा का मिलन हो रहा है तथा जिस प्रकार एक पत्नी अपने पति के साथ एक शय्या पर शयन करती हैं उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा एक होकर शयन कर रहे हैं–

''बहुत दिनन थे प्रीतम पाए, भाग बड़े बैठे आए।
मंदिर मांहि भया उजियारा, लै सूती अपना पिय प्यारा॥''

विवाह के उपरांत जैसे पत्नी अपने प्रियतम से मिलती है उसी प्रकार 'अंक भरे भर भेंठिया, मन में नाही धीर' कहकर कबीर ने उस दृश्य को प्रकट किया है। इस मिलन के उपरांत अनिर्वाचनीय आनंद की उपलब्धि होती है। इससे स्पष्ट है कि इस स्थिति में भगवान साधक और साध्य तथा जीव तथा ब्रह्म एक हो जाते हैं, दोनों का भेद मिट जाता है और पूर्ण अद्वैत की स्थापना हो जाती हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

1. रहस्यवाद से आप क्या समझते हैं ?
2. कबीर का रहस्यवाद क्या है ?
3. रहस्य वादी कवि कौन है ?

3.4 सारांश

स्पष्ट होता है कि कबीर के साहित्य में सभी प्रकार के रहस्यवाद का सामंजस्य था। उन्होंने जहां प्रेम, योग, साधना, सौंदर्य आदि को अपनाया वही उन्होंने उसे रहस्यवाद के साथ जोड़कर ईश्वर से जुड़ने का मार्ग भी बताया। कबीर दास की यही शैली उन्हें अन्य कवियों से अलग करती है। जिसमें प्रेम, सौंदर्य, लाक्षणिकता, आध्यात्मिकता, जिज्ञासा, चेतना की भरमार है। वहीं उन्होंने रहस्यवाद को व्यक्ति के जिज्ञासा के साथ जोड़कर उसे एक चेतना प्रदान करने का भी प्रयास किया है।

3.5 कठिन शब्दावली :

जिज्ञासा - जानने की इच्छा रखना। **चेतना** - जागृति। **लक्षण** - गुण।

सामंजस्य - समन्वय करना। **मार्ग** - रास्ता।

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

1. उत्तर - रहस्यवाद वह भावनात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें कोई व्यक्ति या रचनाकार उस अलौकिक, परम, अव्यक्त सत्ता से अपना प्रेम प्रकट करता है जो सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। वह उस अलौकिक तत्व में डूब जाना चाहता है।
2. उत्तर - कबीर का रहस्यवाद एक तरफ तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद की क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्धांतों को स्पर्श करता है।
3. उत्तर - हिन्दी काव्य में छायावाद प्रवृत्ति के जन्म के बहुत पहले कबीर, जायसी, मीरा आदि में रहस्यवाद अपनी पूर्ण गरिमा के साथ विद्यमान है।

3.7 संदर्भित पुस्तकें

1. श्यामसुन्दर दास - **कबीर ग्रंथावली।**

2. अभिलाष दास - **कबीर व्यक्तित्व और कतृत्व।**

3.8 सात्रिक प्रश्न

1. कबीर का रहस्यवाद क्या है? स्पष्ट करें।
2. कबीर का रहस्यवाद की विशेषताएं लिखिए।

*****

इकाई–4

कबीर : भक्ति भावना

संरचना

4.1 भूमिका

4.2 उद्देश्य

4.3 कबीर : भक्ति भावना

स्वयं आकलन प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्दावली

4.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भित पुस्तकें

4.8 सात्रिक प्रश्न

4.1 भूमिका :

कबीर दास भक्ति काल के निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से एक है। उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है तथा वह निर्गुण की उपासना का संदेश देते हैं उनकी राम भावना ब्रहम भावना से सर्वथा मिलती है। कबीर पहले भक्त हैं फिर कवि है। उन्होंने जाति-पाती, काम-धाम, चमक-दमक, दिखावा, पहनावा, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, हिंसा, माया, छुआछूत, आदि पर विद्रोह भावना प्रकट की हैं। इन सब से दूर होकर भक्ति की भावना में लीन होने के लिए कबीरदास कहते है।

4.2 उद्देश्य :

1. कबीर दास की भक्ति भावना की जानकारी।
2. कबीर दास की भक्ति मार्ग का बोध।
3. कबीर के प्रभु का बोध।
4. निर्गुण भक्ति भावना का बोध।

4.3 कबीर : भक्ति भावना

कबीर की भक्ति भावना की विशेषताओं का चित्रण इस प्रकार से है:-

• **कबीर की निर्गुण उपासना**

उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है तथा वह निर्गुण राम की उपासना का संदेश देते हैं-

''निर्गुण राम जपहुं रे भाई''

उनके अनुसार राम फूलों की सुगंध से भी पतला अजन्मा और निर्विकार है वह विश्वा के कण-कण में स्थित है। उसे कहीं बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा है की मिल की नाभि में कस्तूरी छिपी रहते हैं और मेरे उस सुगंध का स्रोत बाहर ही ढूंढता फिरता है जबकि व उसके भीतर ही विद्यमान होता है।

''कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूंढे वन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं दुनिया देखे नाहिं।''

कबीर के अनुसार ईश्वर हर जगह मौजूद है वे कहते है कि ईश्वर कण-कण में समाया है। हर इंसान के शरीर में, हर मन में, हर आंखों में ईश्वर का निवास है इसलिए उसे हमें ढूंढने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उसे एकाग्र मन से स्मरण करने की आवश्यकता है।

''प्रियतम को पतिया लिखूं, को कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौं कहा सन्देश।''

• **कबीर एकेश्वरवाद**

कबीर ने बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किया और एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया ब्राह्म नहीं ब्राह्म, विष्णु, महेश आदि को बनाया है। इसलिए उन्होंने निराकार ब्रह्म कोही महत्वपूर्ण स्थान दिया और अवतार को जन्म-मरण के बंधन से ग्रसित बताया।

''अक्षय पुरुष इक पेड है, निरंजन बाकी बार।
त्रिदेवा शाखा भयें पात भया संसार।''

• **कबीर की अलौकिक प्रणयानूभूति**

कबीर के काव्य में परमात्मा के प्रति अलौकिक प्रणयानूभूति की अभिव्यक्ति की गई है। कबीर वैसे तो खंडन मंडन की राह पर चलते रहे हैं और हिंदू मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाते रहे पर अपनी रहस्यवादी रचनाओं में से वे अत्यंत मष्दुल और कोमल दिखाई देते हैं। कबीर के रहस्यवाद शंकर के अध्द्वैतवाद का प्रभाव है-

''जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत का हो गयानी।''

• **कबीर की अद्वैतवाद**

ब्रहमा, जीव, जंगल माया आदि तत्वों का निरुपण उन्होंने भारतीय अद्‌वैतवाद के अनुसार किया है उनके अनुसार जगत में जो कुछ भी है वह ब्रहम ही है। अंत में सब ब्रहम में ही विलीन हो जाता है।

''पाणौ ही ते भाया, हिम है गया बिलाय।

जो कुछ था सोई भाया अब कुछ कहा ना जाए।''

संसार की मिथ्या व माया के भ्रम का आख्यान भी कबीर ने अद्‌वैतवादी विचारधारा के अनुरूप किया है।

''कबीर माया पापणी हरि सूं करै हराम।

मुखि कड़ियाली कुमति की कहण न देई राम।''

• **राम नाम की महिमा**

कबीर ने विभिन्न नामों में राम नाम को पूरी गंभीरता से और बार-बार लिया है। उन्होंने अपने आराध्य के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया है राम, साई, हरि, रहीम, खुदा, अल्लाह आदि प्रमुख है। यह सर्वविदित तथ्य है कि कभी निर्गुण राम के उपासक हैं। वह बार-बार नाम स्मरण की प्रेरणा देते हुए कहते हैं।

''कबीर निर्भय राम जपु, जब लागे दीवा बाति।

तेल धटा बाती मुझे, तब सोवो दिन राति।''

• **कबीर की वात्सल्य की भावना**

कबीर के काव्य में यत्र तत्र वात्सल्य का मनभावन रूप सामने आता है कभी स्वर को बालक और ईश्वर को जननी के रूप में मान्यता देते हुए कहते हैं

''हरि जननी मैं बालक तोरा

काहे ना अवगुन बकसहु मेरा।''

• **कबीर की कांता भाव**

ईश्वर की कांता भाव से स्मरण करते हुए स्वयं को उनकी जननी के रूप में प्रस्तुत किया है अपने पति ईश्वर को याद करते हुए कवि की आत्मा आवाज देती है।

''दुलहिन गावहु मंगलचार

हम घर आयहु राजा राम भरतार॥''

• **कबीर की माधुर्य भाव की भक्ति**

माधुरी भाव की भक्ति को मधुराभक्ति या प्रेम लक्ष्णा भक्ति कहा जाता है। भक्त स्वयं को जीवात्मा एवं भगवान को परमात्मा मन मान कर दांपत्य प्रेम की अभिव्यक्ति जहां करता है वहां मधुरा भक्ति मानी जाती है। माधुर्य भाव की भक्ति कबीर दास के दोहे में बखूबी देखने को मिलता है। माधुरी भाव कबीर किस पंक्ति में देखने को मिलता है-

''आंखड़िया झांई पड़ी पथ निहारि निहारि।

जीभड़ियां छाला पड्या राम पुकारि-पुकारि॥''

आत्मा का जीव आत्मा के प्रति विरह भाव कबीर ने बड़े मनोयोग से व्यक्त किया है। प्रियतम परमात्मा की बाट जोहते-जोहते आंखों में झांई पड़ गई, राम को पुकारते हुए जीभ में छाला पड़ गया है।

• **कबीर की दास्य भाव की भक्ति**

कबीर भले ही निर्गुण मार्गी भक्त कवि हो किंतु उनमें दस्य भाव की भक्ति दिखाई देती है। तुलसी की भक्ति जिस प्रकार दास्य भाव की है उसी प्रकार कबीर की भक्ति भावना में भी दस्य भाव दिखाई पड़ता है। वह प्रभु को स्वामी एवं स्वयं को दास सेवक या गुलाम कहते हैं

मैं गुलाम मोही बेची गोसाई।

• **कबीर की वैराग्य भावना**

कबीर के अनुसार वैराग्य का तात्पर्य संसार को छोड़कर जंगल में निवास करना नहीं है। संसार में रहते हुए भी मन में संतोष वृत्ति लाना, विषय भोगों के प्रति अनासत होना, आशा तृष्णा से मुक्त होना वैराग्य है। कभी संसार के रिश्ते नाते को क्षणभंगुर मानते हैं ये सारे संबंध स्वार्थमय है ऐसा कह कर कबीर वैराग्य जगाने का प्रयास करते हैं।

• **कबीर का सर्म्पण भाव**

प्रपति का अर्थ है शरणागति एवं आत्मनिवेदन। कबीर भगवान को सर्वशक्तिमान बानकर उसकी शरण में जाकर अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

कबीर तेरी सरनि आया, राखि लेहु भगवान।

• **आचरण की शुद्धता**

कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। कबीर का मत है कि जब तक मन में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में भगवान की भक्ति नहीं आ सकती भक्ति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट का भी परित्याग करना पड़ता है।

• **नाम स्मरण**

कबीर दास के अनुसार केवल नाम मात्र से ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है इसलिए वे कहते हैं कि हमें सच्चे मन से ईश्वर को स्मरण करते रहना चाहिए। जब हम एकाग्रचित्त होकर ईश्वर के नाम का जप करते है. तभी वह फलदायी होता है। वे ऐसे नाम स्मरण का विरोध करते हैं जिसमें मन दसों दिशाओं में घूमता रहता है –

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहि।
मनुवा तो दस दिसि फिरै सो तो सुमिरन नाहि॥

• **ईश्वर में विश्वास**

कबीर को ईश्वर की महत्ता का पता है इसलिए वे पूरी श्रद्धा और विश्वास से अपने ईश्वर की आराधना करते हैं। कबीर को पूरा विश्वास है कि परमात्मा पूर्ण समर्थ है। वह राई को पर्वत एवं पर्वत को राई करने की सामर्थ्य रखता है–

सांई सूं सब होत है बन्दे थै कछु नांहि।
राई थे परबत करै, परबत राई मांहि॥

• **कबीर की तन्मयता रूप**

कबीर अपने प्रियतम के प्रति पूरी तरह समर्पित है वह अपने प्रियतम के साथ जुड़ना चाहते हैं। यारों भक्ति के चरम उत्कर्ष को प्रकट करता है

''आंखिन की करि कोठरि, पुतरी पलग बिछाय।
पलकन की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाया।''

कबीर की उपासना में अनन्यता और अटल भक्ति का स्वरूप प्रकट होता है।

• **भक्त रूपी कबीर**

भक्त के रूप में कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में बिना किसी बाहरी आडंबर के भक्त ईश्वर में अपने को समाहित कर देता है। निर्गुण ब्रह्म के उपासक के लिए ब्रह्म उपकरण व्यर्थ प्रतीत होते हैं। निर्गुण ब्रह्म के उपासक को किसी खास पत्थर (मूर्ति पूजा) या खास उपकरण (माला) मिस्र की सत्ता के दर्शन नहीं होते हैं, उसके लिए तो प्रत्येक कण में ईश्वर के उपस्थिति दिखाई देती है। भक्त के रूप में कबीर कहते हैं–

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लकुटिया हाथ।

जे घर फूंके आपना, सो चले हमारे साथ॥

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनके ईश्वर का कोई रूप नहीं इसलिए उन्होंने भगवान की तुलना कस्तूरी से की है कस्तूरी की गंध का अनुभव किया जा सकता है पर उसका रूप नहीं होता।

• **ईश्वर की प्राप्ति के लिए मार्ग प्रस्थान :**

कबीर दास ईश्वर प्राप्ति का सच्चा मार्ग पहचाने हुए पहुंचे सन्त थे। उनका मानना है कि ईश्वर दिखावे से नहीं प्राप्त हो सकते हैं। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए उनमें पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। कबीर कहते हैं कि लोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए बाह्य आडंबर करते हैं पर पूर्ण समर्पण नहीं करते। इस पर कबीर कहते हैं कि माला फेरना तब तक व्यर्थ है जब तक ईश्वर में चित को पूर्ण रूप से न लगा दिया जाए तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

कबीर माला काठ की, कहिए समझावै तोहि।

मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोंहि॥

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. कबीर की भक्ति भावना का वर्णन कीजिए?
2. कबीर दास की विशेषता का वर्णन कीजिए।
3. कबीर ने किसकी पूजा की?

4.4 सारांश

कबीर की भक्ति भावना में प्रेम को आकर्षक और प्रभावी महत्व दिया गया है उनका मानना है कि मानव प्रेम में भी ईश्वर की कृपा होती है। कन कन में समाया राम ही मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रेरणाधार है। कबीर के सच्चे भक्त थे विभक्ति की महिमा गाते नहीं अघाते। भक्ति ही जीवन को व्यर्थ बताते हैं। ऐसा व्यक्ति बार-बार जन्म लेकर संसार में आता जाता रहता है। कबीर की भक्ति सहज है। वे ऐसे मंदिर के पुजारी है जिसकी फर्ष हरी हरी घास जिसकी दीवारें दसों दिशाएं हैं जिसकी छत नीले आसमान की छतरी है या साधना स्थान सभी मनुष्य के लिए खुला है। कबीर की भक्ति में एकग्र मन, सतत साधना, मानसिक पूजा अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति को विशेष महत्व दिया गया है। इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना बहुत ही अद्‌भुत है।

4.5 कठिन शब्दावली :

सतत साधना– निरंतर साधना। **पूजा अर्चना** – ईश्वर स्तुति करना। **दास्य** – सेवा करना।

सत्संगति – सज्जन लोगों की संगति करना।

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर :

1. उत्तर– कबीर की भक्ति में एकाग्रता, साधना, मानसिक पूजा अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति का विशेष महत्व दिया गया है। कबीर की भक्ति में सभी मनुष्य के लिए समानता की भावना है। यह भक्ति ईश्वर के दरबार में सबकी समानता और एकता की पक्षधर है। इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना बहुत ही अद्‌भुत है।
2. उतर– कबीर ने धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने का सराहनीय कार्य किया है। कबीर की भाषा में सरलता एवं सादगी है, उसमें नूतन प्रकाश देने की अद्‌भुत शक्ति है। उनका साहित्य जन–जीवन को उन्नत बनाने वाला, मानवतावाद का पोषाक, विश्व बन्धुत्व की भावना जाग्रत करने वाला है।
3. उत्तर– उन्होंने ईश्वर के निर्गुण रूप की पूजा की, जिसे वे राम, अल्लाह, हरि, साई, साहिब आदि कई नामों से पुकारते हैं। इसलिए कबीर के बारे में सभी कथन सत्य हैं।

4.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. श्यामसुन्दर दास – कबीर ग्रंथावली।
2. अभिलाष दास – कबीर व्यक्तित्व और कतृत्व।

4.8 सात्रिक प्रश्न :

1. कबीर की भक्ति भावना का वर्णन कीजिए?
2. कबीर दास की विशेषता का वर्णन कीजिए।

*****

इकाई-5
कबीर की भाषा-शैली

संरचना

5.1 भूमिका

5.2 उद्देश्य

5.3 कबीर की भाषा-शैली

स्वयं आकलन प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्दावली

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

5.7 संदर्भित पुस्तकें

5.8 सात्रिक प्रश्न

5.1 भूमिका :

कबीरदास ने अपनी रचनाओं में पंजाबी, राजस्थानी, बघेली, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, भोजपुरी, अरबी, फारसी, सिन्धी, गुजराती, बाँग्ला तथा मैथिली आदि अनेकानेक बोलियों तथा भाषाओं का प्रयोग किया है। इतनी भाषाओं के एक समान प्रयोग करने के कारण कबीर की भाषा का अध्ययन करने में एक सबसे बड़ी समस्या समीक्षकों के सामने यह आ खड़ी होती है कि उनकी भाषा का अध्ययन किस विशेष बोली अथवा भाषा को आधार मानकर किया जाए और उनकी बोली को क्या नाम दिया जाए? इस समस्या को स्वयं ही सुलझाते हुए समीक्षकों ने उनकी भाषा को एक विशिष्ट नाम दिया-'सधुक्कड़ी अन्नकूट'। विद्वानों ने सधुक्कड़ी अन्नकूट को साधुओं की भाषा कहा है, जिसमें लिंग, वचन और कारक आदि का कोई बन्धन नहीं होता। इसमें विभिन्न बोलियों के शब्द, पद-विन्यास आदि ज्यों-के-त्यों अनगढ़ रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। इसका एक मुख्य कारण यह होता है कि ये साधुगण कहीं एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहते, वरन् विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों का भ्रमण करते रहते हैं, जिस कारण उन भाषाओं के शब्द और पद-विन्यास स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा में आ जाते हैं।

5.2 उद्देश्य :

1. कबीर के काव्य की जानकारी।
2. कबीर की भाषा की जानकारी।
3. कबीर की शैली की जानकारी।

5.3 कबीर की भाषा-शैली

कबीर की बहुआयामी भाषा को सधुक्कड़ी के अतिरिक्त कोई अन्य नाम दे पाना वास्तव में दुष्कर है। कविता करना क्योंकि कबीर का उद्देश्य न था; अत: उन्होंने की भाषा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। जो मुँह में आया, वही उनकी भाषा और कविता बन गया। वे अपनी आत्मा की प्रेरणा के अनुसार कार्य करते थे। उनकी वाणी को सुगठित भाषा की आवश्यकता न होकर भावों की आवश्यकता थी। कबीर के पदों में लगभग आधा दर्जन भाषाओं के शब्द उपलब्ध होते हैं।

- **कबीर की भाषा और उसका वैविध्य**

कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है। परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर के काव्य से विभिन्न भाषाओं के निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं-

अवधी- ''जब तूं तस तोहि कोई न जान।''
''तैसें नाचत मैं दुख पावा।''

भोजपुरी- न हम जीवित मुख न ले माँही
दाँत गैल मोर पान खात, केस गैल मोर गंग नहात

ब्रजभाषा- अपनापौ आपुन ही बिसरतौ
लोट्यों भौमि बहुत पछितानौं, लालचि लोगौ करत कनीं।

खड़ीबोली- करण किया करम का नाम
यह मन चंचल चोर है, यह मन सुद्ध ठगार

पंजाबी- लूण बिलग्गा पाणियां पाणि लूण बिलग्ग

राजस्थानी– क्या जाणों उस पीव कूँ, कैसे रहसी रंग
बीछड़िया मिलियौं नहीं, ज्यौं काँचली भुवंग।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण है। कबीर ने भाषा की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। भाषा में जो कुछ सौंदर्य है, उनकी तीव्र अनुभूति के कारण हैं। विभिन्न आलोचकों ने कबीर की भाषा मूल्यांकन विभिन्न प्रकार से किया है। किसी ने उसकी भाषा को ब्रज, किसी ने अवधी और किसी ने पंजाबी बताया है। कबीर की भाषा के सम्बन्ध में आलोचकों के मत यहाँ प्रस्तुत हैं–

डॉ. श्यामसुन्दरदास – ''कबीर ग्रन्थावली की भाषा पंचमेल खिचड़ी है।''

डॉ. बाबूराम सक्सेना – ''कबीर अवधी के प्रथम संत कवि हैं।''

डॉ. सिद्धनाथ तिवारी– ''हम जब उनकी आँखन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रुखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।''

डॉ. रामकुमार वर्मा– ''कबीर ग्रन्थावली की भाषा में पंजाबीपन अधिक है।''

रेवरेन्ड अहमदशाह– ''कबीर बीजक की भाषा बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर के आस-पास की बोली है।''

डॉ. उदयनारायण तिवारी– ''कबीर की मूल वाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मातृ-भाषा बनारसी बोली में ही लिखा गया था, किन्तु उनके पदों का पछाँह की साहित्यिक भाषाओं में रूपान्तर कर दिया गया है।''

डॉ. त्रिगुणायत ने कबीर की भाषा में विभिन्न भाषाओं के सम्मिश्रण के सम्बन्ध में लिखा है, ''कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है। उनकी बोलियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है, साथ ही साथ खड़ीबोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि उप-भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है।''

पूर्वी भाषा– कतिपय विद्वानों ने कबीर की भाषा को पूर्वी भाषा बताया है। कबीर की भाषा को पूर्वी भाषा मानने वालों का आधार सम्भवत: कबीर बीजक की निम्नलिखित साखी है–

बोली हमारी पूरब की, हमें लखै नहीं कोय।

हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।।

परन्तु वास्तव में कबीर की भाषा पूर्वी नहीं है। कबीर की भाषा में ब्रज, पंजाबी और राजस्थानी के बहुत अधिक शब्द मिलते हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने उपर्युक्त साखी का आध्यात्मिक अर्थ लगाया है। 'कबीर साहित्य की परख' में उन्होंने इस साखी का अर्थ दिया है– ''हमारा कथन मौलिक दशा से सम्बन्ध रखता है, जिस कारण हमें कोई समझ नहीं पाता। हमारी बात वही समझेगा, जिसे उसका अनुभव हो चुका है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है। वास्तव में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत अन्य मतों की अपेक्षा कहीं अधिक संगत प्रतीत होता है।

कबीर की भाषा की विविधरूपता के कारण–

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, वे तन्मय होकर जो कुछ गाते थे, उनके शिष्य उनको लिपिबद्ध कर लिया करते थे। उन शिष्यों को भाषा से मोह न रहकर केवल भाव से मोह रहा होगा। शिष्यों ने अपने प्रदेश की भाषा के अनुसार उसको लिपिबद्ध कर लिया होगा। इस प्रकार अपने-अपने प्रदेश की भाषानुसार उन पदों में परिवर्तन कर लिया होगा। विभिन्न प्रदेशों के शिष्य उनके पास आया करते थे। अत: इस प्रकार भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। कबीर के पूर्ववर्ती सन्तों ने भी अपने काव्य में अनेक भाषाओं का प्रयोग किया था।

भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्दों के प्रयोग का एक कारण यह भी है कि सन्त कबीर देशाटन किया करते थे। जिस प्रदेश में वह जाते थे, उसी प्रदेश की भाषा के शब्द उनके काव्य में स्थान पा जाते थे, क्योंकि श्रोताओं को समझाने के लिए वे उस प्रदेश विशेष की भाषा के प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग करते थे। इस प्रकार कबीर के काव्य में भाषाई विविधता है।

- **कबीर की भाषा की प्रमुख विशेषताएँ**

(1) कबीर की भाषा सीधी-सादी और सरल है। कबीर की उलटबांसियों और पारिभाषिक शब्दों वाले पद अवश्य क्लिष्ट हैं। उन पदों को छोड़कर कबीर का समस्त साहित्य साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति की समझ में सरलता से आ जाता है। इस कारण कबीर की साखियों का इतना अधिक प्रचार है।

(2) उनका अधिकांश काव्य गेय है।

(3) कबीर की भाषा विषयानुकूल बदलती रहती है। जब वे मुसलमान सूफियों के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं, तो उसमें अरबी और फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं; यथा

मियाँ तुम्हसौ बोल्यां वाणी नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जसमन भावै॥
अल्लाह अबील दीन का साहिब, जारे नहीं फुरमाया।
मुरसिद पीर तुम्हारे है को कहा थै आया॥

इसी प्रकार जब वे हिन्दुओं के साधु-सन्तों के सम्बन्ध में कुछ टिप्पणी करते हैं तो वे हिन्दी के तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं; यथा

निरवैरी निहकामता, साँई सेती नेह।
विषिया न्यारा रहै, सन्तनि का अंग एह॥

(4) **कबीर ने व्याकरण के नियमों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है** डॉ. सिद्धनाथ तिवारी ने लिखा है- "जब हम उनकी आँखिन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रुखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।"

(5) **कबीर की भाषा की प्रशंसा करते हुए कबीर साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है** "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा में कहलवा दिया है-बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लचर-सी नजर आती है। उसमें मानो हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को न कर सके, और अकथ कहनी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में हैं, वैसी बहुत कम लेखकों की भाषा में पाई जाती है।"

- **कबीर की शैली और उसका वैविध्य**

कबीर की शैली भी भाषा की भाँति अनिश्चित-सी है। शैली में विविधरूपता है। कबीर का समस्त काव्य मुक्तक शैली में रचा गया है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर भक्त पहले हैं और कवि बाद में। अत: वे मस्त होकर तन्मयता के साथ गाते हैं तो उनको किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता है। उनकी रचनाओं में हमें निम्नलिखित प्रमुख शैलियों के दर्शन होते हैं

(क) खण्डनात्मक शैली-

कबीर की शैली के ऊपर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। जब कबीर पण्डित, मुल्ला, वामपन्थी और अवधूतों को फटकारते हैं तो उनकी शैली बड़ी सबल और सशक्त हो जाती है। कबीर ने प्राचीन रुढ़ियों और अन्ध विश्वासों का कड़ा विरोध किया। इस प्रकार के वर्णन में शैली का तीखापन द्रष्टव्य है। इस प्रकार की शैली मर्म पर सीधी चोट करती है। उस शैली को खण्डनात्मक शैली कहते हैं।

(ख) उपदेशात्मक शैली -

हिन्दू-मुसलमानों को उपदेश देते समय वे अपने विचारों को अत्यन्त सरल और सीधे-सादे ढंग से व्यक्त करते थे, ताकि श्रोतागण उसको सरलता से समझ सकें। वे हिन्दुओं को उपदेश देते समय शुद्ध हिन्दी के और मुसलमानों को उपदेश देते समय फारसी शब्दों का प्रयोग करते थे। कबीर की यह उपदेशात्मक शैली सीधी-सीधी तथा सरल है।

(ग) भावना-व्यंजक शैली -

कबीर की तीसरे प्रकार की शैली अनुभूति-व्यंजक है। यह कबीर की साहित्यिक शैली है। यह शैली गीतिकाव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण है। इसमें अनुभूति की अतुल गहराई है। इस शैली में माधुर्य गुण सर्वथा दृष्टिगोचर होता है।

इस शैली के सम्बन्ध में 'कबीर काव्य कौस्तुभ' में एक स्थान पर लिखा है, ''इस शैली में सन्त की कोमलता, व्यंजना की प्रौढ़ता, साधन की कातरता, स्वानुभूति का सफल अंकन तथा अलंकारों एवं प्रतीकों का मार्मिक प्रयोग है, जो उनके काव्य को अलौकिक बना देता है।''

भाषा की शब्द-शक्ति-

कबीर ने अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। कबीर के लाक्षणिक प्रयोग देखते ही बनते हैं-

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।

पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी वाट॥

उलटबांसियों और प्रतीकों के प्रयोग में शैली अस्पष्ट होते हुए भी चमत्कारपूर्ण है।

- **अलंकार -**

कबीरदास अलंकारों के पण्डित नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी को कभी-भी सजाने, सँवारने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी काव्य-प्रतिभा के कारण स्वभावतः ही उसमें रमणीयता आ गई है। कबीर की विशेषता अपने रूपकों के लिए प्रसिद्ध है।

कबीर के रूपक मौलिकता लिए हुए हैं-

नैनों की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।

पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय॥

कबीर के रूपकों के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है- उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (चन्द, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, पौधा, चुवा आदि) को लेकर अद्‌भुत रूपक बाँधे हैं, जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं।

सन्त कबीर ने उलटबांसियों में मुख्यतया विरोधालंकार विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कबीर के काव्य में उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टान्त अलंकारों की भी कमी नहीं है। कबीर ने अन्योक्तियों का प्रयोग भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है; यथा आदि

''काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी

तेरे ही नाल सरोवर पानी॥''

इस प्रकार कबीर के काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

• **छन्द-विधान**

कबीर का समस्त काव्य मुक्तक रचना है। कबीर के काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। कबीर ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु उनमें साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं। कबीर ने साखियों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। साखी दोहों से मिलती-जुलती है। साखी का अर्थ है- साक्ष्य का साक्षात् अनुभव। साखी का प्रयोग कबीर से पहले भी होता आ रहा था। कबीर ने स्वयं कहा है 'पद गाए मन हरसिया, साषी कह्या आनन्द।' साखी और दोहे के अन्तर को स्पष्ट करते हुए पं. परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है- ''साखियों की रचना प्रायः दोहा नामक छन्द से ही की गई पाई जाती है, किन्तु कबीर साहब की सभी साखियाँ केवल इसी रूप में नहीं दिखतीं। इसमें न केवल सोरठे मिलते हैं, अपितु इनमें दोहा, चौपाई, हरिपद तथा छप्पय जैसे छन्दों के भी उदाहरण मिल जाते हैं।'' इसके अतिरिक्त कबीर ने चौती, कहरवा, चाँचर, हिंडोला, बसन्त होली आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. कबीर की मुख्य भाषा कौन सी है?
2. कबीर की भाषा को खिचड़ी क्यों कहा जाता है?
3. कबीर की भाषा को पंचमेल खिचड़ी किसने कहा था?
4. कबीर दास जी की दो रचनाएं?

5.4 सारांश

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। कबीर एक असाधारण व्यक्तित्व लेकर जनता के समक्ष आए। कबीर युगद्रष्टा और क्रान्तिद्रष्टा महात्मा थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है- ''हिन्दी - साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई कवि उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है- तुलसीदास,' कबीर स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कलाकार थे। वे सन्त पहले थे और कवि बाद में । सन्त कबीर अपनी आत्मा के अनुचर थे। उन्होंने अपने सिद्धान्तों को जनभाषा में ही लोगों तक पहुँचाया। कबीर के समय तक भाषा कोई स्थायी रूप ग्रहण नहीं कर सकी थी। उसमें निखार आ रहा था। निर्गुण धारा के साहित्य में काव्य सिद्धान्तों का पालन करने वाली प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती । कबीर ने सर्वप्रथम भाषा को साहित्यकला का जामा पहनाया। बाद में वही भाषा परिष्कृत और परिमार्जित होकर साहित्य का माध्यम बन गई। कबीर धार्मिक आडम्बर और मिथ्या अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध करके अपने सन्त मत के सिद्धान्तों को जन-भाषा में ही जनता के सामने लाए।

5.5 कठिन शब्दावली :

विछडिया- बिछुडना। **मिलियौ**- मिलना। **पछितानौ** - पछताना। **लालचि-लोभि।** अपनापौ-अपनाया।

सम्मिश्रण- योग, इक्टठा ।

5.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों उत्तर :

1. उत्तर- कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी है। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।
2. उत्तर- कबीरदास की भाषा साधारण जन की भाषा थी। उनकी भाषा को सधुक्कड़ी व पंचमेल खिचड़ी कहा जाता है। इस भाषा को पंचमेल खिचड़ी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें ब्रज, पूर्वी हिन्दी, पंजाबी, अवधी व राजस्थानी भाषाओं का मिश्र देखने को मिलता है। कबीर के द्वारा अपनी बात सबद व साखी शैली में कही गई।

3. उत्तर- कबीर की भाषा मिली जुली है। इसीलिए कबीर की भाषा को श्याम सुंदर दास ने पंचमेल खिचड़ी और आचार्य शुक्ल ने साधुक्कड़ी भाषा कहा है।

4. उत्तर- उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं में कबीर बीजक, सुखनिधन, होली अगम, शब्द, वसंत, बाखी और रक्त शामिल है।

5.7 सन्दर्भित पुस्तकें :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर।
2. रामकुमार वर्मा, सन्त कबीर।

5.8 सात्रिक प्रश्न :

1. कबीर की भाषा की विशेषताएँ कौन सी है?
2. कबीर की शैली की विशेषताएँ लिखिए।

*****

इकाई-6
कबीरदास : व्याख्या भाग

संरचना

6.1 भूमिका

6.2 उद्देश्य

6.3 कबीर दास : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्दावली

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भित पुस्तकें

6.8 सात्रिक प्रश्न

6.1 भूमिका :

आप पिछली कक्षाओं के मध्यकालीन हिंदी कविता के संबंध में पढ़ चुके हैं कि मध्यकालीन कविता क्या है। इसके अंतर्गत कौन-कौन से कवि व उनकी कविताएं आती है। प्रस्तुत इकाई एक में एक मध्य युग और कबीर की सामाजिक विचारधारा, कबीर की दार्शनिक-रहस्यवादी विचारधरा और भक्ति भावना तथा व्याख्या भाग का पाठपरक अध्ययन व समीक्षा करेंगे।

6.2 उद्देश्य :

1. कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व जानेंगे।
2. निर्गुण तथा संत काव्यद्ध धरा को स्पष्ट करेंगे।
3. कबीर के समाज संबंधी विचार क्या है?
4. कबीर के राम के स्वरूप को स्पष्ट करेंगे।

6.3 कबीर दास : व्याख्या भाग

पद-160

लोका मति के भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा,
तौ रामहि कहा निहोरा रे।
तब हम वैसे अब हम ऐसे,
इहै जनम का लाहा रे।
राम-भगति-परि जाकौ हित चित
ताकौ अचिरज काहा रे।
गुरु-परसाद साध की संगति,
जन जीते जाइ जुलाहा रे।
कहै कबीर सुनहु रे संतो,
भ्रमि परै जिनि कोई रे।
जस कासी तस मगहर ऊसर,
हिरदै राम सति होई रे।

प्रस्तुतीकरण : लोकामति .... के राम सति होई रे।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन काव्य' में संकलित कबीरदास द्वारा रचित पुस्तक 'बीजक' में से लिया गया है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में कबीरदास ने भ्रम और अन्धविश्वास का चित्रण किया है। इससे निवारण करने के लिए उन्होंने केवल ईश्वर भक्ति को ही साधन माना है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि संसार के लोग बुद्धि से कितने भोले होते है। वे समझते है कि काशी में मरने से हमें स्वर्ग मिलता है। यदि काशी में मरने से स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती तो संसार में रामभक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। कबीरदास कहते हैं कि हम तो काशी में भी जैसे थे वैसे ही मगहर में है। दोनों में कोई भेद नहीं है। वे कहते है कि हमारे हृदय में सच्ची राम भक्ति है जिसमें सन्देह की कोई गुंजाईश नहीं है। हमें तो ईश्वर भक्ति गुरु कृपा

और साधुओं की संगति से प्राप्त हुई है, जिसमें कोई सन्देह नहीं है। अब तो जुलाह कबीर ईश्वर भक्ति में एकाग्र हो गया है। अर्थात् चित में राम समा गया है। कबीरदास कहते हैं कि सुनो सन्त-सज्जनों सुनो! काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है इस भ्रम में कोई न पड़ो। जैसा काशी वैसा ही मगहर है इन दोनों में कोई भेद नहीं है, जिसकी प्रभू राम के प्रति सच्ची श्रद्धा भक्ति है उसे मुक्ति प्राप्त हो जाएगी।

विशेष :

1. अन्ध विश्वास का खंडन करना।
2. मुक्ति के लिए गुरु कृपा, साधु संगति और हरिभजन का है।
3. अलंकारों का प्रयोग।

शब्दार्थ : लोकामति-संसार के लोगों की बुद्धि। तन तजै-शरीर छोडना हिरदै-हृदय।

पद -183

नाम-अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन छिन चढ़ि उत्तरै, नाम-अमल दिन बढ़े सवाई।
देखन चढे मुनत हिय लागै, सुरत किये तन देत घुमाई।
पियन पियाला भये मतवाला, पायो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रम चाखा, तर गई गनिका सदन कसाई।
कहै कबीर गूंगे गुड़ खाया, बिन रमना का करै बड़ाई।

प्रस्तुतीकरण - नाम अमल उतरै ना भाई .... रसना का करै बडाई।।

प्रसंग - पूर्ववत

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में नाम की महिमा का वर्णन किया गया है। इस नाम सिमरन से न जाने कितने लोग इस भव सागर से पार हुए है। राम नाम गूंगे के गुड़ के समान है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि संसार में झूठे नशे तो उतर जाते है परन्तु राम नाम का नशा ऐसा है जो एक बार चढ़ने से उतरने का नाम नहीं लेता। प्रभू नाम का नशा निरन्तर बढ़ता रहता है। बड़ा विचित्र नशा है। राम नाम नशे का प्याला पीने वाला मतवाला हो जाता है। उसकी सारी परेशानियां, कष्ट मिट जाते है। जिन लोगों ने इस नशे का पान किया है उन्हें इस भवसागर से मुक्ति मिल गई है। गणिका, कसाई और सदन जैसे लोग भी राम नाम का स्मरण करके संसार से पार पा गए अर्थात् मुक्ति मिल गई। कबीरदास जी कहते है कि राम नाम का वर्णन करना कठिन है। इसका वर्णन ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार गंगा गुड़ को खाकर स्वाद बता नहीं सकता।

विशेष :

1. राम नाम की महिमा का वर्णन।
2. राम नाम ही रस संसार से मुक्ति दाता है।
3. उदाहरण अलंकार का प्रयोग।

पद-179

दुलहिनि तोहि पिया के घर जाना।
काहे रोवो काहे गावो, काहे करत बहाना।।
काहे पहिरयौ हरि हरि चुनियाँ, पहिरयौ प्रेम के बाना।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, बिन पिया नाहिं ठिकाना।।

प्रस्तुतीकरण : दुलहिनि तोहि पिय के घर जाना...बिन पिया नहीं ठिकाना।।

प्रसंग - पूर्ववत

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में कबीर दास ने मृत्यु की सत्यता का चित्राण किया है। मृत्यु एक सर्वभौमिक सत्य है इसलिए हमें मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीवात्मा! अब तुम्हारे जाने का समय आ गया है। अब रोना बन्द कर, अब कोई बहाना नहीं चलेगा। कबीरदास कहते है कि हे जीवात्मा! तुम भौतिक सुखों में व्यर्थ ही फंसे हो। तुमने अपने जीवन को सजाने के लिए सुन्दर वस्त्र और हरी-हरी चुड़िया पहनी है ये सब नश्वर है। कबीरदास कहते है कि हे साधु ! तुम ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा और एक निष्ठ भाव रखों और राम नाम की साधना करना ही हमारा अंतिम लक्ष्य होना चाहिए तभी हमें मुक्ति मिल सकती है क्योंकि प्रभू राम ही हमें इस संसार से तार सकते है।

पद-187

भीजै चुनरिया प्रेम-रस बूँदैन।
आरत माज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूँढ़न।
काहे की नोरी बनी चुनरिया काहे को लगे चारों फूंदन।
पाँच तत्त की बनी चुनरिया नाम के लागे फूंदन।
चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दाम कबीर लागे झूलन।।

विशेष -

1. मृत्यु जीवन का अंतिम और अनिवार्य सत्य।
2. 'दुलहिनी' जीवात्मा का प्रतीक है।
3. अन्योक्ति अलंकार।

पद-187

भीजै चुनरिया प्रेम-रस बूँदैन।
आरत माज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूँढ़न।
काहे की नोरी बनी चुनरिया काहे को लगे चारों फूंदन।
पाँच तत्त की बनी चुनरिया नाम के लागे फूंदन।
चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दाम कबीर लागे झूलन।।

प्रस्तुतीकरण : भीजै चुनरिया प्रेम रस बूँदन झूलन।। किवरिया दास कबीर लागे

प्रसंग - पूर्ववत

सन्दर्भः प्रस्तुत पद में पंच तत्वों से निर्मित शरीर को प्रभू रंग रंगन का चित्रण किया गया है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि इस विरहिणी जीवात्मा की चुनरी राम नाम प्रेम रस की बूंदों से भीगी हुई है। वह आरती सजाकर अपने प्रियतम को ढूंलने लगी है। अर्थात् आत्मा परमात्मा से मिलने पर खुशी से झूमने लगी है।

विशेष :

1. आत्मा का परमात्मा से मिलन का चित्रण।

2. आत्मा परमात्मा के रंगों में रंगना का चित्रण।

पद-202- कविरा प्याला प्रेम का, अन्तर दिया लगाय।

पद- 202

कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर दिया लगाय।

रोम रोम में रमि रह्या, और अमल क्या खाय।।

राता-माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।

मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाय।।2।।

प्रस्तुतीकरण : कविरा प्याला प्रेम का ......मांगै मुक्ति बलाय।।

प्रसंग - पूर्ववत

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में ईश्वरीय प्रेम का चित्रण किया गया है जिसके सामने संसार की सारी वस्तुएं फीकी पड़ जाती है।

व्याख्या: कबीर दास जी कहते हैं कि मैंने तो ईश्वरीय प्रेम का प्याला अपने हृदय से लगा लिया है। राम नाम मेरे रोम-रोम पर समाया हुआ है। अब मुझे किसी अन्य नशे की आवश्यकता नहीं है। कबीरदास जी कहते हैं कि मैं उस परमात्मा के प्रेम में मस्त हो जाता हूं और मुझे अन्य नशे की आवश्यकता नहीं पड़ती। ईश्वरीय प्रेम में पड़े व्यक्ति को ईश्वर दर्शन की आकांक्षा रहती है मुक्ति की नहीं।

विशेष :

1. अध्यात्मिक प्रेम का चित्रण।

2. रूपक अलंकार का प्रयोग।

3. साधुक्कडी भाषा का प्रयोग।

स्वयं आंकलन के प्रश्न

1. कबीरदास के गुरू का क्या नाम था ?

2. 'कबीर ग्रंथावली' कुल कितने भागों में संपादित है ?

3. कबीर के माता-पिता का क्या नाम था ?

4. कबीर की भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' किसने कहा है ?

6.4 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली व युगानुरूप था उनमें कवि प्रतिभा के सभी गुण विद्यमान थे। कबीर की सहज साधना जीवन की स्वानुभूति गहराई से उपजी थी, ज्ञान, योग और प्रेम का उसमें समतत्व था। भले ही वे काव्य रूढ़ियों के जानकार न थे, परंतु उन्होंने अपनी रचनाओं को उन सभी योग्यताओं से परिपूर्ण किया है जो किसी भी काव्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। नि:संदेह कबीर जितने महान भक्त थे उतने ही महान कवि भी थे।

6.5 कठिन शब्दावली

लोचन अनंत–ज्ञान चक्षु। पयतरे–समानता। हौंस–अभिलाषा, इच्छा। प्रकास्या–प्रकाश। जिनि–मत। चानिणौं–चांदना, प्रकाश अर्थात् ज्ञान। जोई डरि–जलाकर। स्वॉग– नौहंडी, ढोंग। बरष्या–बरसना। अंतरि–अंदर से। चनराइ–वृक्षराशि। बिछुटी–बिछड़ना। परमाति–प्रातःकाल। राति–रात, ज्यूं जिससे, धुवां–धुआं । बरसि–वर्षा करके / करंक–हड्डियों की। मसि–स्याही। अखडियां आंखों में। झाई–आंखों की रोशनी का क्षीण होना। निहारि–देखकर। जीभड़ियां–जीभ। बरह अगनि–वियोग की आ। जाणैगि जानेगी। जल हरि–सरोवर। बति–परबति–पर्वत–पर्वत। उनमान–परिणाम। परवान–प्रमाण।

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. रामानंद।
2. तीन :– साखी, सबद, रमैनी।
3. नीरू और नीमा।
4. डॉ. श्याम सुंदर दास।

6.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी।
2. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय–पीताम्बर दत्त बड़्वाल।
3. कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत सरनाम सिंह।
4. कबीर वाणी सुध–पारसनाथ तिवारी।

6.8 सात्रिक प्रश्न :

1. कबीर काव्य की साहित्यिक विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
2. कबीर की रचनाओं में विद्रोह एवं समाज दर्शन की अवधरणा स्पष्ट करें।
3. कबीर के रहस्यवाद की विशेषताओं को रेखांकित करें।

*****

इकाई–7

सूरदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

7.1 भूमिका

7 2 उद्देश्य

7.3 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

7.3.1 सूरदास की शिक्षा

7.3.2 कृतित्व

7.3.3 भाषा शैली

7.3.4 हिंदी साहित्य में स्थान

7.3.5 सूरदास की काव्यगत विशेषताएं

स्वयं आकलन के प्रश्न

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्दावली

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

7.7 संदर्भित पुस्तकें

7.8 सात्रिक प्रश्न

7.1 भूमिका

सूरदास जी महान काव्यात्मक प्रतिभा से संपन्न कवि थे। कृष्ण भक्तों को इन्होंने काव्य का मुख्य विषय में बनाया। उन्होंने श्रीकृष्ण के सगुण रूप के प्रति शाखा भाव की भक्ति का निरुपण किया है। इन्होंने मानव हृदय की कोमल भावनाओं का प्रभाव पूर्ण चित्रण किया है। अपने काम में भावात्मक पक्ष और कलात्मक पक्ष दोनों पर उन्होंने अपनी विशिष्ट छाप जोड़ी है।

7.2 उद्देश्य

1. सूदरास के काव्य की जानकारी।
2. सूदरास के काव्य की विशेषताओं की जानकारी।
3. सूदरास के काव्य की भाषा की जानकारी।

7.3 सूदरास : व्यक्तित्व

भक्तिकालीन महाकवि सूरदास का जन्म रुनकता नामक ग्राम में 1478 ई० में पंडित राम दास जी के घर हुआ था। पंडित राम दास सारस्वत ब्राह्मण थे। उनका परिवार निर्धनता के साथ अपना गुजारा कर रहा था। वह अपने माता-पिता की चौथी संतान थे। कुछ विद्वान् 'सीही' नामक स्थान को सूरदास का जन्म स्थल मानते हैं। बहुत से लोग यह मानते हैं कि वह जन्म से ही अंधे थे। क्योंकि वह अंधे थे इसलिए उनके माता-पिता और बड़े भाई इनका सम्मान नहीं करते थे। वह हर पल सूरदास के अंधेपन का मजाक उड़ाते थे। कोई भी माता-पिता का यह फर्ज बनता है कि वह अपने बच्चे की जरूरतों को पूरा करे। लेकिन सूरदास के माता-पिता का दिल सूरदास के लिए पत्थर की तरह था। इनके माता और पिता इतने निर्दयी थे कि वह सूरदास को ढंग से खाना तक भी नहीं देते थे। इस तरह के भेदभाव से सूरदास का मन एक पल के लिए दुखी होता था पर फिर भी वह अपने आप को संभाल लेते थे। उनका सबसे अच्छा सहारा श्री कृष्ण थे। उन्होंने बचपन से ही भगवान की भक्ति करनी शुरू कर दी। भगवान श्री कृष्ण से उनका एक अलग प्रकार का ही नाता जुड़ गया था।

सूरदास जन्म से अंधे थे या नहीं इस संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों का कहना है कि बाल मनोवृत्तियों एवं चेष्टाओं का जैसा सूक्ष्म वर्णन सूरदास जी ने किया है। वैसा वर्णन कोई जन्मांध व्यक्ति कर ही नहीं सकता इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि वह संवत बाद में अंधे हुए होंगे। वह हिंदी भक्त कवियों में शिरोमणि माने जाते हैं।

सूरदास का विवाह:- कहा जाता है कि सूरदास जी ने विवाह किया था। हालांकि इनके व्यवहार को लेकर कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं हुए हैं लेकिन फिर भी उनकी पत्नी का नाम रत्नावली माना गया है। कहा जाता है कि संसार से विरक्त होने से पहले सूरदास जी ने अपने परिवार के साथ यह जीवन व्यतीत किया करते थे।

7.3.1 सूरदास की शिक्षा :-

अपने परिवार से विरक्त होने के पश्चात सूरदास जी दिनता के पद गाया करते थे। कवि सूरदास के मुख से भक्ति का एक पद सुनकर श्री वल्लभाचार्य ने अपना शिष्य मान लिया। जिसके बाद वह कृष्ण भगवान का स्मरण और उनकी लीलाओं का वर्णन करने लगे। साथ ही वह आचार्य वल्लभाचार्य के साथ मथुरा के गऊघाट पर स्थित श्री नाथ के मंदिर में भजन-कीर्तन किया करते थे महान कवि सूरदास आचार्य बल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य में से एक थे और एक अष्टछाप कवियों में भी सर्वश्रेष्ठ स्थान रखते हैं।

महाकवि सूरदास की भक्ति में गीतों की गूंज चारों तरफ फैल गई थी जिसे सुनकर स्वयं महान शासक अकबर भी सूरदास की रचनाओं पर मुग्ध हो गए थे जिसने उनके काम से प्रभावित होकर अपने यहां रख लिया था। आपको

बता दें कि सूरदास के काव्य की ख्याति बनने के बाद हर कोई सूरदास को पहचानने लगा ऐसे में अपने जीवन के अंतिम दिनों को सूरदास ने ब्रज में वितरित किया जहां रचनाओं के बदले उन्हें जो भी प्राप्त होता उसी से सूरदास अपना जीवन बसर किया करते थे।

सूरदास जी श्री कृष्ण के परम भक्त थे। वह हर पल भगवान की भक्ति में ही डूबे रहते थे। भगवान को पाने की इच्छा की लालसा के चलते ही एक दिन उन्होंने वृन्दावन धाम जाने की सोची। आखिरकार वह वहां के लिए रवाना हो ही गए। अंत में जब वह वृन्दावन पहुंचे तो उन्हें वहां पर एक ऐसे शख्स मिले जिनकी वजह से उनके जीवन ने एक नया मोड़ ले लिया। सूरदास जी को वहां पर बल्लभाचार्य जी मिले।

वह सूरदास जी से मात्र 10 साल ही बड़े थे। बल्लभाचार्य जी का जन्म 1534 में हुआ था। उस समय वैशाख कृष्ण एकादशी चल रही थी। बल्लभाचार्य जी की नजर मथुरा की गाऊघाट पर बैठे एक इंसान पर गई। वह शख्स श्री कृष्ण की भक्ति में डूबा हुआ नजर आ रहा था।

जब बल्लभाचार्य जी ने उसके पास आकर उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम सूरदास बताया। बल्लभाचार्य जी सूरदास जी के व्यक्तित्व से इतना ज्यादा प्रभावित हुए कि उन्होंने सूरदास जी को अपना शिष्य बना लिया। वह सूरदास जी को श्रीनाथ जी ले गए। और वहां पर उन्होंने इस कृष्ण भक्त को मंदिर की जिम्मेदारी भी सौंप दी। वहां पर वह अनेकों भजन लिखने लगे। बल्लभाचार्य जी की शिक्षा के चलते सूरदास जी के जीवन को एक सही दिशा मिल गई।

सूरदास एक बार बल्लभाचार्य जी के दर्शन के लिए मथुरा के गऊघाट आए और उन्हें सुरक्षित एक पद गाकर सुनाया, बल्लभाचार्य ने तभी उन्हें अपना शिष्य मान लिया सूरदास की सच्ची भक्ति और पद रचना की निपुणता देखकर बल्लभाचार्य ने उन्हें श्रीनाथ मंदिर का कीर्तन भार सौंप दिया, तभी से वह मंदिर उनका निवास स्थान बन गया सूरदास जी विवाहित थे तथा विरक्त होने से पहले भी अपने परिवार के साथ ही रहते थे। बल्लभाचार्य जी के संपर्क में आने से पहले सूरदास जी दीनता के पद गाया करते थे तथा बाद में अपने गुरु के कहने पर कृष्ण लीला का गान करने लगे।

सूरदास जी की मृत्यु 1583 ई० में गोवर्धन के पास पारसौली नामक ग्राम में हुई थी।

7.3.2 कृतित्व :

भक्त शिरोमणि सूरदास जी ने लगभग सवा लाख पर्दा की रचना की थी जिनमें से केवल आठ से दस हजार पद ही प्राप्त हो पाए हैं। 'काशी नागरी प्रचारिणी' सभा के पुस्तकालय में यह रचनाएं सुरक्षित हैं। पुस्तकालय में सुरक्षित रचनाओं के आधार पर सूरदास जी की ग्रंथों की संख्या 25 मानी जाती है, किंतु इनके तीन ग्रंथों ही उपलब्ध हुए हैं, जो अग्रलिखित हैं :-

सूरसागर, सूर- सारावली, साहित्य लहरी।

1. **सूरसागर** - यह सूरदास जी की एकमात्र प्रमाणिक कृति है। यह एक गीतिकाव्य है, जो 'श्रीमद भगवत ग्रंथ' से प्रभावित है। इसमें कृष्ण की बाल लीलाओं, गोपी-प्रेम, गोपी विरह उद्धव गोपी-संवाद का बड़ा मनोवैज्ञानिक और सरस वर्णन है।
2. **सूरसारावली**- यह ग्रंथ सूरसागर का सार भाग है जो अभी तक विवाद इस पद स्थिति में है किंतु यह भी सूरदास जी की एक प्रमाणिक कृति है। इसमें 1107 पद हैं।
3. **साहित्यलहरी**- इस ग्रंथ में 118 दृष्टि कूट पदों का संग्रह है तथा इसमें मुख्य रूप से नायिकाओं एवं अलंकारों की विवेचना की गई है। कहीं-कहीं श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन तथा एक-दो स्थलों पर महाभारत की कथा के अंशों की झलक भी दिखाई देती है।

7.3.3 भाषा शैली:-

सूरदास जी ने अपने पदों में ब्रज भाषा का प्रयोग किया है तथा इनके सभी पद गीतात्मक हैं, जिस कारण इनमें मधुर गुड़ की प्रधानता है। इन्होंने सरल एवं प्रभाव और शैली का प्रयोग किया है। उनका काव्य मुक्तक शैली पर आधारित है। व्यंग वक्रता और वाग्वैदिग्धता सूर की भाषा की प्रमुख विशेषताएं हैं। तथा वर्णन न वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। दृष्टिकूट पदों में कुछ कलिष्ठता अवश्य आ गई है।

7.3.4 हिंदी साहित्य में स्थान:-

सूरदास जी हिंदी साहित्य के महान काव्यात्मक प्रतिभा संपन्न कवि थे। इन्होंने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं और प्रेम लीलाओं का जो मनोरम चित्रण किया है। वह साहित्य में अद्धिति है। हिंदी साहित्य में वास्तव वर्णन का एकमात्र कवि सूरदास जी को ही माना जाता है। साथ ही उन्होंने विरह वर्णन का भी अपनी सरचनाओं में बड़ा ही मनोरम चित्रण किया है।

7.3.5 सूरदास की काव्यगत विशेषताएं

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।
2. सूर ने वात्सल्य, श्रृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल- कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है-

   मैया कबहिं बढैगी चौटी?

   किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

   सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।
3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रुप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथ श्रृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

   हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

   समदरसी है मान तुम्हारी, सोई पार करौ।
6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रुप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है

8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।

9. सूर का भ्रमरगीत वियोग श्रृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं।

10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।

11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।

12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यजना हुई है। उनके कृष्ण- लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।

13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकी की वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. सूरदास जी का जन्म कहाँ हुआ था?
2. सूरदास की प्रसिद्ध रचना कौन सी है?
3. सूरदास जी की मृत्यु कहाँ हुई थी?

7.4 सारांश :

सूरदास जी को हिंदी का श्रेष्ठ कवि माना जाता है। उनकी काव्य रचनाओं की प्रशंसा करते हुए डॉ. हाजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि सूरदास जी ने अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे पीछे दौड़ा करता है और उपमाओं की बाढ़ आ जाती है। और रूपों की बारिश होने लगती है साथ ही सूरदास ने भगवान कृष्ण के बाल रूप का अत्यंत सरल और सजीव चित्रण किया है। सूरदास जी ने भक्तों को श्रृंगार रस से जोड़कर काव्य को एक अद्भुत दिशा की ओर मोड़ दिया था। साथ ही सूरदास जी के काव्य में प्राकृतिक सौंदर्य का भी जीवंत उल्लेख मिलता है इतना ही नहीं सूरदास जी ने काव्य और कृष्ण भक्तों का जो मनोहरी चित्रण शुद्ध किया व अन्य किसी कवि की रचनाओं में नहीं मिलता।

7.5 कठिन शब्दावली :

औगुन - अवगुण। चित - हृदय। समदरसी - समान। तुम्हारी - तुम्हारा। करौ - करना।

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. उत्तर- सीही।
2. उत्तर- सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी।
3. उत्तर- 1583, ब्रज।

7.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी – सूर साहित्य।
2. मोहन गौतम – सुर की काव्य कला।

7.8 सात्रिक प्रश्न :

1. सूरदास का जीवन परिचय लिखिए।
2. सूरदास के कृतित्व का परिचय बताओं।

*****

इकाई-8
सूरदास : काव्यगत विशेषताएं

संरचना

8.1 भूमिका

8.2 उद्देश्य

8.3 सूरदास के काव्य की विशेषताएं

8.3.1 भावपक्ष

8.3.2 कलापक्ष

स्वयं आकलन प्रश्न

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्दावली

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भित पुस्तकें

8.8 सात्रिक प्रश्न

8.1 भूमिका

महाकवि सूरदास हिन्दी की कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे पहले भक्त है और बाद में कवि है। उन्होंने अपने काव्य में कृष्ण की भक्ति का वर्णन किया है। सूरदास के काव्य में श्रृंगार वर्णन, बाल वर्णन, भक्ति भावना और प्रकृति सौन्दर्य से संबंधित पद हैं। भक्ति काल में सूरदास ने श्रृंगार रस को राजस्व की सीमा तक पहुँचा दिया है।

8.2 उद्देश्य

1. सूरदास के काव्य की जानकारी।
2. सूरदास के काव्य की विशेषताओं की जानकारी।
3. सूरदास के काव्य की भाषा की जानकारी।

8.3 सूरदास के काव्य की विशेषताएं

8.3.1 भावपक्ष

मानव मन में उठने वाले समस्त भाव और उनकी अभिव्यक्ति भाव पक्ष के अन्तर्गत आती है। इस दृष्टि से सूरदास जी का वात्सल्य-वर्णन, भ्रमरगीत में गोपिकाओं के भावों की घुमइन, विरह की विविध अवस्थाएं, प्रकृति-चित्रण तथा अन्य रसात्मक स्थल सभी भाव-पक्ष के अंतर्गत आते हैं। सूरदास के भाव-पक्ष की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

- **श्रृंगार का वर्णन** -

सूरदास ने 'सूरसागर' में राधा कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत ने किए हैं। सूर ने राधा-कृष्ण के प्रारम्भिक परिचय का आकर्षक वर्णन किया है। कृष्ण, राधा से पूछते हैं

बूझत स्याम कौन तू गोरी?
कहाँ रहति काकी है बेटी? देखी नहीं कबहूं ब्रज-खोरी॥

इसके पश्चात् दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाता है। फिर तो किसी की परवाह न करके दोनों एक साथ घूमते हैं। गोपियाँ भी उनकी विविध लीलाओं और क्रीड़ाओं में हिस्सा लेती हैं। संयोग के साथ वियोग के भी अनेक चित्र मिलते हैं। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। गोपियाँ, राधा, यशोदा, गोप एवं ब्रज के सभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी उनके विरह में व्याकुल हो उठते हैं। यहाँ तक कि संयोगकालीन सभी सुखप्रद वस्तुएँ गोपियों को कष्ट देने वाली हो जाती हैं। वे कहती हैं-

''बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजें।''
तब वे लता लागति अति सीतल,
अब भई बिषम ज्वाला का पुंज॥

- **वात्सल्य चित्रण** -

सूर ने कृष्ण की बाल लीलाओं और क्रीड़ाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्रण किया है। माता यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में झुलाने, कृष्ण के घुटनों के बल चलने, किलकारी मारने, नाचने, गाएँ चराने जाने, माखन चुराने आदि के मनोहारी दृश्य 'सूरसागर' में प्रस्तुत किए गए हैं। हाथ में माखन लिए कृष्ण का यह चित्र देखिए

सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरुवनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए॥

माखन चोरी करने पर कृष्ण पकड़े जाते हैं, किन्तु वे बड़ी चतुराई से अपनी सफाई देते हैं-

मैया मैं नहिं माखन खायौ।

ख्याल परै, ये सखा सबै मिली, मेरे मुख लपटायाँ॥

देखि तुही छींके पर माखन, ऊंचे धारि लटकायो।

''है जु कहत नान्हें कर अपने मैं कैसे धरि पायो॥''

• भक्ति भावना

सूर की भक्ति भावना पुष्टिमार्ग से प्रभावित है, जिसमें भगवद्कृपा को सर्वोपरि माना गया है। इसके अतिरिक्त सूर में दास्य-भाव, सख्य-भाव, माधुर्य-भाव, प्रेम-भाव और नवधा भक्ति के दर्शन भी होते हैं। सूर की भक्ति मुख्य रूप से सखा-भाव की है। सूर ने बड़ी चतुराई से काम लिया है। वे कृष्ण से अपने उद्धार की याचना करते हुए कहते हैं-

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज

महा पतित, कबहूँ नहिं आयी, नैकु तिहारे काज॥

• दार्शनिकता -

सूर के दार्शनिक विचार बल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन न करते हुए उन्होंने सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म का कोई रूप, गुण और जाति नहीं है, अतः चंचल मन बिना किसी आधार के इधर-उधर भटकता रहता है-

रूप-रेख गुन जाति जुगती बिनु, निरालम्ब मन चक्रित धावै।

सब विधि अगम विचारहिं तातै, सूर सगुन लीला पद गावै॥

ब्रह्म के अतिरिक्त सूर ने जीव, जगत् और माया आदि पर भी विचार किया है। सूर ने ब्रह्म और जीवन को एक माना है तथा जीव को गोपाल का अंश भी बताया है; परन्तु जीव माया के कारण अपने स्वरूप को भूल जाता है। वे कहते हैं

आपुनपी आपुन ही बिरसयौ।

जैसे स्वान काँच मन्दिर में भ्रमि-भ्रमि मरयो॥

सूरने माया का वर्णन गाय के रूप में किया है और प्रभु से प्रार्थना की है कि मायारूपी गाय से उसकी रक्षा करे -

माधौ नेकु हटको गाई।

भ्रमत निसि - बासर अपथ-पथ, अगह गहिं नहिं जाइ॥

वे जानते हैं कि जिस पर दीनानाथ श्रीकृष्ण कृपा कर दें, उसके समान कुलीन और सुन्दर कोई नहीं हो सकता-

जापर दीनानाथ ढरै।

सोई कुलीन, बड़ौ सुन्दर सोइ, जिहिं पर कृपा करै॥

इसीलिए वे अपने मन के इधर-उधर भटकने पर उसे फटकारते हैं कि हे मेरे धूर्त मन, गोविन्द के बिना इस संसार में तुझे सुख नहीं मिल सकता-

रे सठ, बिन गोबिंद सुख नाहीं।

तेरौ दुःख दूरि करिबे का रिधि सिधि फिरिफिरि जांहीं॥

संसार को क्षणभंगुर और मिथ्या मानते हुए सूर ने प्रभु से प्रार्थना की है

''सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करो नन्दलाल।''

• प्रकृति-चित्रण -

कृष्ण की लीलाओं का चित्रण करते समय सूर ने प्रकृति के विविध रुप प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में सर्वाधिक चित्रण किया है। वियोग काल में प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। श्रीकृष्ण के विरह में प्रकृति गोपियों के विरह को और अधिक उद्दीप्त करती प्रतीत होती है-

कोऊ माई बरजो री या चंदहि।

अति ही क्रोध करत है हम पर, कुमुदिनी कुल अनन्दहि॥

प्रकृति का रोमांचक, आलम्बन, अलंकार और पृष्ठभूमि रूप भी सूर-काव्य में मिलता है।

• सूरदास के काव्य में भावुकता

सूर के विनय, बाल-लीला और गोपियों के प्रेम-प्रसंग में एक से एक अनूठे भावुकतापूर्ण उदाहरण मिल जाते हैं। विनय के पदों में सूर जहाँ आत्मानुभूति अभिव्यक्त करते है, वहाँ वात्सल्य से पूर्ण हृदय लेकर कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रांकन करते हैं। उनकी भावुकता संयोग-वर्णन में जहाँ आनंद सागर में उत्ताल तरंगे उठा देती है। वहाँ वियोग-वर्णन में मार्मिक अनुभूति से हृदय को विभोर बना देती है।

• भावुकता में वाग्वैदिग्धता

सूर में जितनी सहृदयता और भावुकता है उतनी ही चतुरता और वाग्वैदिग्धता भी विद्यमान है। प्रेम-प्रसंगों में अनौचित्य से बचने के लिए सूर की भावुकता वाग्वैदिग्धता का ही आश्रय लेती है। सूर के कृष्ण बड़ी वाग्वैदिग्धता से ग्वालिनी को झूठा सिद्ध करते हैं-

झूठहि माँहि लगावति ग्वारि।

खेलत ते मांहि बोल लियो इत भुजभरि दीन्हीं अकबरि।

मेरे कर अपनी कुछ धारति, तुम्हीं चोली धरि फारि॥

'भ्रमरगीत' प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उद्‌भव द्वारा योग, ज्ञान और निर्गुण का सन्देश दिए जाने पर गोपियाँ कभी खीझ, कभी उपालम्भ, कभी व्यंग्य और कभी उपहास का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनन्य-प्रेम का परिचय देती हैं और अपने वाग्वैदग्ध्य से उद्धव को परास्त कर देती हैं। उद्धव पर व्यंग्य करती हुई वे कहती हैं-

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे।

वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आर्वे ते कारे॥

• उत्कृष्ट गीतकार

सूरदास जी के समस्त पद संगीत की लय-ताल पर खरे उतरते हैं। उनके गीत-काव्य में शब्द चयन, चित्रमय-कल्पना, भाव-सौन्दर्य के दर्शन, वैयक्तिक राग-द्वेष, उल्लास, हर्ष-शोक आदि भावों की अभिव्यक्ति सफल संगीत की स्वर-लहरी में हैं। तभी सूर के पदों की प्रशंसा करते हुये कहा गया है-

''किंधा सूर को सर लग्यौ, किंधौ सूर की पीर।''

8.3.2 कलापक्ष

भाव-पक्ष की तरह ही सूरदास जी के काव्य कला-पक्ष की सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण है। उनके काव्य में रीति, गुण, अलंकार, रस आदि प्रत्येक काव्यांग का सफल निरुपण हुआ है। महाकवि सूरदास की कलागत विशेषाताएं इस प्रकार हैं-

1. भाषा

काव्य सौंदर्य की दृष्टि से सूरदास ने भाषा को विशिष्ट रूप दिया है। सूर की भाषा अवधी और ब्रजभाषा है। उनकी भाषा में ब्रज का माधुर्य बिखरा हुआ है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लोकोक्ति का एक उदाहरण देखिए–

''अपने स्वास्थ्य के सब कोउ, जो छोटी।

'तेई है खोटी, जाहि लगें सोई पै जाने।।''

2. अलंकारों का सफल प्रयोग

सूर के काव्य में अलंकार भावाभिव्यक्ति में सहायक बनकर स्वयं ही समाविष्ट हो गये है। समतामूलक अलंकारों के प्रयोग से सूर की भावाभिव्यक्ति निखर उठी है। उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का सफल प्रयोग उनके काव्य में मिलता हैं। दृष्टव्य है रूपक अलंकार का एक चित्र–

''चित्र रौंके हूँ न रही।

स्याम सुन्दर सिन्धु सम्मुख उमंगि बही।।''

3. शैली

सूर की काव्य की सर्वाधिक विशेषता हैं– सजीवता, प्रौढ़ता और औजस्विता का रुपक देखिए–

''अविगत नाति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूंगे मीठे फलौ की रस अन्तरगत ही भावै।।''

4. शब्दों के कुशल शिल्पी

सूरदास जी के शब्द–शब्द में भावी की सरिता लहराती हुई प्रतीत होती है। उन्होंने लोक–प्रचलित ब्रजभाषा को सशक्त, प्रवाहपूर्ण और लोकप्रिय बनाने के लिये संस्कृत, अरबी, फारसी, बड़ी बोली, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी आदि के शब्दों को भी अपनाया हैं।

5. छन्द

सूर का काव्य गैय होने के कारण उसमें छन्दों का विशेष महत्व नहीं है तथापि सूर सागर में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उसमें रोला, कुण्डल, राधिका, रूपमाला, हीर, सवैया, वीर, रीतिका आदि प्रमुख हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. काव्यगत विशेषता क्या है?
2. सूरदास की शैली क्या है?
3. सूरसागर के वर्ण विषय का आधार क्या है?
4. सूरदास के काव्य में कौन सा रस प्रधान है?

8.4 सारांश

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर सूर के काव्य में अनेक अमूल्य भाव–मुक्ता विद्यमान है तो दूसरी ओर उन अमूल्य मुक्ताओं में बेहद चमक भी है। सूरदास जी ने अपने भावों को अनुपम कला के द्वारा चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया हैं। वस्तुतः सूर रससिद्ध कवि हैं।

8.5 कठिन शब्दावली :

अविगत– गति। कहत – कहना। अन्तरगत – हृदय। महा – अधिक। सोभित – शोभित। नवनीत – नवीन। हृदय । महा– अधिक ।

8.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर :

1. उतर - भक्ति भावना, सूरदास के काव्य में भावुकता श्रृंगार विधान, वाग्वैदिग्धता।
2. उतर - गीति काव्य की सरस पद शैली है।
3. उतर - सूरसागर के वर्ण्य विषय का आधार 'श्रीमद्‌भागवत' है।
4. उतर - सूरदास के पदों में श्रृंगार और वात्सल्य रस की प्रधानता है।

8.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - सूर साहित्य।
2. मोहन गौतम - सुर की काव्य कला।

8.8 सात्रिक प्रश्न :

1. सूरदास की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन करें।
2. सूरदास की भाषाशैली की विशेषताओं को लिखें।

*****

इकाई-9
सूरदास : काव्यभाषा

संरचना

9.1 भूमिका

9.2 उद्देश्य

9.3 सूरदास काव्यभाषा

स्वयं आकलन प्रश्न

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्दावली

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

9.7 संदर्भित पुस्तकें

9.8 सात्रिक प्रश्न

9.1 भूमिका

भक्तिकाल में ब्रज भाषा को साहित्य की भाषा स्थापित करने में सूरदास का महत्वपूर्ण योगदान है। सूरदास की भाषा ब्रजभाषा है। उन्होंने सूरसागर जैसी प्रसिद्ध रचना का सृजन ब्रजभाषा में किया है। विद्वानों ने यह माना है कि सूरसागर जैसी उच्चकोटि रचना अन्य भाषा में नहीं है। यह रचना किसी प्रचलित ब्रजभाषा की गीति-परम्परा का विकसित रूप हो सकता है। यह परंपरा मौखिक रही हो। सूरदास ने ग्रामीण ब्रजभाषा का प्रयोग किया है उनकी ब्रजभाषा गोस्वामी तुलसीदास जैसी साहित्यि ब्रजभाषा नहीं है। ब्रजभाषा अपनी कोमलता और सरसता के बल पर एकदम काव्योचित भाषा है। सूरदास की भाषा में दोनों प्रकार की विशेषताएं सामान्य विशेषताएं और शास्त्रीय विशेषताएं मिलती है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का मत ध्यातव्य है वे लिखते हैं कि ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के आसन पर आसीन करने का श्रेय महाकवि सूरदास को है। डॉ. मनमोहन गौतम सूर को ब्रजभाषा के निर्माण का श्रेय देते हुए उन्हें ब्रजभाषा का बाल्मीकि मानते हैं।

9.2 उद्देश्य

1. सूरदास की कविता के वर्ण्य विषय की जानकारी।
2. सूरदास के काव्य-विशेषताओं का बोध।
3. सूरदास की कविता की काव्यभाषा की जानकारी।

9.3 सूरदास : काव्यभाषा

भाव-पक्ष का सम्बन्ध अनुभूति पक्ष से है। कवि जो कुछ अनुभव करता है, संवेदनशील हृदय में जैसा धारण करता है, उसकी भावमयी अभिव्यक्ति भाव पक्ष के अन्तर्गत की जाती है। भावुकता साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण है। सूर का भाव पक्ष अत्यन्त सरस और सबल है। सूर काव्य के भाव पक्ष की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- **भाषा**

काव्य सौंदर्य की दृष्टि से सूरदास ने भाषा को विशिष्ट रूप दिया है। सूर की भाषा अवधी और ब्रजभाषा है। उनकी भाषा में ब्रज का माधुर्य बिखरा हुआ है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों का प्रयोग किया हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लोकोक्ति का एक उदाहरण देखिए-

''अपने स्वास्थ्य के सब कोड, जो छोटी।
तेई है खोटी, जाहि लगैं सोई पै जानै।''

सूरदास की भाषा में सरलता का गुण विद्यमान है। उन स्थलों को छोड़कर जहां सूर का कविरूप अधिक उद्‌बुद्ध है उसमें सर्वत्रा बोधगम्यता मिलती हैं उन्होंने जो दृष्टकूट लिखे है उनकी भाषा अलबत्ता इस प्रकार के गुणों से अलग है प्रवाहपूर्णता भी ऐसी ही व्याप्त विशेषता है। सूर के काव्य, गीतिकाव्य है। उनकी रचना विभिन्न राग-रागनियों में हुई है। उनमें संगीतात्मकता और सहजप्रवाह का आना सर्वथा संभाव्य है-

तेरी बुरी न कोऊ माने।
रस की बात मधुप नीरस, सुनु, रसिक होत सो जाने॥
दादुर बसे निकट कमलन के जन्म न रसं पहिचानै।

कवि ने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया। इससे लगता है कि सूरदास को भावों को अभिव्यक्त करने में जिस प्रकार के शब्द उपयुक्त लगे हैं, उन्होंने ग्रहण कर लिए है। उनके द्वारा प्रयुक्त इस प्रकार है :-

तत्सम- जल, सुत, दारा, मदन, अनंग, पट, पद, अवधि, हरि, धन आदि। तद्भव पाती, बुद्धि, वचन, अखियां, नैन, हाथ, जमुना, दही, जुबतिन आदि।

देशज - छाक, लरिकिनी, कौन, तौर, करा आदि।

विदेशी - तरवारि, नपफा, दिवानी, जहाज, बाज, ख्याल आदि।

भाषा को सशक्त बनाने के लिए सूरदास ने अपने काव्य से मुहावरे और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए आंख बरति है मेरी, ठगोरी लाई, तेरी कही पवन को भुस भयो, निपट दई को खोयो, मामी पीना, मन की मन ही माँझ रही, आदि मुहावरे बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रयुक्त मिलते हैं और अपने स्वास्थ के सब कोऊ, अपनो दूध छाड़ि को पीवे खार कूप को बारी, कहा कथत मौसी के आगे जानत नानी नानन, खाटी दही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को, काकी भूख गई मन लाडू, सूर सुकत हपि नाव चलावत ये सरिता है सखी, आदि लोकोक्तियां भी भ्रमरगीत की भाषा को चुटीला बना देती है।

• अलंकार-विधान -

सूरदास के काव्य में अलंकारों का अधिकारपूर्वक प्रयोग मिलता है। सूरदास भक्त कवि है। जहाँ उनका कवि रूप अधिक उभर आया है, उन्होंने अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है इसीलिए डॉ, हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ये शब्द कहे हैं- 'सूरदास जब अपने विषय में वर्णन करते हैं तो मानो अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे दौड़ा करता है, उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। भ्रमरगीत प्रसंग में भी जहां सूरदास का कवि रूप अधिक देखने में आता है वहां अनेक अलंकारों की योजना की गई है। इनमें कुछ अलंकारों के उदाहरण दृष्टव्य हैं-

अनुप्रास - तंब वे लता लगती अति सीतल।

उपमा - प्रीति करि दीन्ही गरे छुरी। जैसे बल्कि चुगाय कपट कन पाछे करत बुरी।।

रूपक - दृष्टि धर करि मारि सांवरे घायल सब बजनारि।

उत्प्रेक्षा - तुमसो प्रेमकथा को कहियो मनहूं काटियो घास।

श्लेष - दुहूं कूलि तरूरी मिली तरत न लादी वार।

यमक- सारंग विनय करति सारंग सौ सारंग दुख विसराबहु।

संदेह - किधौं घन गरजत नाहिं उन देसनि।

किधैं वहि इन्द्र हठिहि हरि बरज्यो, दादुर खाये सेसनि।

• बिंब विधान-

सूर के शब्दों में वर्ण्य वस्तु का चित्र उपस्थित करने की अद्भुत कला है। उनके द्वारा वर्णित एक एक बात हमारी आंखों के आगे सजीव हो उठती है। शास्त्रीय शब्दावली में इस कला को बिंब योजना कहते हैं। ऐसे अनेक बिंब भ्रमरगीत में भरे हुए हैं। श्रव्य बिंब, घाण बिब तो कम है पर दृश्य बिंब बहुत है। उदाहरणार्थ-

निरखति अंक श्याम सुंदर के बार बार लावति है छाती।

लोचन जल कागद मसि मिलके ह्वे गई श्याम श्याम जू की पाती।।

• कोमलकांत पदावली -

कोमलकान्त पदावली सूर की भाषा की प्रमुख विशेषता है। कवि का वर्ण्य विषय के प्रति जितना अधिक लगाव होता है उसके द्वारा किया गया शब्दचयन भावों और विचारों को उतना ही अधिक अनुरूपता एवं सशक्ता के साथ व्यक्त करने में समर्थ बन जाया करता है। सूरदास की पद-रचना की प्रेरिका शक्ति कृष्ण की शक्ति है। भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त होने के कारण वे लीला-पदों और माधुर्य भक्ति के भावों को इतनी तन्मयता के साथ व्यक्त करते हैं

कि उसकी भाषा के स्वरूप में हर प्रकार के गुणों का स्वयमेव समावेश हो जाता है। भाषा के क्षेत्रों में हम इसे अनुरूप एवं उपयुक्त शब्द संयोजना का नाम दे सकते हैं। उनकी भाषा में चित्रमयता का गुण इस बात का साक्षी है कि उनकी अन्तरात्मा ने शब्दागत गत अर्थ के सौन्दर्य को अपनी आंखों से भली भांति देखा और परखा है।

• **संगीतात्मक्ता** -

सूर संगीतज्ञ थे, अतः उनके संगीत ज्ञान ने भी उनकी भाषा के गुणों को और अधिक निखार दिया है। सूर ने अपने पदों में जिस किसी भाव को लिया है उसे पूर्ण सजीवता के साथ प्रस्तुत करने में असाधरण सफलता प्राप्त की है। सूर विषय के अनुरूप एवं विशिष्ट शब्दावली के सिद्धान्त प्रयोक्ता है। मुहावरों और लोकोक्तियों की अन्रात्मा से उनका गहरा एवं आन्तरिक परिचय है। भाषा में इन सभी गुणों का समाहार कर, उन्होंने ब्रजभाषा की शक्ति को द्विगुणित बना दिया और उसमें सजीवता के रस का संचार कर सहृदय-जनग्राही बना दिया है।

• **श्रृंगारिता रस** -

सूरदास ने सूरसागर में राधा कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत ने किए हैं। सूर ने राधा-कृष्ण के प्रारम्भिक परिचय का आकर्षक वर्णन किया है। कृष्ण, राधा से पूछते हैं

बूझत स्याम कौन तू गोरी?
कहाँ रहति काकी है बेटी? देखी नहीं कबहूँ ब्रज-खोरी॥

इसके पश्चात् दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाता है। फिर तो किसी की परवाह न करके दोनों एक साथ घूमते हैं। गोपियाँ भी उनकी विविध लीलाओं और क्रीड़ाओं में हिस्सा लेती हैं।

संयोग के साथ वियोग के भी अनेक चित्र मिलते हैं। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। गोपियाँ, राधा, यशोदा, गोप एवं ब्रज के सभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी उनके विरह में व्याकुल हो उठते हैं। यहाँ तक कि संयोगकालीन सभी सुखप्रद वस्तुएँ गोपियों को कष्ट देने वाली हो जाती हैं। वे कहती है-

''बिनु गोपाल वैरिन भई कुंजें।''
तब वे डेटा लागत अति सीतल,
अब भाई विद्युत ऊर्जा का पुंलै॥

• **वात्सल्य रस चित्रण** -

सूर ने कृष्ण की बाल लीलाओं और क्रीड़ाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्रण किया है। माता यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में झुलाने, कृष्ण के घुटनों के बल चलने, किलकारी मारने, नाचने, गाएँ चराने जाने, माखन चुराने आदि के मनोहारी दृश्य 'सूरसागर' में प्रस्तुत किए गए हैं। हाथ में माखन लिए कृष्ण का यह चित्र देखिए -

सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरुवनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किए॥

माखन चोरी करने पर कृष्ण पकड़े जाते हैं: किन्तु वे बड़ी चतुराई से अपनी सफाई देते हैं-

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परै, ये सखा सबै मिली, मेरे मुख लपटायौ।

• **लक्षणा शक्ति**

जहां मुख्य अर्थ में बाधा हो और कोई अन्य अर्थ लगाना पड़े वहां शब्द की लक्षणा शक्ति होती है। सूरदास के काव्य में पर्याप्त मात्रा में लक्षणा शक्ति का प्रयोग मिलता है। भ्रमरगीत प्रसंग एक उपालम्भ-काव्य है। गोपियों के वचनों की वक्रता और वैदग्ध्यपूर्ण अभिव्यक्ति में लक्षणा अत्यधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है। इससे भ्रामरगीत प्रसंग के शिल्प की प्रौढ़ता में अतीव वृद्धि हुई है। शब्द की लक्षणा शक्ति के अनेक उदाहरण भ्रमरगीत प्रसंग में मिलते हैं, जैसे-

'अँखिया हरि दर्शन की भूखी।

यहां पर 'भूखी' शब्द में शब्द की लक्षणा शक्ति है। भूखी का मुख्य अर्थ भूख न लगकर यहां इच्छुक अर्थ लगा रहा है। अतः यहां शब्द की लक्षणा शक्ति है। इसी तरह -

'कहि कहि कथा स्याम सुन्दर की,

'सतिल करू सब गात'

इसमें सीतल शब्द में लक्षणा शक्ति है। इस तरह के और भी बहुत प्रयोग सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग में मिलते हैं।

'ऊधों कुलिस भई यह छाती',

'ऊधै काल-चाल चौरासी',

इकटक मग जोवति अरु रोवति'

'हरिमुख की सुन मीठी बातें डरति है मन मेरी।'

इन सभी उदाहरणों में लक्षणा शक्ति लक्षित होती है।

- **शैली**

सूर की काव्य की सर्वाधिक विशेषता हैं-- सजीवता, प्रौढ़ता और औजस्विता का रूपक देखिए

''अविगत नाति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूंगे मीठे फलौ की रस अन्तरगत ही भावै ॥''

- **शब्दों के कुशल शिल्पी**

सूरदास जी के शब्द-शब्द में भावों की सरिता लहराती हुई प्रतीत होती है। उन्होंने लोक-प्रचलित ब्रजभाषा को सशक्त, प्रवाहपूर्ण और लोकप्रिय बनाने के लिये संस्कृत, अरबी, फारसी, खड़ी बोली, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी आदि के शब्दों को भी अपनाया हैं।

- **छन्द**

सूर का काव्य गैय होने के कारण उसमें छन्दों का विशेष महत्व नहीं है तथापि सूर सागर में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उसमें रोला, कुण्डल, राधिका, रूपमाला, हीर, सवैया, वीर, रीतिका आदि प्रमुख हैं।

अतः सूर की भाषा पर विचार करते समय सभी विद्वानों ने प्रायः एकमत होकर यह स्वीकार किया है कि वे रसानुरूप भाषा का प्रयोग करने में अत्यन्त सफल रहे हैं। सरस एवं मार्मिक प्रसंगों एवं मधुर आवृति की योजना से सूर को विशेष सफलता मिलती है। रूप सौन्दर्य वर्णन सम्बन्धी निम्नलिखित पद में सूर द्वारा प्रयुक्त ललित शब्दावली ध्यातव्य है। वे लिखते हैं-

ऐसा हम देखते नन्दनन्दन।

स्याम सुभग तनु पीत वसन जनु मनहुँ जलद पर तड़ित सुछन्दन॥

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. सूरदास की काव्य शैली क्या है?
2. सूरदास की भाषा की विशेषता क्या है?
3. सूरसागर की भाषा कौन सी है?

9.4 सारांश

उपर्युक्त सन्दर्भ में यह तथ्य स्मरणीय है कि सूर का मातृभूमि भी ब्रजभाषा ही थी। सूर ने ब्रजभाषा का जो रूप हमें दिया है, उसके निर्माण में अनुकूल परिस्थितियों का भी हाथ रहा है। कृष्ण की भक्ति का प्रचार बहुधा इसी भाषा के माध्यम से हुआ है। यह स्थिति ब्रजभाषा के विकास एवं व्यापकता आदि गुणों की दृष्टि से इतनी अधिक अनुकूल सिद्ध हुई है कि इसमें हर प्रकार के भावों और विचारों को सही ढंग से व्यत्तफ करने की शत्तिफ का उदय हो गया है।

9.5 कठिन शब्दावली :

कारे काले काजर – काजल। फिरिफिरि – मुड़कर आना। भ्रमत – भ्रमित होना। निसि – रात। बासर – दिन। अपथ – पथहीन। बिसरायौ – भूल जाना।

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर :

1. उतर – सूरदास का समस्त काव्य गीति-शैली में लिखा गया है।
2. उतर – सूरदास की काव्य भाषा की विशेषता काव्यभाषा में वाग्विदग्धता, उपचारवक्रता और अलंकारों का प्रयोग बिंब, प्रतीक, का प्रयोग हुआ है।
3. उतर – ब्रजभाषा।

9.9 सन्दर्भित पुस्तकें :

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी – सूर साहित्य।

2. मोहन गौतम – सुर की काव्य कला।

9.8 सात्रिक प्रश्न :

1. सूरदास की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन करे।
2. सूरदास की भाषाशैली की विशेषताओं को लिखें।

*****

इकाई–10
सूरदास की भक्ति भावना

संरचना

10.1 भूमिका

10.2 उद्देश्य

10.3 सूरदास की भक्ति भावना

स्वयं आकलन प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्दावली

10.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भित पुस्तकें

10.8 सात्रिक प्रश्न

10.1 भूमिका

सूरदास भक्तिकाल की सगुणधारा के कृष्ण भक्त कवि हैं। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा अष्टछाप के कवियों में सर्वप्रमुख थे। भक्ति के क्षेत्र में वल्लभाचार्य का साधना मार्ग 'पुष्टि मार्ग' के नाम से जाना जाता है। वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूरदास एक 'सन्त' थे जो सभी उपासना पद्धतियों, भक्ति प्रणालियों को समान भाव से देखते थे। उनके प्रारम्भिक पद विनय, आन्तरिक साधना, गुरु का महत्त्व, आदि से सम्बन्धित हैं, किन्तु पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त जो पद उन्होंने रचे वे प्रेमलक्षणा भक्ति से सम्बन्धित हैं।

10.2 उद्देश्य

(1) सूरदास की विशेषताओं का बोध।

(2) सूरदास की काव्य भाषा की जानकारी।

(3) सूरदास के काव्य में वर्णन विषय की जानकारी।

10.3 सूर की भक्ति भावना-

कृष्ण भागवत धर्म के अंतर्गत आती है। वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध परमेश्वर को भगवान का गया है। उस भगवान की भक्ति करने वाल भगवत् कहलाते हैं। भगवत् धर्म में पांच संहिताओं का बहुत महत्व है-

1. अभिगमन (ध्यान केन्द्रित करना)
2. उत्पादन (धूप, दीप, नैवेस का संचयन)
3. इज्या (मंदिर में ईष्ट की सेवा)
4. स्वाध्याय (इष्ट मंत्र का जप)
5. योग (मूर्ति का ध्यान एवं उसमें जन्मय होना)

पुष्टिमार्गीय भक्ति पर इनका बहुत प्रभाव है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के सदर्भ में दक्षिण के आलवार सता को नहीं भुलाया जा सकता। 'आलवार' तमिल भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है जो गहरे जाता है। यह शब्द तमिल के वैष्णव भक्तों के लिए आता है। इन भक्तों ने कांता, वात्सल्य एवं दास्य भाव की भक्ति का अपनाया था। इन भक्तों ने परवतीं वैष्णवाचार्यो को बहुत प्रभावित किया है। कृष्णभक्ति के प्रचार में जो गोपाल की उपासना पद्धति चली उस पर आभार जाति से प्रभाव ग्रहण करने के प्रमाण मिलते हैं। दविड़ भाषा में 'आभीर' शब्द आया है और उसका अर्थ 'गोपाल' है। विद्वानों ने माना है कि बाल गोपाल की पूजा और राघ तथा गोपियों की लीला आभीर जाति की देन है। भागवत में भक्ति का जन्म द्रविड़ देश में कहा गया है। भक्ति द्रविड़ि ऊपजी लाये 'रामानंद' आदि कथन इसीलिए सारपूर्ण लगते हैं। वैसे भी वैष्णव धर्म के सभी आचार्य दक्षिण के थे। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि कृष्ण का काला रंग भी दक्षिण प्रभाव के कारण माना गया है। ये दक्षिण से वृदावन आये और वहां बालकृष्ण की भक्ति एवं सेवा को महत्व दिया। वल्लभाचार्य ने इस भक्तिमार्ग को प्रशस्त किया। इस भक्ति में भक्त स्वच्छंद रूप से अपने को भगवान की कृपा पर छोड़ देता है। अपनी पूर्ण आस्था भगवान से रखता है। सूरदास के काव्य में अभिव्यक्त भावना के दो चरण हैं। प्रथम चरण में बल्लभाचार्य से भेंट से पूर्व भक्तिपूर्ण भावाद्गार है। उसमें सूर ने भगवान के सामने तरह-तरह की विनय की है। अपने तुच्छ समझकर दैन्य प्रकट किया है। यह भक्ति मूलत दास्य भाव की भक्ति है। दूसरा चरण बल्लभाचार्य से भेंट के पश्चात का है सूर गऊघाट पर रहते थे वहां उनको बल्लभाचार्य के आने का पता चला। वे उचित समय पर बल्लभाचार्य जी से मिलने गये और उन्हें दो पद गाकर सुनाये-

ही हरि सब पतितनि का नायक प्रभु।

हाय सब पतितनि को टिको

इन पदों को सुन और सूरदास के दैन्य देखकर बल्लभाचार्य ने उनसे कहा – जो सूर है तो कहो को घिघयात हो, कुछ भगवतलीला को गान करो इस'। इस पर सूर ने उनसे कहा कि महाराज मुझे लीलाओं का ज्ञान नहीं। तब बल्लभाचार्य ने उन्हें अपने सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और उसके पश्चात् से सूर ने विनय के पदों को एकदम छोड़ दिया और पुष्टिमार्ग की रीति के अनुसार भगवानक भक्ति का वर्णन किया। भक्ति भावना के प्रथम चरण में सूर ने इस संसारक त्रायपात से दग्ध स्वयं को भगवान की भक्ति द्वारा छुड़ाने का आख्यान किया है। भगवान के प्रति अनुराग रखने के कारण सूर ने संसार से और सबसे विराग व्यक्त किया है। उन्हें भगवान की भक्तवत्सलता और हितकारकता पर दृढ़ विश्वास था व कहते थे–

कहा कभी जाके राम धनी।

इसी क्रम में अपनी दुर्दशा का भी खूब वर्णन किया है–

अब के राखि लेहु भगवान

अब के नाथ मोहि उधरि

सूरदास की दैन्य प्रदर्शित करने वाली भक्ति दास्य भाव की भक्ति है जिसमें विनय की प्रधानता है। सूरदास के वाक्य में विनय की सातों भूमिकाएं दीनता, मानमर्षता, भर्त्सना, भयदर्शन, आश्वासन, मनोराज और विचारणा मिल जाती है। इस तरह उनके द्वारा प्रदर्शित दास्य भक्ति में तन्मयता और गंभीरता से युक्त उद्‌गार हैं।

सूरदास द्वारा निरूपित भक्ति का दूसरा चरण पुष्टिमार्गीय भक्ति है। भगवान का अनुग्रह पुष्टि कहलाता है। श्रीमद्‌भागवत के द्वितीय स्कंध में दशम अध्याय में 'पुष्टि' की परिभाषा देते हुए कहा गया है 'पोषणं तदनुग्रह' अर्थात ईश्वर का अनुग्रह (कृपा) ही पोषण है। भगवत्कृपा से ही भक्त के हृदय में भगवान की प्रति प्रेमलक्षणा भक्ति जागृत होती है।

पुष्टि मार्ग में तीन प्रकार के जीव माने गए हैं–

1. **पुष्टि जीव** – जो भगवान के अनुग्रह पर विश्वास करते हैं और उनकी 'नित्यलीला' में प्रवेश पाते हैं।
2. **मर्यादा जीव** – जो वेद विहित मार्ग का अनुसरण कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं।
3. **प्रवाह जीव** – जो संसार के प्रवाह में पढ़कर सांसारिक सुखों में लीन रहते हैं। इन तीनों में पुष्टि जीव ही सर्वोपरि है। ईश्वर पर पूर्णतः निर्भर जीव ही उसके अनुग्रह का अधिकारी बनता है और अन्त में 'नित्यलीला' में सम्मिलित होता है। गोपियों की प्रेम भक्ति को पुष्टिमार्गी भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण माना गया है।
4. **शुद्ध पुष्टि**– 'शुद्ध पुष्टि' भक्त की सबसे ऊंची स्थिति है उसका भगवान के साथ तादात्म्य हो जाता है, उसकी सेवा मानसी बन जाती है। वल्लभाचार्य के मत से शुद्ध शुष्टि को प्राप्त भक्त भगवान की अधीनता में भी नहीं रहता। उसका प्रेम अमर्यादित हो जाता है।

यजुर्वेद के परम प्रसिद्ध महामृत्युजय मंत्र में भी 'पुष्टिवर्धन' शब्द आया है, जिसका अर्थ रूद्र द्वारा पोषण करने से हैं। वल्लभाचार्य ने अणुभाष्य में कहा 'स्वरूप बलने स्वप्रापर्ण पुष्टि रुच्यते' अर्थात स्वरूप बल से जा प्रभु की प्राप्ति होती है उसे पुष्टि कहा है। आचार्य हरिराम ने मुक्तावली में पुष्टिमार्ग की जो परिभाषा दी है उसे पुष्टि कहा है। आचार्य हरिराम ने मुक्तावली में पुष्टिमार्ग की जो परिभाषा दी है वह बहुत स्टीक है। महात्मा सूरदास ने अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पित कर पुष्टि मार्ग को अपनाया था। भगवान श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और दिव्य गुण सम्पन्न पुरुषोत्तम हैं। वे कृष्ण स्वयं प्रेममय है। उन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर ही ब्रह्म में अवतार लिया है। सूर ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भक्त की विकलता, अभिलाषा एवं विवशता का सुन्दर चित्रण किया है। पुष्टिमार्ग की सेवा भक्ति के अनेक

भेद है। यह सेवा तीन प्रकार की होती है। तनजा, वितजा, मानसी इनमें मानसी सेवा श्रेष्ठ होती है। आचार्यों ने पुष्टि के चार प्रकार माने है– 1 प्रवाह पुष्टि 2 मर्यादा पुष्टि, 3 पुष्टि, 4 शुद्ध पुष्टि। सूरदास ने गोपियों में स्वच्छंद प्रेम दिखलाया है। वह शुद्ध पुष्टि को प्राप्त मानना चाहिए। सूर ने लिखा है–

जब मोहन मुरली अधर घरी।

गृह व्यौहार तजे आरज पथ बसत न संक करी।

गोपियों की लोक लाजकुल मर्यादा आदि त्याग के सैकड़ों पद सूर ने लिखे हैं उनकी पुष्टिमार्ग भक्ति की उच्चता के उदाहरण हैं। कहते हैं जिन्हें भक्ति का नहीं उन्हें ये प्रसंग अश्लील भी लगते है। पुष्टिमार्ग की भक्ति की विशदता आधारपरकता देखकर गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने उन्हें पुष्टिमार्ग का जहाज कहा था।

शास्त्रसम्मत भक्ति के दो प्रकार बताए गए हैं– रामानुगा भक्ति व वैधी भक्ति। इनमें से सूर ने रागानुगा भक्ति को अपने काव्य में प्रधनता दी है। भक्ति के प्रसिद्ध ग्रंथ 'हरिभक्ति रसामृतसिंधु' में भक्ति के पांच विशिष्ट भाव माने हैं। श्रृंगार वात्सल्य दास्य, सख्य व शांत। सूर के काव्य के पांचों प्रकार की भक्ति का निरूपण मिलता है। भक्ति के क्षेत्रों में नवध भक्ति का बड़ा महत्व है। अवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन अर्धन, सख्य वदन, दास्य व आत्मनिवेदन इन सभी प्रकारों को सूर ने अपनाया है। समस्त विषयों का सब प्रकार से त्या हो, देहादि का पूर्ण समर्पण हो यह पुष्टि मार्ग कहलाता है। पुष्टिमार्ग की भक्ति में सेवा दो प्रकार की होती है– एक तो नित्य सेवा और दूसरी वर्षात्सव सेवा यानी विभिन्न उत्सवों के समय की सेवा। नित्य सवा आठोंयाम की सेवा कहलाती है। इसमे मुख्य रूप से भगवान कृष्ण का बालरूप संबंध सेवाभाव व्यक्त होता है। वात्सल्य भक्ति से युक्त इस नित्य सेवा का सूरदास के काव्य में अच्छी प्रकार वर्णन हुआ है। भगवान की लीलाओं में भक्त सब प्रकार से लीन हो जाता है। इन भक्तों की मान्यता यह है कि ब्रह्म सत्य है, उसका बनाया हुआ जगत सत्य है। उस जगत में प्रभु का विग्रह यानी प्रभु का रूप उतना ही सत्य है। उस प्रभु रूप की सेवा करने में भक्त को आध्यात्मिक सुख मिलता है। इसलिए सूर ने आठों याम की सेवा का वर्णन किया है आठों याम के सकेत इस प्रकार से है–

मंगला - (भगवान के जगाने के पद) जागिए ब्रजराज।

कुंवर कमल कुसुम फूले।

श्रृंगार– (श्रृंगार करन के पद) करत श्रृंगार मेया मन भावत।

ग्वाल - (क्रीड़ा के पद) खेलन जाहु ग्वाल सब टरत।

राजभोग - (छाक के पद) जेवत नन्द कान्ह इक ठोरे।

उत्थापन - (वन्य लीला के पद)– गिरि पर चढ़ि गिरिवर घर टेरे।

भोग - गोपी लीला घट भारी देहु लुकुट तब देहों। मैं हूं मेहर की बेटी सो नहीं डरैंहो।

संध्या आरती - वन आगमन - सांझ भइ घर आवहु प्यारे।

शयन - सोते समय के पद - पीढ़िएं में रचि सेज बिछाई। अति उज्जवल है सेज तुम्हारी, सोवत में सुखदाई।

नित्य सेवा में भगवान के सुख का ध्यान रखा जाता है। इसलिए इस सेवा के समय में ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। यशोदा की गोद में ललित कृष्ण, बाल कृष्ण, नवनीत प्रिय कृष्ण, पुष्टि मार्ग की भक्ति के आलम्बन है, इसलिए उनकी सेवा वातसत्यल भाव की है। वर्षात्सवों के समय की सेवा दूसरे प्रकार की सेवा है। इसमें वर्ष भर में आने वाले पर्व और उत्सवों पर सेवा की व्यवस्था की जाती है। भगवान के मुख्य अवतारों की जयन्तिया भी इसमें आ जाती है दोनों ही प्रकार की सेवाओं से भांग, श्रृंगार–प्रसाधन और राग इन तीनों बातों का ध्यान विशेष रूप से रखा जाता है। सूर के विषय में यह प्रसिद्ध था कि वे नेत्रहीन थे कितु अपने भीतरी चक्षुओं से अद्भुत व सजीव वर्णन करते थे। 'अष्टाख्यान की वार्ता' में इस बात का वर्णन किया गया है कि सूरदास श्रीनाथ की कीर्तन सेवा करके

गोकुल नवनीत प्रिय के दर्शन करने आए। गोस्वामी विदठलनाथ के पुत्रों ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने बालकृष्ण का ऐसा श्रृंगार किया कि कोई वस्त्र नहीं पहनाया मोतियों की माला लटकाकर श्रृंगार कर दिया। सूरदास जी ने दर्शन खुलने के समय कीर्तन गाना आरंभ किया–

देखे री हरि नगन नंगा।

जल सुत भूषण अंग विराजत, वसनहीन छवि उठता तरंगा।

सूरदास की भक्ति 'सख्य भाव' की है जिसमें भगवान के साथ भक्त का 'सखा भाव' रहता है। सूरदास ने सख्य भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी कृष्ण के प्रति नन्द-यशोदा के वात्सल्य भाव का तथा राधा एवं गोपियों के दाम्पत्य एवं माधुर्य भाव की सुन्दर व्यंजना की है। गोपी लीला के अन्तर्गत कृष्ण एवं गोपियों के जिस प्रेम का चित्रण सूरदास ने किया है उसमें उनकी भक्ति भावना पराकाष्ठा पर पहुंची दिखाई पड़ती है।

सूर की भक्ति पद्धति का मेरुदण्ड पुष्टिमार्ग ही है। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है–

जापर दीनानाथ ढरै।

सोड़ कुलीन बड़ीं सुन्दर सोड़ जा पर कृपा करै

सूर पतित तरि जय तनक में जो प्रभु नेक ढरै।

नारद भक्ति सूत्र में आसक्तियों के एकादश रूप बताए गए हैं जिनमें से सूर का मन सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, रुपासक्ति, कान्तासक्ति और तन्मयासक्ति में अधिक रमा है। कृष्ण गोपियों के हृदय में ऐसे गड़ गए हैं कि अब वे किसी तरह निकलते ही नहीं, गोपियों की इसी तन्मयासक्ति का वर्णन इस पद में हैं।

उर में माखन चोर गड़े।

अब कैसेहूं निकसत नहिं ऊधौ तिरछे हैजु अड़े॥

भक्ति के दार्शनिक स्वरूप को ध्यान रखते हुए ने सूरदास ने वल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' की मान्यताओं को ग्रहण किया है। जीव को ब्रहम का अंश मानते हुए वे उन दोनों का अद्वैत सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। जीव की दुरावस्था माया के कारण होती है। यदि माया का प्रपंच न हो तो जीव शुद्ध एवं अविकारी है। माया के कारण ही जीव जगत के प्रपच में फंसता है, इसीलिए सूर कृष्ण से जो मायापति है. इस माया का निवारण करने का अनुरोध करते हैं

माधवजी नेकु हटको गाय

वल्लभाचार्य ने जगत और संसार दोनों को पृथक-पृथक् स्वीकार करते हुए जगत को सत्य और संसार को असत्य माना है। जगत ईश्वर की इच्छा से निर्मित ईश्वर के सत् अंश का विस्तार है जबकि संसार अविद्या के कारण उत्पन्न होता है और नश्वर है। कामिनी, कंचन, शरीर, भौतिक पदार्थ, वैभव ये सभी संसार है जबकि सृष्टि का अनादि प्रवाह जगत है। जगत ब्रहम की शक्ति है जबकि संसार जीव की अविद्या का परिणाम है।

सूर ने 'सायुज्य मुक्ति' को महत्व दिया है जिसमें जीव ईश्वर के साथ एकीभाव को प्राप्त हो जाता है। सूरदास वस्तुत: भक्त कवि हैं अत: उनके पदों में दार्शनिक नीरसता के स्थान पर माधुर्य भाव से परिपूर्ण भक्ति की सरस ही अधिक खाई पड़ती है। सूरदास की भक्ति रागानुगा भक्ति है जिसमें 'कर्मकाण्ड' का स्थान नहीं है उनकी भक्ति भावना में सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा माधुर्य भाव की प्रबलता है इसीलिए वह भक्तों को अधिक प्रिय है।

वस्तुत: सूर के काव्य में भक्ति की महिमा का गुणगान ही अधिक हुआ है क्योंकि सूर मूलत: कवि थे। उनके अनुसार कलियुग में भक्ति ही जीव का कल्याण करने में सफल है। बिना भक्ति के जीव को उसका अभीष्ट नहीं मिल सकता है। कलियुग में जान का माहात्म्य लोगों द्वारा ग्राहय होगा। अत: भक्ति को पाकर वे मोक्ष पा सकते हैं। सूरदास स्पष्ट कहते हैं कि भक्ति स्वत: पूर्ण है, वह साधन नहीं स्वत: साध्य है, व्यापार नहीं लक्ष्य है। उसकी प्राप्ति सब

कामनाओं की इतिश्री है। हरि का भक्त स्वयंसिद्ध हरि ही होता। है। उसके आगे लगभग सभी झुक जाते हैं। कबीर भी कहते हैं, 'सतगंठी कोपीन दै साधु न मानै शंक, राम अमलि भाता रहे, गिनै इन्द्र कौ रंक। लगभग इसी लहजे में महात्मा सूर भी अपनी बात रखते हैं-

हरि के जन की अति ठकुराई।

महाराज ऋषिराज महामुनि देखत रहे लजाई।

भक्ति के क्षेत्र में सूर के पद दैन्य भाव से अभिषिक्त हैं। वे लगभग तुलसी की विनय-पत्रिका को समरस करते दिखायी पड़ते हैं। सूरदास के पदों में तन्मयता तथा मार्मिकता का अदम्य पुट है और सूर को इसमें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है। सूरदास को भक्ति के लिए जाति का कैद मान्य नहीं है। वे कबीर के समान 'जाति-पाति पूछ नहि कोई, हरि को जपै सो हरि का होई।' के समान स्पष्ट कहते हैं-

जाति-पाँति कोउ पूछत नहीं श्रीपति के दरबार।

सूर का यह स्पष्ट कथन है कि भक्ति का अधिकार सबको है। स्त्री तथा शूद्र सबको समान अधिकार है। सूर ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य का चेता कुछ नहीं होता है. लेकिन प्रभु का चेता तत्काल होता है। मनुष्य के समस्त उद्‌मय उसी के द्वारा सम्भव हो पाते हैं। सूर की ही शब्दावली में द्रष्टव्य है-

करी गोपाल की सब होइ।

जो अपनो पुरुषारथ मानत, अति झूठो है सोइ।

साधन मंत्र-अंत्र उद्यम बल ये सब डारौ धोइ॥

सूर ने योग को नकारा है। उन्हें भक्ति ही रासती है। उन्होंने निष्काम भक्ति पर बल दिया है। उन्होंने भक्ति में वैराग्य को प्रशस्त बताया है लेकिन वैराग्य में योग को अस्वीकार किया है। सूर ने अपने समय में प्रचलित यौगिक प्रक्रियाओं का विरोध किया है। इसीलिए सूर ने योगमार्गी साधुओं की निन्दा की है

भक्ति बिना जौ कृपा न करते तौ हौं आसन करतौं।

साधु शील सद्रूप पुरुष कौ अपजस बहु उच्चारति।

औघड़-असत-कुचीलनि सौ मिलि, माया जल में तरती।

सूरदास द्वारा विरचित पदों से इस बात का परिचय मिलता है कि उनकी भक्ति साध्यरूपा है और उनकी स्थिति वैधी भक्ति से साम्य रखती दिखायी पड़ती है। सूरदास का समय ऐसा था, जबकि नाथपन्थी योगियों की बहुलता थी। सूर ने इन समस्त साधुओं के प्रति किसी प्रकार का राग नहीं दिखाया है उल्टे उनमें विरोधी स्वर अधिक उठते दिखायी पड़ते हैं। सूरदास ने भगवान् का माहात्म्य उनकी भक्त वत्सलता, दयालुता, पतित पावनता और शक्तिमत्ता के रूप में व्यक्त किया है और भक्त की लघुता, अपनी निस्सहायता, दीनहीनता एवं पतितावस्था का भी चित्रण किया है।

सूर के पद से भगवान के प्रति अटल भक्ति और पूर्ण प्रेम प्रकट होता है। वे अपनी 'दीनता' दिखाते हुए सूरदास जी कहते हैं। नाथ अब आप अपने 'पतितपावन' होने का घमण्ड छोड़िये। अभी तक मामूली अजामिल जैसे पापियों से पाला पड़ा था। 'सूर' ऐसे पतितशिरोमणि को उबारना कोई हँसी खेल नहीं है।

मुझे तो आपके 'पतितपावनत्व' का विश्वास तब होगा जब मेरा निस्तार करने में सफल हो सकोगे-

नाथ जू अब के मोहिं उबारो।

पतितन में विख्यात पतित हाँ पावन नाम तुम्हारो॥

बड़े पतित नाहिन पासँगहुँ अजामेल को हाँ जू विचारो।

भाजै नरक नाउँ सुनि मेरी जमह देय हठि तारो॥

छुद्र पतित तुम तारे श्रीपति अब न करो जिय गारो।

'सूरदास' साँची तब माने जब होय मन निस्तारो॥

फिर कहते हैं कि प्रभु, आप कैसे पतितपावन हैं जो मेरे लिए निष्ठुर हो गये। हाँ. मैंने कभी किसी को कुछ दिया नहीं, और न मुझसे कभी कोई सुकर्म ही हुआ. इसलिए अपराध मेरा है आपका नहीं–

पतितपावन हरि बिरद तुम्हारे कौने नाम धायो।

हाँ तो दीन दुखित अति दुर्बल द्वारे रटत पायो॥

'निर्गुण' की उपासना सबके हृदयंगम नहीं हो सकती। जिसका कोई आकार नहीं, रंग नहीं, रूप नहीं, जो जाना नहीं जा सकता उसकी उपासना साधारण जनों के लिए अगम है। किन्तु 'साकार' की उपासना सुगम है, यही समझकर सूरदास जी भी 'सगुन' श्रीकृष्ण जी की ही लीला गाते हैं–

अबिगति गति कछु कहत न आवै ।

श्रीकृष्ण जी में जिसका मन रम गया है वह और किसी देवता की उपासना नहीं करता –

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै॥

श्रीकृष्ण भक्त की केवल प्रीति चाहते हैं. धन–सम्पत्ति नहीं। भगवान को प्रेम और भक्ति से समर्पित 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' अभिमान से दिये हुए 'मोहनभाग' से कहीं अधिक प्रिय हैं–

गोविंद प्रीति सबन की मानत।

जेहि भाय करै जन सेवा अन्तरगत की जानत॥

भगवान जिसको अपना लेते है उसके सब कष्ट दूर करते हैं, उसके लिए किसी बात की कमी नहीं रहने पाती

जाको हरि अंगीकार कियो।

ताको कोटि विघ्न हरि हरिकै अभय प्रताप दियो॥

भगवच्चरणाबित जन का यदि सारा संसार भी बैरी हो जाये तो कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता

जाको मनमोहन अंग करें।

ताको केस खसै नहिं सिर तें जो जग बैर परै ॥

वास्तव में जिस पर 'दीनानाथ' का अनुग्रह हो जाता है, संसार में वही ऐश्वर्यशाली, रुपवान कुलीन और यशस्वी गिना जाता है।

भगवान के भक्त अगर कोई मनोरथ भी करते हैं तो केवल यही कि उनके भगवतसान्निध्य और तत्सम्बन्धिनी वस्तुओं के अतिरिक्त और कुछ चाहिये नहीं–

ऐसेहि बसिये ब्रज की बीथिनि।

साधुनि के पनवारे चुनि चुनि उदर जु भरिये सीतनि।

भगवान को घमण्ड नहीं रुचता। वे अभिमानी को एकदम चूर–चूर कर देते हैं। हम बड़े बलवान है इस बात का अभिमान मन में घुसने न देना चाहिये–

गरब गोविन्दहिं भावत नाहिं ।

कैसी करी हिरण्यकसिपु कों रती न राखीं राखनि माहिं।

भगवान के अतिरिक्त भक्त के कष्टों को जानने वाला और भक्तों का रक्षक तथा मित्र और कौन हो सकता है। इसलिए सूरदास जी अपने मन को बार-बार समझाते हैं और आज तक हरिभजन न करने के लिए भर्त्सना भी करते हैं-

रे मन मूरख जनम गँवायो।

करि अभिमान विषय सौं राज्यों स्याम सरन नहिं आयो।।

इष्टदेव के गुणों पर विश्वास रखते हुए अपने मन को आश्वासन देते हैं-

सरन गये को, को न उबार्यो ।

जब जब भीर परी भगतन पै चक्र सुदरसन तहाँ सँभार्यो।

जीव को संसार की क्षणभंगुरता बतलाते हुए संसार से विरत तथा भगवान पर आसक्त करते हुए सूर कहते हैं

जा दिन मन पंछी उड़ि जहें।

जा दिन तेरे तरुवर-तन के सबै पात झरि जैहैं।

या देहि को गर्व न करिये स्यार काग गीथ खैहैं।

सूर का मत है कि भावी टल भी नहीं सकती, वह अवश्य होली है-

भावी काहू सो न टरै।

कहाँ वह राहू कहाँ वे रवि ससि आनि सँजोग परै।।

वे कहते हैं-

मोसो कौन कुटिल खल कामी।

जिन तनु दियो ताहि बिसरायों ऐसो नमक हरामी।।

चाहे मैं कितना ही पलित क्यों न होऊ आपके आश्रय के सिवाय मुझे कहीं और जगह भी तो नहीं है। तारें तो आप ही न तारे तो आप ही, पर अपने 'विरद' की लाज रखिए।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. साहित्यलहरी किस भक्तिकालीन कवि की रचना है ?
2. सूरसागर में सूरदास के विनय के कितने पद संकलित है?
3. अष्टछाप के संस्थापक कौन थे ?
4. भ्रमरगीत का संपादन किसने किया है?

10.4 सारांश

सारांश यह है कि सूर के विनय के पद बड़े स्वाभाविक हैं। सूर ऐसे सध्चे वैरागी के हृदय से ही ऐसे उद्‌गार निकल सकते हैं। विनय के पद बनाते बहुत लोग देखे जाते हैं. पर इतनी स्वाभाविकता कितनों में होती है सिवाय शब्दाडम्बर के बाहरी आवरण के उनमें कुछ और होता नहीं। पर सच्चे महात्मा और भगवद्‌भक्त अपनी विदवता और साहित्यिक छटा दिखलाने की परवाह नहीं करते। उनका प्रत्येक शब्द भगवद्‌भक्तिजलसिक्त हृदय से निकलता है वही सच्ची विनय है।

10.5 कठिन शब्दावली

वृषभानु - राधा के पिता। सकुल सुधि - सारा हाल-चाल। नियार अलग। सचुपाइयो सुख प्राप्त करना। वयक्रम आयु में। सघन बनन घने जंगल। थाती-धरोहर। गोचारन - गायों को चराने के लिए। काल्हि कुल। धए-भाग्य। उपंगसुत-उद्धव।

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर – सूरदास
2. उत्तर – 343 पद
3. उत्तर – विट्ठलनाथ
4. उत्तर – आचार्य रामचन्द शुक्ल

10.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. मनमोहन गौतम – सूर की काव्य कला
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – सूर–साहित्य
3. डॉ. हरवंश लाल शर्मा – सूर और उनका साहित्य

10.8 सात्रिक प्रश्न

1. सूरदास की भक्ति–भावना का विवेचन कीजिए।
2. सूरदास के काव्य–सौष्ठव पर प्रकाश डाले।

*****

इकाई–11

सूरदास : व्याख्या भाग

संरचना

11.1 भूमिका

11.2 उद्देश्य

11.3 सूरदास : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

11.4 सारांश

11.5 कठिन शब्दावली

11.6 स्वयं आकलन के प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भित पुस्तकें

11.8 सात्रिक प्रश्न

11.1 भूमिका

सूरदास का काव्य संसार और उनकी भक्ति भावना के अंतर्गत भ्रमरगीत सार का व्याख्या सहित आययन करेंगे। सूरदास वात्सलय के प्रमुख कवि है। इसे भी जानने का प्रयास करेंगे।

11.2 उद्देश्य

1. छात्र सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जानने में सक्षम होगे।
2. भ्रमरगीत सार में व्यक्त सयोग एवं वियोग श्रृंगार को स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।
3. छात्र भ्रमरगीत सार के उद्देश्यों को स्पष्ट / व्यक्त करने में समर्थ होंगे।
4. सूरदास की रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।

11.3 सूरदास : व्याख्या भाग

पद–21

गोकुल सवै गोपाल उपासी।
जोग अङ्ग साधक जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर काशी।।
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ केरि तदपि रहति चरननि रतिरासी।
अपनी सीतलताहि न छांड़त यद्यपि है ससि राहु–गरासी।।
का अपराध जोग लिख पठवत प्रेमभजन तजि करत उदासी।।
सूरदास ऐसी को बिरहिन मांगति मुक्ति तजे गुनरासी? ।।

प्रस्तुतीकरण गोकुल सवै......सूरदास ऐसी को विरहिन मागति मुक्ति राजे गुन रासी।

शब्दार्थ : जोग अंग–अठराग योग। इसपुर–महादेव की नगरी। रसरासी–प्रेम में पगी हुई।

प्रसंग : प्रस्तुत पद 'मध्यकालीन काव्य' पुस्तक में संकलित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित पुस्तक 'भ्रमरगीत सार' कवि श्री 'सूरदास' द्वारा रचित 'सूरसागर' से अवतरित किया गया है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में जब उन गोपियों को अष्टांग योग साधना को अपनाने की बात करता है तब गोपियां उद्धव से कहती है कि अष्टांग योग साधना का स्थान काशी में है। ब्रज में इसका कोई काम नहीं। अर्थात गोपियों के भगवान श्री कृष्ण के प्रति प्रेम का चित्रण किया गया है।

व्याख्या : गोपियां उद्धव से कहती है कि गोकूल में तो सभी गोपाल के उपासक है। जो लोग योग के यम–नियमों की साधना करते हैं, वे सब महादेव की नगरी काशी में निवास करते हैं। यद्यपि श्री कृष्ण ने हमें छोड़कर अनाथ किया है तथापि हम उन्हीं के चरणों में ही डूबी रहती हैं। गोपियां कहती है कि राहु के ग्रसित होने पर भी चंद्रमा अपनी शीतलता का परित्याग नहीं करता है। हमसे कौन सा अपराध हो गया जिसके दंड स्वरूप कृष्ण ने हमारे लिए पत्र में योग की बातें लिखीं और प्रेम भजन छोड़कर हमको वैरागी बनने का उपदेश दिया है। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती है कि तुम्हीं बताओ गोकुल में ऐसी कौन सी विरहिणी है जो संपूर्ण गुणों की राशि कृष्ण को त्याग कर मुक्ति की इच्छा करती हों अर्थात कोई नहीं करेंगी।

विशेष

1. गोपियों का भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति।
2. योग मार्ग का चित्रण।
3. प्रेम का चित्रण।
4. मानव मुक्ति का द्वार भगवान श्री कृष्ण के चरणों में निहित है।

पद–23

आयो घोष बड़े व्यापारी
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी।।
फाटक दै कर हाटक मांगत भोरै निपट सु धारी।
धुर ही तैं खोटी खायो है लयो फिरत सिर भारी।।
इनके कहे कौन डहकावैं ऐसी कौन अजानी?
अपनी दूध छांड़ि को पीवै खार कूप को पानी।
ऊधो जाहु सवार यहां तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुंहमांग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद सगुण भक्तिधारा में कृष्णमाया विरचित 'भ्रमरगीत' से उद्घृत है। कृष्ण के बालसखा उद्धवजी ब्रज में आने पर गोपियों को उद्धव यह बताता है कि प्रभु तो निर्गुण, निराकार अजन्मा और अनादि है इसलिये गोपियों को चाहिये कि वे कृष्ण को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करें इस पर गोपियां निर्गुण ब्रह्म का मजाक उड़ाती हुई कहती हैं।

व्याख्या : हे सखी! देखो ग्यालिनों की बस्ती में कितना बड़ा व्यापारी आया है। वह तो मथुरा में ज्ञान और योग के गुणों की गठरी सिर पर लादकर लाया है और बत में आकर ही उतारा है अर्थात यह माल विशेष रूप से हमारे लिए ही लाया है सम्भवतः रास्ते में ही इसका कोई ग्राहक नहीं मिला। वह व्यापारी अपने आप को बहुत चालाक और हमें नितान्त मूर्ख समझता है तभी तो अपने भूस निर्गुणद्ध के बदले में हमसे सोना अथवा कृष्ण को मांगता है। गोपियां कहना यह चाहती है कि यह शहरी व्यापारी हमे ठगने आया है। गोपी कहती है कि लगता कि इसने सदा से ही धोखे का व्यापार किया है। इसलिए अब उसकी पोल खुल चुकी है। इसका माल कोई नहीं खरीदता, इसलिए तो यह इसे सिर पर लादे घूम रहा है। दूसरी सखी कहती है इसके धोखे में हम आ जायें। आखिर अपने स्वादिष्ट दूध को छोड़कर खारा पानी कौन पीता है, कहने का भाव यह है कि गोपियां कृष्ण प्रेम की तुलना में निर्गुण मार्ग को खारे कुएं का जल कहती हैं। गोपियां उद्धव का परामर्श देती हुई कहती है कि उद्धव तुम सवेरे ही यहां से चले जाओ तुम यहां व्यर्थ समय नष्ट मत करो। यदि तुम कुछ लाभ कमाना चाहते हो तो इस माल के असली स्वामी कृष्ण को हमारे पास ले आओ। हम तुम्हें मुंहमांगा मूल्य देगी।

विशेष –

1. प्रस्तुत पद में गोपियों की वाग्दिग्ध्ता दर्शनीय है। सांकेतिक रूप से वे उद्धव को और उसके ज्ञानापदेश को निकृष्ट घोषित कर देती है और कृष्ण–प्रेम की महत्ता को स्थापित करती है। इसके रूपक और अन्योक्ति अलकार का मिश्रण अत्याधिक दिखाई पड़ता है। खारे कूप का पानी में दृष्टान्त अलकार है। दूध छोड़कर खारे जल को कोई नहीं पीना चाहता। लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग हुआ है 'फाटक देकर हाटक मांगना', 'धुर ही तें खोटा खाया' आदि सुन्दर प्रयोग है।
2. भ्रमरगीत में सगुण भक्ति की स्थापना का प्रयास स्पष्ट रूप से हुआ है। वहां पर उद्धव द्वारा बताये गये निर्गुण मार्ग का स्पष्ट विराध गोपियां कर रही है। गोपियों को माधुर्य भाव की कृष्ण–भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ लगती है। गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।
3. सूर की गापिया अल्हड़, भोली–भाली परन्तु वाकपटु युवतियां है। उनके स्वभाव की चंचलता स्पष्ट लक्षित है। उनकी हर बात में एक छुपी हई मुस्कुराहट उद्धव का मजाक उड़ाने का भाव लक्षित हो रहा है।

पद-24-

जोग ठगौंरी ब्रज न बिकैहै।

यह व्यौपार तिहारों उधो ऐसोई फिर जैहै।

जायै ले आए हौं मधुकर ताके डर न समैहै।

दाख छाडि कै कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै?

मूरी के पातन के केना को मुम्ताहल दैहै।

सूरदास प्रभु गुनहि छांडि कै को निर्गुन निरबैहै?

प्रस्तुतीकरण : जाग ठगोरी.... सूरदास प्रभु गुनहि छाडिक को निर्गुन निरबै है?

शब्दार्थ - जाग ठगौरी-ठगाई का सौदा। पिफरि जैहै-लौटा दिया जाएगा। निबौरी-नीम का फल। मुक्ताहल-मोती। निरबैहै-निभाएगा।

प्रसंग : प्रस्तुत पद 'मध्यकालीन काव्य' में संकलित कवि 'सूरदास' द्वारा रचित सूरसागर से लिया गया है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पक्तियों गोपिया उद्धव के योग मार्ग पर व्यग्य करती है।

व्याख्या : गोपियां कहती है कि है उद्धव तुम्हारा यह ठगी का सौदा इस ब्रज में नहीं बिक सकेगा। तुम्हारा यह माल यहां से ऐसा ही वापस चला जाएगा। तुम जिसके लिए यह सामान लाए हो, उसके हृदय में यह नहीं समाएगा। भला सोचो तो दाख छोड़कर निवौरी कौन खाना पसन्द करेगा, ऐसा कौन मूर्ख है जो मूली के पत्तों के बदले मोती दे देगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती है कि ऐसा कौन है वो सम्पूर्ण गुणों के भंडार कृष्ण को छोड़कर गुणहीन तुम्हारे ब्रह्मा की साधना करेगा।

विशेष -

1. सगुण ब्रह्मा और निर्गुण ब्रह्म में अन्तर का स्पष्टीकरण।
2. रूपक अलंकार का प्रयोग जाग ठगौरी।
3. 'उर न समैहै' मुहावरे का प्रयोग।

पद - 25

आए जोग सिखावन पांडे।

परमारथी पुराननि लादि जयों बनजारे ढांड़े।।

हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखै ते रांडे।

कहो, मधुप, कैसे समायेंगे एक म्यान दो खांड़े।।

कहु षटपद, कैसे खैयतु है हाथिन के संग गांड़े।

काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत मांडे।।

काहे का झाला ले मिलवत, कौन चोर तुम डांड़े।

सूरदास तीनों नहीं उपजत धनिया धान कुम्हाड़े।।

प्रस्तुतीकरण - आए जोग सिखावन.......सूरदास तीनों नाहिं उपजत धनिया धान कुम्हाड़े।

शब्दार्थ : परमारथी-परमार्थ की शिक्षा देने वाले। टांडे-व्यापार का माल। रांडे-विधवा। खाड़े-तलवार। भखि-खाकर। गाड़े-गन्ने। माड़े-रोटी। डाण्डे-दण्ड। कुम्हाड़े-कददू।

प्रसंग - प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक मध्यकालीन काव्य में संकलित कवि 'सूरदास' द्वारा रचित सूरसागर में से लिया गया है।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद में गोपियां ज्ञानयोग के ऊपर व्यंग्य करते हुए एक-दूसरे से कहती है।

व्याख्या – हे सखी! पांडे जी यहां योग सिखाने चलें है। यह परमार्थ की शिक्षा देने वाले पुराणों के बोझ को अपने सिर पर उसी प्रकार लादे हुए घूम रहे हैं जैसे बनजारा अपने सिर पर सामान लादे फिरता है। हमको शरण और प्रतिष्ठा देने वाले एक मात्र कमल जैसे नेत्रों वाले श्री कृष्ण है। याग तो वहीं सिखेगी जो विधवा होगी। हमारे नाथ अभी जिन्दा है। है मधुप! यह तो बताओ कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं। हे षटपद! यह तो बताओ कि कोई व्यक्ति स्पर्धवश हाथी के साथ गन्ने कैसे खा सकता है। तुम यह तो बताओं कि दूध, घी और रोटी खाए बिना केवल वायु भक्षण से किसी की भूख दूर हो सकती है? अर्थात वायु भक्षण से भूख मिटना असंभव है उसी प्रकार हमारे लिए योग साधना असंभव है। हमने ऐसी क्या चोरी की है जो तुम हमें दण्डित करना चाहते हो? सूरदास कहते है कि गोपियां उद्धव से कहती कि धनिया, धान और कुम्हडा एक साथ पैदा नहीं हो सकते उसी प्रकार प्रेम और योग का निर्वाह एक साथ नहीं हो सकता।

विशेष – 1. पद में उद्धव को खोरी-खोटी सुनाना।

2. सगुण और निर्गुण की उपासना एक साथ सभव नहीं।

3. लोकाक्तियों और मुहावरों का प्रयोग –

पाठ-28

हम तो दुहूं भांति फल पायो।
जो ब्रजनाथ मिलै तो नीको, नातरु जग जग जस गायी।
कहं वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघुजाती।
कहं वै कमला के स्वामी संग मिल बैठीं इक पाती।।
निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोष निवासी।
ता ऊपर अब सांच कहौं धौं मुक्ति कौन की दासी।।
जोग कथा, पा लागौं, ऊधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकि जननी छार।।

प्रस्तुतीकरण – हम तो दुंहू भांति फल पायो.....सूर स्याम तजि और भजे जो ताकि जननी।

प्रसंग – उपर्युक्त।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद में गोपियां अपने कृष्ण प्रेम की प्रशंसा करती है। भगवान श्री कृष्ण क प्रति उनका प्रेम निष्काम प्रेम है। प्रेम में सफलता और असफलता दोनों समान है।

व्याख्या – गोपियां अपने प्रेम-पथ की प्रशंसा करती हुई कहती है कि है उद्धव! हमारे तो दोनों हाथ में लडडू हैं। विरह भोगते-भोगते यदि इस जीवन में भगवान श्री कृष्ण मिल जाए तो ठीक है और यदि नहीं मिले तो हमारे मरने के बाद संसार हमारे एकनिष्ठ प्रेम की चर्चा करके हमारा यशगान करेगा। कहां हम नीच जाति और वर्णहीन गोपिया, और कहां लक्ष्मीकांत भगवान श्री कृष्ण। हमारा अहोभाग्य है कि हम उनके साथ मिलकर एक पंक्ति में बैठती है। वह तो शासीय मनन और मुनिज्ञान से भी अगम्य कहे जाते हैं, वही भगवान इस अहीरों की बस्ती में रहते हैं। इससे बढ़कर यही सत्य है कि मुक्ति जिनकी दासी है- वही कृष्ण हमारे साथ रह चुके हैं। है उद्धव ! हम तुम्हारे पैरों पर पड़कर तुमसे यह कहते है कि तुम अपनी इस योग की कथा को हमें बार-बार मत सुनाओं। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियां कहती है कि है उद्धव ! हमारा तो यह मत है कि जो कृष्ण को त्यागकर किसी अन्य भजन करता है उसकी माता को धिक्कार है- कि उसने कृष्ण-विमुख बालक को व्यर्थ ही जन्म लिया।

विशेष –1. गोपियों की कृष्ण भक्ति पर सम्पर्ण भाव का चित्रण।

2. अलंकारों का प्रयोग।

3. कृष्ण की महानता का चित्रण।

पद–57

निरखत अंक स्यामसन्दर के बारबारलावति छाती।
लोचन जल कागद मसि कै है गई स्याम की पाती।
गोकुल बसत संग गिरधर के कबहुं बयारि लगी नहीं ताती।
तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती।
हरि के लाड़ गनति नहीं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती।।
प्राणनाथ तुम कब धौं मिलौगे सूरदास प्रभु बालसंघाती।।

प्रस्तुतीकरण : निरखत अंक......सूरदास प्रभु बालसंघाती।

प्रसंग : प्रस्तुत पद 'सूरदास' द्वारा रचित 'सूरसागर' के भ्रमरगीत में से लिया गया है।

सन्दर्भ : पद में सूरदास ने श्री कृष्ण के विरह में तड़पती गोपियां तथा विरह में तड़पती गोपियां जब भगवान श्री कृष्ण की चिट्ठी प्राप्त करती है तब वे प्रेम में व्याकुल हो उठती है। प्रस्तुत पद में उनकी व्याकुलता का चित्रण हुआ है।

व्याख्या– कृष्ण के पत्र में उनके द्वारा लिखे हुए अक्षरों को देखकर गोपियां उस चिट्ठी को बार–बार अपनी छाती से लगाती हैं। प्रेम की अधिकता के कारण उनकी आंखों से अश्रु–धरा बह निकली जिसके परिणाम कागज की स्याही पिघलकर पूरे कागज को श्यामरंग बन गया। गोपियां गोकुल की यादों को ताजा करते हुए कहती है कि जब हम यहां गोकुल में गिरधर के साथ रहती थीं, तब हमको गर्म हवा भी नहीं लगती थी। उद्धव तुमसे उन दिनों की बातें क्या कहें? जब हम उनकी वंशी की मधुर ध्वनि सुनकर चल देती थी। हम दिन–रात उनके साथ रास में मस्त बनी रहती थीं। हमारे वे दिन कितने सुखमय थे। सूरदास जी कहते हैं कि अपने पुराने दिनों को याद करके गोपियां अत्यंत कातर भाव से कहती है कि हे प्राणनाथ! हे हमारे बचपन के साथी! न जाने तुम हमको कब मिलोगे?

विशेष– 1. वियोग की उन्माद दशा।

2. प्रलाप सात्विक अनुभव।

3. 'छाती लाना' तथा बयारी लगाना, मुहावरे का चित्रण।

4. स्याम–स्याम में यमक तथा बार–बार में प्रनरूकित अलंकार का प्रयोग हुआ है।

पद–62

काहे को रोकत मारग सूधो?
सुनहु मधुप! निर्गुण–कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघन जू धौं।
वेदपुरान सुमृति सब ढूंढौं जुवतिन जो कहूं धो?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो।
सूर मूर अक्रूर गए ले ब्याज निबेरत ऊधो।।

प्रसंग – उपर्युक्त।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद में गोपियां उद्धव जी से स्पष्ट कह देती हैं कि कृष्णप्रेम का मार्ग ही उनके लिए सरल रुचिकर और हितकर है। उद्धव के निर्गुण मार्ग पर वे व्यंग्य करती है और उसका मजाक उड़ती हुई कहती हैं।

व्याख्या– है उद्धव ! तुम कृष्णप्रेम के सीधे-सादे रास्ते को क्या रोक रहे हो? उद्धवजी तुम अपने निर्गुण के कांटों से हमारे प्रशस्त प्रेममार्ग में रूकावटें क्यों खड़ी कर रहे हो? गोपियों को निश्चित ही कोई उत्तर नहीं मिलता इसलिए वे अनुमान का सहारा लेती हुई कहती है कि निश्चय ही तुम्हें कुब्जा ने सिखा पढ़ाकर भेजा है। वह चाहती है कि हम कृष्ण को छोड़ दे ताकि कृष्ण उसी का होकर रह जाए फिर वे पूछती हैं कि कहीं कृष्ण ने ही तो उसे सिखा के नहीं भेजा? कृष्ण भी तो नटखट और कठोर है। शायद उसी ने हमसे यह मजाक किया है। हमने वेदों पुराणों में सब जगह ढूंढ लिया परन्तु युवतियों के लिए योग साधना की शिक्षा कहीं नहीं दी गई। कहने का भाव यह है कि भोली-भाली अल्हड युवतियों के लिए तो यह योगमार्ग सर्वथा अनुपयुक्त है फिर कृष्ण ने हमें इस पथ पर चलने का सन्देश क्यों भिजवाया। दूसरी ग्वालिन कहती है कि अरी! कृष्ण की बात पर इतना जोर क्यों दे रही हों वह भी कहीं का विद्वान है। उसे तो दूध की छाछ का अन्तर भी नहीं पता इसलिए वह क्या जान कि प्रेममार्ग और निर्गुणमार्ग में क्या अन्तर है। गोपियां व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि ये मथुरा वाले भी पूरे बनिए हैं। ये किसी पर उधर नहीं छोड़ते हमारा मूलधन अर्थात् कृष्ण को तो अंकुर जी पहले ही यहां से ले गये और अब संभवतः उसके ब्याज को लेने के लिए उद्धवजी स्वयं पधारे हैं। कहने का भाव यह है कि कृष्ण की मधुर स्मृतियां ही गोपियों के पास हैं, जिन्हें उद्धव जी समाप्त कर देना चाहते हैं।

विशेष– प्रस्तुत पद में 'निगुण कंटक' में रूपक अलंकार है। सगुण को राजपथ करने में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। 'सूर सूर अकर गए लै ब्याज निबेरत ऊधों' में लोकोक्ति प्रयोग हुआ है।

पद-64

निर्गुण कौन देस का बासी?

मधुकर! हंसि समुझाय, सौंह दै बूझति साच, न हांसी।

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी,

कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी।

पावैगो पुनि कियो अपनो जोरे! कहैगो गांसी।।

सनुत कौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।

प्रस्तुतीकरण– निर्गुण कौन देस को वासी.... सूर सबै मति नासी।।

शब्दार्थ– हंसि-हंसी-मजाक ! सौर-सौगन्ध, वरन-वर्ण, रंग। गांसी-फांस, चुभने वाली बात। ठग्यो सो-ठगा हुआ सा। नासी-नष्ट हो गया।

प्रसंग– प्रस्तुत पद 'मध्यकालीन काव्य' में संकलित कवि 'सूरदास' द्वारा रचित 'सूरसागर' से अवतरित किया गया है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद में गोपियां उद्धव से निगुर्ण के संबंध में व्यंग्यात्मक शैली में प्रश्न पूछती है।

व्याख्या– गोपियां निर्गुण के नाम का मजाक उड़ाती हुई उद्धव से पूछती हैं-मधुकर तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म किस देश का रहने वाला है? हम सौगन्ध खाकर कहती है कि हम तुमसे यह प्रश्न पूरी गम्भीरता के साथ कर रही हैं- किसी

प्रकार का मजाक नहीं कर रही हैं। हमें यह समझा दो कि उसका पिता कौन है? कौन उसकी माता है? उसकी पत्नी कौन है? और कौन उसकी दासी है? उसका कैसा रंग और वेषभूषा है? और किस रस का अभिलाषी है। गोपियां भ्रमर के माध्यम से उद्धव को सावधान करती है कि हे भ्रमर! हमको ठीक-ठीक उत्तर देना। यदि तुमने कोई कपट किया तो तुम्हे अपनी करनी का पफल भोगना पड़ेगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियों की यह बात सुनकर उद्धव ठगे से रह गए और उनकी सारी अक्ल मारी गई।

विशेष- 1. गोपियों के भोलेपन के साथ वाक् चतुरता का चित्रण ।

2. निर्गुण ब्रह्म पर व्यंग्यात्मक प्रश्न चिन्ह तथा गुण ब्रह्म का समर्थन।

3. ज्ञान मार्ग के उफपर प्रेम मार्ग पर भक्ति मार्ग का जय घोष।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. साहित्यलहरी किस भक्तिकालीन कवि की रचना है ?

2. सूरसागर में सूरदास के विनय के कितने पद संकलित है?

3. अष्टछाप के संस्थापक कौन थे ?

11.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि अमरगीत परंपरा का आरंभ 'श्रीमदभागवत' से होता है जो धारे आधुनिक काल तक चली आ रही है। सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में मानव हृदय के सुक्ष्मातिसुक्ष्म भावों का जैसा वर्णन किया है. वैसा वर्णन आज तक कोई भी नहीं कर पाया है। यद्यपि नंददास के भ्रमरगीत में कुछ विशिष्टता दिखाई देती है। परंतु सूरदास के भ्रमरगीत के समक्ष वह भी पफीका सा दिखाई देता है। सूरदास के भ्रमरगीत में विरह व प्रेम दिखाई देता है तो उसमे व्यंग्य व उपालम्म का मिश्रण भी है तो इसके साथ ही इसमें भक्ति का समावेश भी है। आचार्य रामचंद शुक्ल ने भ्रमरगीत का सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी व वाग्वेदग्ध्यपूर्ण अंश का है।

11.5 कठिन शब्दावली

वृषभानु-राध के पिता। सकुल सुधि-सारा हाल-चाल। नियार अलग। सचुपाइयो-सुख प्राप्त करना। वयक्रम आयु में। सघन बनन-घने जंगल। थाती परोहर। गोचारन गायों को चराने के लिए। काल्हि फुल। धए-भाग्य। उंपगसुत-उद्वव। जुवतनि-युवतियां। पछिताने-पश्चाताप करना। विसरत-भूलता। पूत जप-बेटे भोजन कर लो। व्याप्त आपन नेम-योग मार्ग के नियम याद आ गए। जदुपति-श्रीकृष्ण। रसरीति-प्रेम की पद्धति। टरति-दूर होना। मिथ्या-जात-माया के कारण उत्पन्न, भ्रम रूप। अकुलात-व्याकुल होना। प्लानो-पलायन करो, प्रस्थान करो। भासति डूबती है। पठावत भेज रहा हूं। वेगि शीघ्र। बल्लमिन-गोपियां। दाहू-वियोग से उत्पन्न जलन पीड़ा। अजी लो-आज तक। तिय-नारियां तूलमय रूई के समान। पयप्याय दूध पिलाकर। घूमरि-काली। धैरी-श्वेत। छैया-धरोषण अर्थात थन से निकलने वाली दूध की धरा।

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर - सूरदास।

2. उत्तर -343 पद।

3. उत्तर - विट्ठलनाथ।

11.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. सूर की काव्य कला–मनमोहन गौतम।

2. सूर–साहित्य–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

3. सूर और उनका साहित्य–डॉ. हरवंश लाल शर्मा।

4. सूर सौरभ–डॉ. मुंशी राम शर्मा।

11.8 सात्रिक प्रश्न

1. भ्रमरगीत के उद्देश्य पर प्रकाश डालें।

2. सूरदास की भक्ति–भावना का विवेचन कीजिए।

3 सूरदास के काव्य–सॉष्ठव पर प्रकाश डालें।

*****

इकाई–12
तुलसीदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

12.1 भूमिका

12.2 उद्देश्य

12.3 तुलसीदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व

12.3.1 साहित्यिक परिचय

12.3.2 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएं

12.3.3 हिंदी साहित्य में स्थान

स्वयं आकलन प्रश्न

12.4 सारांश

12.5 कठिन शब्दावली

12.6 स्वयं आकलन के प्रश्न

12.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

12.8 संदर्भित पुस्तकें

12.9 सात्रिक प्रश्न

12.1 भूमिका

तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य रामचरितमानस का विस्तारपूर्वक अध्ययन करते हुए उनकी समन्वयवादी भावना तथा आदर्शों को समझने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

1. रामचरितमानस उच्चकोटि का महाकाव्य है, की जानकारी प्राप्त होगी।
2. तुलसीदास की भाषा का विश्लेषण करने योग्य होंगे।
3. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं को समझने में सक्षम होंगे।

12.3 तुलसीदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास भारत के ही नहीं, संपूर्ण मानवता तथा संसार के कवि हैं। उनके जन्म से संबंधित प्रमाणिक सामग्री अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। इनका जन्म 1532 ई० स्वीकार किया गया है। तुलसीदास जी के जन्म और जन्म स्थान के संबंध को लेकर सभी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। इनके जन्म के संबंध में एक दोहा प्रचलित है।

''पंद्रह सौ चौवन बिसै, कालिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्यो सरीर॥''

तुलसीदास का जन्म बांदा जिले के 'राजापुर' गांव में माना जाता है। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान एटा जिले के सोरो नामक स्थान को मानते हैं। तुलसीदास जी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे एवं माता का नाम हुलसी था। कहा जाता है कि अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण इनके माता-पिता ने इन्हें बाल्यकाल में ही त्याग दिया था। मां तो जन्म देने के बाद दूसरे ही दिन चल बसी। बाप ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिए बालक को चुनिया मां की एक दासी को सौंप दिया। और स्वयं विरक्त हो गए जब रामबोला 5 वर्ष का हुआ तो चुनिया भी नहीं रही। वो गली-गली भटकता हुआ अनाजों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया। इस तरह तुलसी का बचपन बड़े कष्टों में बीता। कहा जाता है कि जन्म लेने के बाद तुलसीदास ने जो पहला शब्द बोला वह राम था। आत: उनका घम का नाम ही रामबोला पड़ गया।

माता पिता दोनों चल बसे और इन्हें भीख मारा कर अपना पेट पालना पड़ा। इसी बीच इनका परिचय राम भक्त साधुओं में हुआ और इन्हें ज्ञानार्जन का अनुपम अवसर मिल गया।

प्रसिद्ध संत नरहरी दास ने इन्हें ज्ञान एवं भक्ति की शिक्षा प्रदान की। रामशैल पर रहनेवाले नरहरि बाबा ने इस रामबोला के नाम से बहुत चर्चित हो चुके इस बालक को ढूंढना और विधिवत उसका नाम तुलसीराम रखा। तद्परान्त वे उसे अयोध्या, उत्तर प्रदेश ले गए। वहां राम मंत्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्या अध्ययन कराया। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरु मुख से जो सुन लेता उसे वह याद हो जाता। 29 वर्ष की आयु में राजापुर में थोड़ी ही दूर इनका विवाह पंडित दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। इन्हें अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम था और उनके सौंदर्य रूप के प्रति वे अत्यंत आसक्त थे। एक बार इनकी पत्नी बिना बताए मायके चली गई तब ये भी अर्थ रात्रि में आंधी तूफान का सामना करते हुए उनके पीछे-पीछे ससुराल जा पहुंचे। इस पर इनकी पत्नी ने उनकी भर्त्सना करते हुए कहा-

''लाज न लागत आपको दौर आयह साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहाँ में नाथ।
अस्थि-चर्ममय देह मम तामे ऐसी प्रीति।
ऐसी जो श्रीराम महं, होत न तौ भवभीति॥''

अर्थात मेरे इस हाड मास के शरीर के प्रति जितनी आसक्तिक है उसकी आधी भी अगर प्रभु से होती तो तुम्हारा जीवन संवर गया होता। यह सुनकर तुलसीदास सन्न रह गए। उसके हृदय में यह बात गहरे तक उतर गई और उसके ज्ञान नेत्र खुल गए उनको अपनी मूर्खता का एहसास हो गया वे एक क्षण भी रूके बिना वहां से चल दिए और उनका हृदय परिवर्तन हो गया इन्ही शब्दों की शक्ति पाकर सुनती दास को महान गोस्वामी तुलसीदास बना दिया।

पत्नी की इस फटकार ने तुलसीदास जी को सांसारिक मोह माया से विरक्त कर दिया और उनके हृदय में श्री राम के प्रति भक्ति भाव जागृत हो उठा। तुलसीदास जी ने अनेक तीर्थों का भ्रमण किया और ये राम के अनन्य भक्त बन गए। इनकी भक्ति दास्य-भाव की थी। 1574 ई० में इन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना की तथा मानव जीवन के सभी उच्चादर्शी का समावेश करके इन्होंने राम को मर्यादा पुरुषोतम बना दिया। 1623 ई० में काशी में इनका निधन हो गया। तुलसीदास को हम हिंदू कवि और संत के रूप में जानते हैं। उन्होंने भारत के सबसे बड़े महाकाव्यरामचरितमानस और हनुमान चालीसा की रचना की है।

12.3.1 साहित्यिक परिचय -

तुलसीदास जी महान लोकनायक और श्री राम के महान भक्त थे। इनके द्वारा रचित 'रामचरितमानस' संपूर्ण विश्व साहित्य के अद्‌भुत ग्रंथों में से एक है। यह एक अद्वितीय ग्रंथ है, जिसमें भाषा, उद्देश्य, कथावस्तु, संवाद एवं चरित्र चित्रण का बड़ा ही मोहक चित्रण किया गया है। इस ग्रंथ के माध्यम से इन्होंने जिन आदर्शों का भावपूर्ण चित्र अंकित किया है. वे युग-युग तक मानव समाज का पथ-प्रशस्त करते रहेंगे।

इनके इस ग्रंथ में श्रीराम के चरित्र का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। मानव जीवन के सभी उच्च आदर्शा का समावेश करके इन्होंने श्री राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बना दिया है। तुलसीदास जी ने सगुण निर्गुण ज्ञान भक्ति, शैव-वैष्णव और विभिन्न मतों एवं संप्रदायों में समन्वय के उद्देश्य से अत्यंत प्रभावपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति की।

प्रमुख रचनाएं -

1. रामचरितमानस
2. गीतावली
3. दोहावली
4. कवितावली
5. विनय पत्रिका
6. पार्वती मंगल
7. कृष्ण गीतावली
8. रामलला नहछू
9. वैराग्य संदीपनी
10. बरवै रामायण
11. रामाज्ञा प्रश्न
12. जानकी मंगल

कृतियां (रचनाएं)

महाकवि तुलसीदास जी ने 12 ग्रंथों की रचना की। इनके द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' संपूर्ण विश्व के अद्‌भुत यथों में से एक है। इनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं.

1. **रामलला नहछू**- गोस्वामी तुलसीदास ने लोकगीत की सोहर शैली में इस ग्रंथ की रचना की थी। यह इनकी प्रारंभिक रचना है।
2. **वैराग्य संदीपनी** - इसके तीन भाग है, पहले भाग में 6 छदों में मंगलाचरण है तथा दूसरे भाग में संत-महिमा वर्णन एवं तीसरे भाग में 'शांति भाव वर्णन' है।
3. **रामाज्ञा प्रश्न** - यह ग्रंथ 7 सर्गों में विभाजित है जिसमें शुभ-अशुभ शकुनी का वर्णन है। इसमें राम कथा का वर्णन किया गया है।

4. **जानकी मंगल** – इसमें कवि ने श्री राम और जानकी के मंगलमय विवाह उत्सव का मधुर वर्णन किया गया है।

5. **रामचरितमानस** – इस विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के संपूर्ण जीवन के चरित्र का वर्णन किया गया है।

6. **पार्वती मंगल** – यह मंगल काव्य है इसमें पूर्वी अवधि में शिव पार्वती के विवाह का वर्णन किया गया है। गेय पद होने के कारण इसमें संगीतात्मकता का गुण भी विद्यमान है। कविता सरल, सुबोध रोचक और सरस है। जगत मातु पितु संभु भवानी की श्रृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्त्यात्मक भूमिका पर विरचित क्या काव्य है। व्यवहारों की सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है।

   प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।

   मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।।

7. **गीतावली** – इसमें 230 पद संकलित है, जिसमें श्री राम के चरित्र का वर्णन किया गया है। कथानक के आधार पर ये पद सात कांडों में विभाजित है।

8. **विनय पत्रिका** – इसका विषय भगवान श्रीराम को कलयुग के विरुद्ध प्रार्थना पत्र देना है। इसमें तुलसी भक्त और दार्शनिक कवि के रूप में प्रतीत होते हैं। इसमें तुलसीदास की भक्ति-भावना की पराकाष्ठा देखने को मिलती है।

9. **गीतावली** – इसमें 61 पदों में कवि ने ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण के मनोहारी रूप का वर्णन किया है।

10. **बरवै-रामायण** – यह तुलसीदास की स्फुट रचना है, जिसमें श्री राम कथा संक्षेप में वर्णित है। बरवै छदों में वर्णित इस लघु काव्य में अवधि भाषा का प्रयोग किया गया है।

11. **दोहावली** – इस संग्रह ग्रंथ में कवि की सूक्ति शैली के दर्शन होते हैं। इसमें दोहा शैली में नीति, भक्ति और राम महिमा का वर्णन है।

12. **कवितावली** – इस कृति में कवित्व और सवैया शैली में राम कथा का वर्णन किया गया है। यह ब्रज भाषा में रचित श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है।

12.3.2 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएं

1. **श्रीराम का स्वरूप:** महाकवि तुलसीदास ने अपने काव्य में श्रीराम को विष्णु का अवतार मानते हुए उसके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का उल्लेख किया है। श्री राम को धर्म का रक्षक और अधर्म का विनाश करने वाला माना है। उन्होंने श्रीराम के चरित्र में शील, सौन्दर्य एवं शक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।

2. **समन्वय की भावना :** तुलसीदास के काव्य में समन्वय की भावना का अद्‌भुत चित्रण हुआ है। तत्कालीन समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि सभी समस्याओं का किसी-न-किसी रूप में उल्लेख हुआ है।

3. **दार्शनिक भावना :** तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य दार्शनिक पष्ठभूमि पर आधारित है। तुलसीदास ने दर्शन के नीरस सिद्धान्त का भावपूर्ण एवं कोमल भाषा में बड़ी सफलतापूर्वक उद्‌घाटित किया है। तुलसीदास में विविध दार्शनिक मतों को ग्रहण करते हुए भी उनमें तारतम्य बैठाकर उनका अद्‌भुत समन्वय किया है। उनकी दार्शनिक विचारधारा मौलिकतापूर्ण है।

4. **विषय की व्यापकता :** तुलसीदास ने अपने युग का गहन एवं गभीर अध्ययन किया है। उन्होंने अपने युग के जीवन के लगभग सभी पक्षों पर लेखनी चलाई है। उनके काव्य में धर्म दर्शन संस्कृति, भक्ति कला आदि का सुन्दर समन्वय हुआ है। विभिन्न भावी और अभी रसों को उनकी रचनाओं में स्थान मिला है।

5. **भाषा शैली :** तुलसीदास जी ने अवधि तथा ब्रज दोनों भाषाओं में अपनी काव्यगत रचनाएं लिखी। रामचरितमानस अवधि भाषा में है, जबकि कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका आदि रचनाओं में ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है। रामचरितमानस में प्रबंध शैली, विनय पत्रिका में मुक्तक शैली और दोहावली में साखी शैली का प्रयोग किया गया है। भाव-पक्ष तथा कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों में तुलसीदास का काव्य अद्वितीय है। तुलसीदास जी ने अपने काव्य में तत्कालीन सभी काव्य-शैलियों का प्रयोग किया है। दोहा चौपाई, कवित्व, सवैया, पद आदि काव्य शैलियों में कवि ने काव्य रचना की है। सभी अलंकारों का प्रयोग करके तुलसीदास जी ने अपनी रचनाओं का अत्यंत प्रभावोत्पादक बना दिया है।

12.3.3 हिंदी साहित्य में स्थान -

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, इन्हें समाज का पथ प्रदर्शक कवि कहा जाता है। इसके द्वारा हिंदी कविता की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। मानव प्रकृति के जितने रूपों का सजीव वर्णन तुलसीदास जी ने किया है उतना अन्य किसी कवग ने नहीं किया। तुलसीदास जी को मानव जीवन का सफल पारखी कहा जा सकता है। वास्तव में तुलसीदास जी हिंदी के अमर कवि है, जो युगों-युगों तक हमारे बीच जीवित रहेंगे।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. तुलसीदास का पूरा नाम क्या था?
2. तुलसीदास के माता पिता का क्या नाम था?
3. तुलसीदास का जन्म कहां हुआ था?
4. तुलसीदास की मृत्यु तिथि क्या थी?

12.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि तुलसीदास भक्तिकाल के अंतर्गत सगुण भक्ति काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत को आलोकित किया है। तुलसीदास ने अपनी भक्ति भावना के अंतर्गत अपने आराध्य के रूप स्वरूप का वर्णन करते हुए समाज में आदर्श स्थापित किया। रामचरितमानस में जानकी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए समाज के सामने आदर्श स्थापित किया है।

12.5 कठिन शब्दावली :

बाहुबल-भुजाओं का बल। बूड-डुबना। चापखंड-धनुष के टुकड़े। कौसिक-विश्वमित्र। भंजेउ - तोड़ डाला। बिलोके-देखा। कृपायतन-कृपाधाम श्रीराम। निमिष-एक-एक क्षण। अति लाघवं। बड़ी पफुर्ती से। कोदंड-धनुष।

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर - तुलसीदास का पूरा नाम गोस्वामी तुलसीदास जी था।
2. उत्तर - तुलसीदास जी के माता का नाम हुलसी देवी था तथा पिता का नाम आत्माराम दुबे था।
3. उत्तर - तुलसीदास का जन्म बांदा जिले के 'राजापुर' गांव में माना जाता है। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान एटा जिले के सोरो नामक स्थान को मानते हैं।
4. उत्तर - इनकी मृत्यु तिथि 1623 ईस्वी वाराणसी में हुई थी।

12.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. गोस्वामी तुलसीदास - रामचंद्र शुक्ल
2. तुलसीदास- डॉ. उदयभानु सिंह
3. तुलसी दास चिंतन- राम प्रतिपाल सिह

12.8 सात्रिक प्रश्न :

1. तुलसीदास का जीवन परिचय लिखों।
2. तुलसीदास के काव्य की प्रमुख विशेषता क्या है?

*****

इकाई–13
तुलसीदास : दार्शनिकता

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 तुलसीदास : दार्शनिकता

स्वयं आकलन प्रश्न–1

13.4 तुलसी की प्रासंगिकता

स्वयं आकलन प्रश्न–2

13.5 सारांश

13.6 कठिन शब्दावली

13.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

13.8 संदर्भित पुस्तकें

13.9 सात्रिक प्रश्न

13.1 भूमिका :

भक्तिकालीन युग के सगुण काव्यधारा की राम भक्ति शाखा के प्रदर्शक भक्त कवि तुलसीदास थे। इन्होंने श्रीराम को आधार बनाकर उनकी उपासना की। इन्होंने राम को आदर्श रूप में प्रतिस्थापित किया जिससे आदर्शमयी समाज का निर्माण हो। इन्होंने अपनी समान्वयकारिणी शक्ति के बल पर ही समाज में फैली असंगति को दूर करने का प्रयास किया। उनके राम नर-नारायण, सगुण-निर्गुण, शक्ति-शील-सौन्दर्य के अद्‌भुत संगम है।

13.2 उद्देश्य

1. रामचरितमानस की में वर्णित विषय की जानकारी।
2. तुलसीदास की भाषा का विश्लेषण करने योग्य होंगे।
3. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं को समझने में सक्षम होंगे।

13.3 तुलसीदास : दार्शनिकता

'दार्शनिकता' शब्द के अंग्रेजी में कहा जाता है। हिंदी में दार्शनिकता शब्द 'दर्शन' से बना है। दर्शन का अर्थ है देखना, लेकिन यहाँ देखना शब्द विशिष्ट अर्थ में है अर्थात इस सृष्टि, ब्रह्म, जीव, माया से जुड़ी बातों के रसस्यों को देखना, जानना ही दर्शन है और इन्हें देखने वाला दार्शनिक कहलाता है। इनसे जुड़ी बातें दार्शनिकता कहलाती हैं।

पारिभाषिक दृष्टि से दर्शन का अर्थ है-

तत्वज्ञान या परमात्म ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति ब्रहा, जीव, माया, जगत सबंधी तत्वों के गूना चाहता है और वह जितना उनके बार में समझता है वही ज्ञान उसका दर्शन कहलाता है। अत: प्रत्येक युग में ऐसी जिज्ञासा रखने वाले विभिन्न दार्शनिक मिलते हैं। तुलसी के काव्य का अनुशीलन करने वाले अध्यताओं में से किसी ने तुलसी को शकर से जोड़ा, किसी ने रामानुज से, किसी ने नरहरि से. किसी ने मध्याचार्य से, किसी ने समन्वयवादी विचारधारा से। किंतु तुलसी की विचारधारा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पूर्वाग्रहरहित होकर हमे सर्वप्रथम तुलसी की विचारधारा को ग्रहण करना चाहिए। वस्तुतः तुलसी कोई दार्शनिक नहीं थे, वे केवल राम भक्त थे। लेकिन भक्ति की भावना में उन्होंने ब्रहा, जीव, माया, जगत आदि अनुसलझे तत्वों का जब अन्वेषण किया तब उनक विचार दर्शन की ओर मुड़ गए। तुलसी न अलग से ब्रह्म, जीव, माया, जगत आदि के सदर्भ में अपने अनुभव या विचार नहीं दिए है। रामकथा में ही वे बीच बीच में स्पष्ट होते जाते हैं। तुलसी की दार्शनिकता को समझने क लिए उक्त तत्वों का अलग-अलग विवेचन-विश्लेषण किया जा रहा है। जिससे तुलसी के दर्शन संबंधी विचार स्पष्ट हो सकें-

1. ब्रह्म संबंधी विचार -

तुलसी सगुणवादी भक्त है। अत: उन्होंने विष्णु के अवतार भगवान श्रीराम जो दशरथ पुत्र हैं, उन्हें आधार बनाया है लेकिन साथ ही वे ये भी स्वीकारते हैं कि ब्रह्म निर्गुण है. निराकार है उसके सगुण व निर्गुण रूपों में कोई भेद नहीं है। ये कहते हैं-

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मनि पुरान बुध वेदा।।

अर्थात् ब्रह्म के अगुण और सगुण रूप में कोई अंतर नहीं है और इस बात को तथ्य को मुनि, पुराण, बुधजन और वेद स्वीकारते हैं। तुलसी ने राम को साक्षात् ब्रह्म के रूप में माना है। वे कहते हैं- राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलय अनादि अनूपा। पर शंकराचार्य की भांति राम को ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूप में ही पारमार्थिक सत्य न मानकर राम से ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को समाहित माना है। जो ब्रह्म निर्गुण और निरकार है, वही भक्ति और प्रेम के वश में होकर सगुण हो जाता है। तुलसी ने यही सिद्ध किया है कि राम निराकार स्वरूप हैं पर वे सगुण साकार रूप को ही भजनीय मानते हैं। वे राम को सच्चिदानंद मानते हैं।

राम सच्चिदानंद दिनेसा, नहिं तहं मोहनिसमा लवलेसा।

तुलसी ने राम का विराट रूप तीन रूपा में वर्णित किया है विश्व तनु ममुज रूप, संसार विप रूप और ब्रह्माण्ड धारक रूप। राम के निर्गुण सगुणमय रूप के साथ ही तुलसी न राम का महाविष्णु भी माना है। पौराणिक परंपरा के अनुसार त्रिदेवों में ब्रह्मा विश्व प्रपंच के रचयिता, विष्ण जगत के रक्षक और शिव संहारक रूप में माने गए हैं। पुराणों में ये ईश्वर की त्रिदेव कल्पित शक्तियाँ है। पर तुलसी के अनुसार त्रिदेव राम से अभिन्न नहीं है, उनके अंश मात्रा है–

संभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना।

राम के इस ब्रह्म और महाविष्णत्व का वर्णन करने के साथ ही तुलसी ने राम को मर्यादा पुरुषोतम भी कहा है। तुलसी के अनुसार ब्रह्म इस सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है लेकिन प्रेम से ही उसे पाया जा सकता है–

हरि व्याप्त सर्वत्रा समाना। प्रेम ते प्रकट होई में जाना।

तुलसी के राम दशरथ पुत्र हैं लेकिन वे नारायण भी है। वे अपने कर्मों के बल पर नर से नारायण बने हैं। वे ही सृष्टि के कर्ता, भर्ता, सहर्ता हैं। वे पहले दशरथ पुत्र है लेकिन बाद में मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम। शक्ति, शील और सौन्दर्य के अद्‌भुत के कारण ही वे पुरुषोतम ही नहीं मर्यादा पुरुषोत्तम है। तुलसी ने ब्रह्म के लिए विष्णु के अवतार श्री राम को आधार बनाया लेकिन वे अन्य अवतारों की अवहेलना नहीं करते हैं तभी वे राम के द्वारा विश्व की और विश्व के द्वारा राम की उपासना करते हैं। यही नहीं वे राम के द्वारा शिव की और शिव के द्वारा राम की उपासना करते हैं–

सिव दोही मम दास कहावा।

ते नर मोहि स्वप्नहूँ न पावा।

संकर प्रिय मम द्रोही शिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महु बास ।।

अर्थात् जो दोनो में भेद करता है या मानता है, वह वास्तव में ब्रह्म को नहीं पा सकता है। वस्तुतः तुलसी ने एक ओर राम के निर्गुण–सगुण रूप द्वारा उनकी अनिर्वचनीयता को स्पष्ट कर वेदों की भांति नेति नेति कहा है और दूसरी ओर कृपा, ममता, दयालुता, शरणागत–वत्सलता ओर मर्यादा पुरुषोत्तम गुणों से ओत–प्रोत दिखाकर उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया है। तुलसी के राम में ब्रह्मत्व और मनुजत्व का अपूर्व समन्वय है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में 'एक ओर तुलसी राम को मनुज कहने वाले को 'सठ मतिमंद' कहते हैं दूसरी ओर उन्हें 'दशरथ सुत' न मानने वाले को 'नीच', 'मोह पिशाच' से ग्रस्त अंध अभागात्यादि कहते हैं। यहां तुलसी के राम में मनुजत्व और ब्रह्मत्व की यह स्थिति सर्वत्रा बनी है।

2. जीवशास्त्रीय विचार –

भगवत् गीता में जीव को ईश्वर का अंश कहा गया है। तुलसी भी इसी धारणा को स्वीकारते हैं और कहते हैं। ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी। वे यह कहकर जीव को ईश्वर अंश मानते हैं, साथ ही यह बताते हैं कि ब्रह्म से जीव का अलग दिखने का कारण है माया। जिसके फेरे में पड़कर जीव अपने ब्रह्म के संबंध को भूल जाता है। यद्यपि माया का बंधन मिथ्या है पर माया का वशवर्ती होकर भवकूप में पड़ा हुआ जीव अनेक प्रकार से दुख सहता है जिव जब ते हरि ते विलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो।। माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो ।। लेकिन भक्ति और ज्ञान के बल पर जब वह माया से पल्ला छुड़ाता है या मरणोपरांत वह पुनः ब्रह्म में लीन होकर एकाकार हा जाता है। जगत संबंधी विचार – आचार्य शंकराचार्य ने कहा है ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या अर्थात् केवल भगवान ही सत्य है बाकी सभी कुछ झूठ है, नश्वर हैं लेकिन तुलसी इस बात को स्वीकारते हैं और नकारते भी हैं। वे कहते हैं

सियाराम मय सब जग जानी। करौ प्रणाम जोरि जुग पानी॥

अर्थात् यह संसार स्वयं उत्पन्न नहीं हो गया है। इसे बनाने वाला जब सत्य है तो उसके द्वारा रचित यह संसार भी सत्य है। उस पर ब्रह्म श्रीराम की आदि शत्तिफ सीता जी ने इस सृष्टि को चलायमान रखा है। कण-कण में वह सीताराम बसे हुए हैं। यहां वास करने वाले जड़-चेतन सभी पदार्थ या जीव सत्य है। अत: यह जगत भी सत्य है, लेकिन माया के कारण ही यह जगत असत्य दिखाई देता है। वास्तव में जगत के स्वरूप के बार में तुलसी के तीन विचार हैं। प्रथम तो परमार्थ रूप राम की तुलना में जगत का असत्य माना है। दूसरा जगत को राम का रूप मानकर उसे सत्य भी माना है। तीसरे उन्होंने जगत को सत्यमान मानने वाले प्रस्थानों को भ्रांत कहा है। अत: वे कहते हैं-

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ माने।

तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम, सौ आपुन पहिचाने॥

माया संबंधी विचार - कबीर आदि संतों, जायसी आदि सूफियों, ने माया का सदा विरोध किया है। कबीर ने उसे पापिनी, डाकिनी, महाठगिनी आदि कहा है। जायसी ने उसे शैतान की संज्ञा दी है लेकिन तुलसी ने माया पर सूक्ष्म रूप से विचार किया है उनके अनुसार ब्रह्म राम की शक्ति का नाम माया है। जिस प्रकार राम के निराकार और साकार दो रूप है उसी प्रकार माया के भी दो रूप हैं अव्यक्त और व्यक्त। अव्यक्त रूपी माया के लिए तुलसी ने माया तथा व्यक्त रूपी माया के लिए सीता शब्द का प्रयोग किया है-

'श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश, माया जानकी।

शक्ति और शक्तिमान में अभेद होता है। तुलसी ने भी सीता, जो राम की शक्ति है, उनमें और राम में अंतर नहीं माना है। अर्थ और वाणी, जल और तरंग की भाति वे राम और सीता में अभेद मानते हैं-

गिरा अरथ, जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

बदंउ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

राम की आदि शक्ति होने के कारण यही सीता जगन्मूल हैं। वे विश्व का उद्‌भव पालन और विलय करने में समर्थ है- 'जो सृजति, जगु पालति, हरति रूप पाइ कृपानिधान की' भगवान के राम, कृष्ण आदि विभिन्न अवतारों की भांति ही माया भी धरती पर सीता, रुक्मिणी आदि रूपों में अवतार लेती हैं। शक्ति स्वरूप माया के कार्यों को ध्यान में रखकर माया के प्राय: दो भेद हैं - विद्या और अविद्या।

तुलसी के अनुसार विद्या माया राम की वह शक्ति है जो राम की प्रेरणा से की रचना करती है -

एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरणा नहीं जिन बल ताके॥

यह विद्या माया कल्याणकारी है, निर्माणकारी है, सुखकारी है। है, जो भक्त या साधक को ईश्वर से मिलाने में सहायक होती है। यह सीता का रूप है - तुम जगदीश माया जानकी। अविद्या माया के लिए तुलसी ने केवल अविद्या या माया शब्द का प्रयोग किया है। जो दुष्ट है, जिसे कबीर ने पापिनी कहा है- कबीर माया पापिनी, महाठगिनी हम जानि तुलसी न इसी माया को हेय बताया है क्योंकि यही माया जीव को 'संसारी' बनाने का कारण है-

एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥

यह माया भी सीता का ही रूप है लेकिन जहां विद्या माया के रूप में सीता जगत के जीवों का क्लेश हरण करती है वहीं अविद्या रूप में दुष्टविमोहन शीला बन जाती है। सारे जीवों को अपनी अंगुली पर नचाती है- 'जो माया सब जगहि नचाना।' यही माया आत्म परमात्मा के मिलन के बीच बाधक है।

3. मुक्ति संबंधी विचार -

तुलसी के अनुसार सृष्टि में आकर जीव दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट से घिर जाता है। इन कष्टों से मुक्ति पाने के लिए एक मात्रा साधन है-राम के चरणों की वंदना कर उन्हें स्नेह करना। जोकि कटु यथार्थ है।

बारि मथे घृत होइ बरू सिकता ते बरु तेल।

बिनु हरि भजन भव न तरिय यह सिद्धांत अपेल।।

अर्थात् चाहे पानी को मथने से घी निकल आये, चाहे रेत को पेलने से तेल निकल आए किंतु बिना हरि भजन के यह संसार नहीं पार हो सकता है। तुलसी ने मुत्तिफ के लिए अनेक मार्ग सुझाए हैं। उनके अनुसार कर्म, ज्ञान और भत्तिफ के बल पर मुत्तिफ मिल सकती है। उनके अनुसार जीव-बंध का कारण अविद्या माया है। इसे दूर करने का उपाय ज्ञान है -

बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावे कोई ।।

पर बंधन और मोक्ष के नियामक की दृष्टि से बंधन का कारण अभिव्यक्ति ही है। अतः भक्ति ही मुक्ति का साधन है-

भवसिंधु अघाध परे नर ते।

पद पंकज प्रीति न जे करते ।।

कर्मों के द्वारा तुलसी जीव के कर्म का आत्यांतिक विनाश नहीं मानते। अतः ज्ञान और भक्ति की ही उन्होंने चर्चा की है और यह भी स्पष्ट कर दिया कि भक्ति की ही उन्होंने चर्चा की है और यह भी स्पष्ट कर दिया कि भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है -

भगतहिं ग्यानहिं नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।

मुक्ति के लिए तुलसी जिस भक्ति की बात करते हैं उनमें से सेवक-सेव्य भाव की भक्ति को ही वे प्रधान मानते हैं। 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।' यही उनका दृढ़ विश्वास है।

5. अवतार भावना

तुलसी सगुणवादी भक्त कवि हैं अतः उनका ब्रहा संबंधी अवतार भावना के संबंध में क्या विचार है। यह जान लेना भी आवश्यक है क्योंकि कबीर आदि संतों ने अवतार भावना को अंधविश्वास मानकर अवहेलना की है। लेकिन तुलसी इसे सत्य रूप में स्वीकारते हैं। तुलसी ने रामजन्म के प्रसंग में उनके अवतार ग्रहण का ही संकेत किया है। पर भगवान का शरीर जीव के समान भोग का आयतन नहीं है इसलिए तुलसी ने उसे 'इच्छामय' तथा 'लीलातनु' और राम को माया मनुष्य कहा है। तुलसी ने भक्त वत्सलता, अधर्म का नाश, धर्म की संस्थापना एवं लीला को ही राम के अवतार ग्रहण का कारण माना है। उनके अनुसार -

जब जब होई धर्म की हानि, बढै असुर अधम अभिमानी।

तब तब प्रभु धरै विविध सरीरा, हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।।

अर्थात् जब जब इस पृथ्वी पर धर्म का नाश होता है और अधर्म बढ़ा है तब तब इस पृथ्वी पर वह निर्गुण ब्रह्म जन्म लेता है और मनुष्य रूप में सता सज्जना का कल्याण है- विप्र धनसुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार। अवतार भावना के प्रबल विरोधी कबीर ने जब यह कहा- पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूंजू पहार। ऐसा लगता है कि तुलसी ने इसी भावना या विचार का खंडन करने के लिए तर्क दिया-

पैज परे परलादु के प्रगटै प्रभू पाहन ते।

यही नहीं जलसी सभी देवी-देवताओं को मानते हैं, उन्हें स्वीकारते हैं लेकिन यह भी कहते हैं कि इनमें कोई अंतर नहीं हैं सब एक रूप है।

स्वयं आकलन प्रश्न-1

1. तुलसी दास का दार्शनिक मत क्या था।
2. तुलसी दास के गुरु का नाम बताओं।

13.4 तुलसी की प्रासंगिकता :

तुलसी की प्रासंगिकता हिंदी साहित्य में तुलसी को शिरोमणि, लोकनायक, युग प्रवर्तक, समन्वयवादी नामक आदि अनेक रूपों में जाना जाता है। तुलसी का जिस युग में आविर्भाव हुआ उस समय का समाज अत्यंत विश्रृंखल, तनावपूर्ण, विसंगतियों, विरोधों से घिरा हुआ था। यह वह युग था जब मुगलों ने अपने आतंक से सम्पूर्ण भारतभूमि को आतंकित कर रखा था। यही नहीं राजे-रजवाड़ों की फूट से भी वैषम्य फैला हुआ था। ऐसे दासता के युग में धार्मिक क्षेत्र में निर्गुणापासकों, नाथों, सिद्धों का बोलबाला था। आर्थिक दृष्टि से देश विपन्नावस्था की ओर जा रहा था और देश में बार-बार अकाल पड़ते थे, महामारी के प्रकोप भी कम न थे, वर्णाश्रम व्यवस्था मतप्राय दशा में थी। समाज में नैतिक बंधन ढीले पड़ चुके थे। ऐसे समय में तुलसी का पदार्पण हुआ।

तुलसी के सामने सबसे बड़ी समस्या वह मार्ग खोजने की थी जिसके बल पर व समाज को सीधे-सरल तरीके से संगठित कर सकें वैषम्य दूर कर सकें। ऐसे में तुलसी ने आजीवन दिगन्तव्यापी क्रांति की मशाल जलाई, हताश-निराश बुझी-बुझी आत्माओं में पौरुष का अलख जगाया। उन्होंने बनी बनायी पिटी-पिटायी विषय वस्तु की लीक को तोड़ा, बहुबल्लम दुष्यन्त 'छिया भीर छाद पर नाच नचाने वाले देख्यो, तहाँ वह बैठ पलोटत राधिका पायने', वंशी बजैया, रास रचैया, कुंवर कन्हैया को छोड़ा और पकड़ा रघुकुल-कमलदिवाकर, दशरथ अजिर-विहारी, सीतापति, पुरुषोतम श्रीराम को जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लोक सेवा की बलि वेदी पर सहर्ष उत्सर्ग कर दिया। पूजा राम से कराकर मानों उन्होंने संकीर्णता को तिलांजलि दे डाली।

युग युग से आती हुई जाति पाति की विधूर्षित-मान्यताओं का मूलोच्छेद कर उन्होंने हरिभक्तों की एक बिरादरी बनायी। ब्रह्मर्षि के मानसपुत्र महर्षि वशिष्ठ को बासन चुरानेवाले और अकिंचन निषाद से गले मिलवाकर तथा चक्रवर्तीतनय ईश्वरावतार पुरुषोतम राम को भीलनी शबरी के जूठन बेर खिलाकर उन्होंने सामाजिक विषमताओं को चुनौती दे डाली। कैकयी-कोप और राम-वनवास के माध्यम से उन्होंने बहुपत्नीत्व के दोषों का भण्डापफोड़ किया।

'दोइ-सुत सुंदर सीता जायें' या 'दोइ सुत सब प्रातन्ह केरी के माध्यम से साम्प्रत भारत सरकार की जन्म निरोध समस्या का मानो पूर्व-समाधान प्रस्तुत कर दिया। 'समपति सब रघुवर के आहीं' के द्वारा उन्होंने धन-संचय एवं उसके प्रति घोर ममत्व को दूर किया। दशरथ की तीन पत्नियां दिखाकर राम राज्य की भांति भरत राज्य के लिए कैकयी का हठ दिखाकर बहुपत्नी प्रथा का विरोध किया और उसकी त्रुटियाँ दिखायी। वहीं कैकयी को मना के समय दशरथ को एक निरंकुश राजा के रूप में वर्णित किया है। उत्तरकांड में राम राज्य के बहान एक सुसंघटित कल्याणकारी राज्य की सर्वोत्तम रूपरेखा तैयार की जहां राज्य में राग न राष न दोष दुख, सकल पदारथ चारि उपलब्ध है। उन्होंने शासक को कभी निरंकुशता का समानार्थी नहीं माना इसलिए 'जो पाँचऊ मत लागहि नीका, करहिं हरषि हिय रामहि टीका' कहकर लोकतन्त्र की नींव रखी।

उन्होंने भोजनभट्टड्डों, जिवालोलुपों का सदा तिरस्कार किया एवं कद-मूल फल के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास दिखाया तो वहीं सुषैन वैध चिकित्सा पद्धति का महत्व समझाया। यदि गोस्वामी के मानस का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया जाये तो इन विदेशी एलोपैथिक कम्पनियों द्वारा जो इतना धन विदेश चला जाता है। इतनी विदेशी मुद्रा की हानि होती है, इसकी बचत हो जाए।

गोस्वामी ने वासना से अति पीड़ितों को नासिका-कर्ण-विहीन विकराल बनाकर शूर्पणखा प्रसंग जनता के हास-परिहास का आलम्बन बनाया। उन्होंने नारीत्व का भूषण पातिव्रत्य माना। इसलिए सुन्दरता को भी सुंदरता प्रदान करने वाली सीता की उपासना की। उनके अनुसार नारी मांस-पिण्ड की संज्ञा मात्रा नहीं है। समाज का संर्वद्धन एवं राष्ट्र का अभ्यदय सम्भव है तो इन्हों नारियों के कारण। लेकिन उन्होंने मर्यादा-विहीन शूर्पणखा सदृश स्वैरिणी नारी को ही भर्त्सना का लक्ष्य बनाया है। नारी कभी एक पुरुष को छोडकर दूसरे की ओर, दूसरे को छोड़कर तीसरे की ओर अपनी काम तृष्टि के लिए दौड़ती है और ऐसा ही रहा तो समाज में हर मिनट पर तलाक का ही घिनौना नाटक होता रहेगा, जैसा कि आज अमेरिका में हो रहा है।

रामचरितमानस में स्वर्णनगरी लंका वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रतीक हैं और रावण शोषक का प्रतीक है। यदि वैज्ञानिक उपलब्धियों के ऊपर दशसिर रावण का आधिपत्य हो जाए तो वह सज्जनों का रत्तफ शोषण करेगा, सर्वस्व हरण करेगा, उन्हें बंदी बनायेगा, उनका शील हरण करेगा तथा सात्विक शांत जीवन व्यतीत करने में विघन डालेगा जिससे समाज में अशांति और अवयवस्था ही फैलेगी। इसलिए राम की आवश्यकता है जो परायी शतिफ का उपयोग नहीं करता, वरन् जो संकट सहता है, संकट से लोगों का उबारने के लिए कठिन यात्रा पर निकल पड़ता है। वह अयोध्या यानि राज्य की सैन्य शक्ति का उपयोग नहीं करता, वरन् देश की ग्रामीण जनता की सुप्त शक्ति का उदबोधन करता है, अपनी सहायता के लिए उन्हीं पीड़ितों को मण्डली तैयार करता है।

रामचरितमानस में सीता कृषि पुत्री के रूप में है और रावण जैसे पूंजीपति शोषक द्वारा उसका हरण वास्तव में श्रम का हरण है, कृषि संस्कृति का हरण हैं। वह शोषक पूंजीपति रावण जिसने अपने बल पर हवा, पृथ्वी, अग्नि, कुबेर आदि सभी को अपने वशीभूत कर लिया है। यही नहीं मानवीयता की शक्ति को भी उसने बंदी बना लिया है। तुलसी का उद्देश्य राम के चरित्र के माध्यम से जनता में जोश, होश लाने का प्रयास किया है और यह बताने का प्रयास किया है कि कोई भी आम व्यक्ति अपन कर्मो के बल पर पुरुष से पुरुषोतम बन सकता है। इसलिए तुलसी ने राम को आम व्यक्ति के रूप में जन्म देकर ईश्वर रूप प्रदान कराया। यही नहीं राम के वैभवपूर्ण नहीं संघर्षपूर्ण वृतांत का वर्णन करना ही उन्हें उचित लगा। जनकपुरी में राम आराधय देव शिव का धनुष भंग करते है जिस पर परशुराम और लक्ष्मण के बीच संघर्षी तनाव उत्पन्न हो जाता है वास्तव में परशुराम रूढ़िपालक है और लक्ष्मण रूढ़ि विरोधक।

अतः इसी धनुष भंग प्रसंग के माध्यम से तुलसी में समाज में रूढ़ियों के खंडन के साथ व्यवहारकिता की स्थापना पर बल दिया है। श्रीराम द्वारा एक पत्नी धर्म का संदेश दिया गया लेकिन वहीं दशरथ और राम के राज्य की तुलना द्वारा यह बताने की चेष्टा की गई कि एक और दशरथ अपने स्वार्थ, अपनी पत्नी को मनानेद्ध के लिए सारी जनता को त्रास्त करने के लिए तैयार है। दूसरी ओर राम है जो जनता की खुशी के लिए अपने स्वार्थ सीता का त्याग का त्याग कर देते हैं। अतः राजा को अपने स्वार्थ को ध्यान नहीं देना चाहिए।

आज भारतवर्ष का युवा वर्ग चाहे फैशन के नाम पर भगवान का नाम लेने से कतराता है. किंतु संकट की घड़ियों में संकटमोचन की परिक्रमा से बाज नहीं आता। आज पाश्चात्य सभ्यता के अन्धनुकरण पर भारतवर्ष में भी पारिवारिक प्रथा छिन्न-भिन्न हो रही है, किंतु इसके दुष्परिणामों से आंखें मूंद लेना ठीक नहीं है। जो व्यक्ति अपने भाई-भतीजों के साथ मेल नहीं रख सकता, उनकी पीड़ा से द्रवीभूत नहीं हो सकता यह समाज के साथ समायोजित कैसे हो सकता है?

स्वयं आकलन प्रश्न-2

1. तुलसीदास किस युग के कवि थे?
2. तुलसी दास की किसी एक रचना का नाम बताओं।

13.5 सारांश

अतः तुलसी ने समाज कल्याण के लिए आदर्श पात्रों, चरित्रों, परिवार और राष्ट्र की कल्पना प्रकट की है। निष्कर्षतः त्रेतायुग का रावण मले ही आहत हुआ है किंतु उसके रक्तस्राव से आज भी हजारों-हजार रावण पैदा हो रहे हैं। तयुगीन समाज में मुगल राक्षसों के प्रतीक थे। आज शोषक वर्ग उनका प्रतिरूप है और इन आतातायियों से मुक्ति पाने के लिए हमें अपने राम का उसके सामर्थ्य का आह्वान करना होगा, तभी हमारा जीवन कल्याणमय ह सकता है। हमारा संसार तभी एक स्नेहसूत्र में बंध सकता है। जब हम तुलसी के रामचरितमानस के रामावतार के मर्म को समझकर तदनुकूल आचरण करें। अतः आज के उपयोगितावादी, औद्योगिक एवं वैज्ञानिक युग में भी रामचरितमानस की उपयोगिता प्रांसगिक है।

13.6 कठिन शब्दावली

मराल-हंस। मृग-भौरें। बंदि-वंदना करके। भेषज औषधि। रजनिचर-राक्षस। लाहू-लाभ। सुकसारी-तोता मैना। मसि स्याही।

13.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

स्वयं आकलन प्रश्न-1 के उतर

1. उत्तर- विशिष्टाद्वैतवाद।
2. उत्तर- नरहरिदास।

स्वयं आकलन प्रश्न-2 के उतर

1. उत्तर- भक्तिकाल।
2. उत्तर- रामचरितमानस।

13.8 संदर्भित पुस्तकें :

1. गोस्वामी तुलसीदास - रामचंद्र शुक्ल।
2. तुलसीदास - डॉ. उदयभानु सिह।
3. तुलसीदास चिंतन- राम प्रतिपाल सिंह।

13.9 सात्रिक प्रश्न

1. सिद्ध कीजिए कि 'रामचरितमानस' एक उत्तम कोटि का महाकाव्य है।
2. तुलसी की दार्शनिकता पर एक आलोचनात्मक निबंध लिखे।

*****

इकाई–14
तुलसीदास : काव्य की विशेषताएं

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 तुलसीदास : काव्य की विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्दावली

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.7 संदर्भित पुस्तकें

14.8 सात्रिक प्रश्न

14.1 भूमिका

गोस्वामी तुलसीदास जी पूर्ण भावुक कवि थे। उनका कवि व्यक्तित्व तन्मयकारिणी भावुकता और एकनिष्ठ भगवद्-भक्ति से निर्मित हुआ था। उन्होंने मानव जीवन की प्रायः प्रत्येक भावना से तादात्म्य स्थापित किया था। यही कारण है कि वे अपने काव्य में मानव के सभी पक्षों का सुन्दर उघ्द्घाटन करने में समर्थ सिद्ध हो सके।

14.2 उद्देश्य

1. तुलसीदास की भाषा का विश्लेषण करने योग्य होंगे।
2. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं को समझने में सक्षम होंगे।
3. तुलसीदास की समन्वय भावना को समझने।

14.3 तुलसीदास : काव्य की विशेषताएं

तुलसीदास का जन्म

गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म सम्वत् 1589 ई० मानते है। अधिकांश विद्वान इनका जन्म स्थान (उत्तर प्रदेश) बांदा जिले के राजापुर गाँव को मानते हैं। अन्य विद्वान सोरों नामक स्थान को इनका जन्म स्थान मानते हैं। ये सरयूया ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था इनका विवाह दीनबन्धु की पुत्री रत्नावली से हुआ।

तुलसीदास की प्रमुख रचनाएं : बारह रचनाएं ही प्रामाणिक हैं।

दोहावली, कवितावली, गीतावली, कृष्णगीतावली, विनय पत्रिका, राचरितमानस, इत्यादि महत्वपूर्ण रचनाएं समाहित हुई है।

तुलसीदास के काव्य की विशेषताएं

तुलसी के काव्य की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

1. **विषय की व्यापकता :** तुलसीदास ने अपने युग का गहन एवं गंभीर अध्ययन किया है। उन्होंने अपने युग के जीवन के लगभग सभी पक्षों पर लेखनी चलाई है। उनके काव्य में धर्म, दर्शन, संस्कृति, भक्ति, कला आदि का सुन्दर समन्वय हुआ है। विभिन्न भावों और सभी रसों को उनकी रचनाओं में स्थान मिला है।
2. **श्रीराम का स्वरूपः** महाकवि तुलसीदास ने अपने काव्य में श्रीराम को विष्णु का अवतार मानते हुए उसके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का उल्लेख किया है। श्री राम को धर्म का रक्षक और अधर्म का विनाश करने वाला माना है। उन्होंने श्रीराम के चरित्र में शील, सौन्दर्य एवं शक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।
3. **सैद्धान्तिक भावना :** तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य दार्शनिक पष्ठभूमि पर आधारित है । तुलसीदास ने दर्शन के नीरस सिद्धान्त को भावपूर्ण एवं कोमल भाषा में बड़ी सफलता पूर्वक उद्घाटित किया है। तुलसीदास ने विविध दार्शनिक मतों को ग्रहण करते हुए भी उनमें तारतम्य बैठाकर उनका अघ्द्भुत समन्वय किया है। उनकी दार्शनिक विचारधारा मौलिकतापूर्ण है।
4. **प्रबंधन योजना :** तुलसी की प्रबन्ध-योजना अद्वितीय है। उनकी लगभग सभी रचनाओं में कथा - सूत्र पाया जाता है। रामचरितमानस की प्रबन्ध पटुता सर्वश्रेष्ठ है। सारी कथा मार्मिक प्रसंगों से भरी पड़ी है।
5. **वस्तु विन्यास :** तुलसीदास रामचरित् मानस के कथानक अध्यात्म रामायण तथा वाल्मीकि रामायण से लिया माना जाता है। जहाँ भी तुलसी ने इसमें परिवर्तन आवश्यक समझा है वहां कलात्मकता का पूरा ध्यान रखा है। कथावस्तु के विकास और वर्णन विस्तार में भी तुलसी की असाधारण प्रतिभा और कला के दर्शन होते हैं।

6. **मार्मिकता**

सच्चा कवि वही कहा जा सकता है, जो मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान कर उनका मर्मस्पर्शी चित्रण करना अपना मुख्य लक्ष्य समझे। पं. रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यह गुण तुलसी में सबसे अधिक था। उनमें ऐसे दृश्यों को पहचानने की अपूर्व क्षमता थी।

'रामचरित मानस' का 'सीता स्वयंवर' प्रसंग का दृश्य बड़ा ही मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। कविवर तुलसीदास जी ने इस मर्म को बड़ी सहृदयता से अभिचित्रित किया-

''अहह तात दारून हठ ठानी।
समुझत नहिं कछु लाभ हानी।
सचिव समय सिखा देइ न कोई।
बुध समाज बुरा अनुचित होई।''

7. **एकनिष्ठ भगवद्-भक्ति**

महाकवि तुलसीदास जी श्रीराम के परम और अनन्य भक्त है, आपकी भक्ति का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय श्रीराम के प्रति एकमात्र समर्पण की भावना है। उन्होंने श्रीराम के प्रति अपनी अपार निष्ठा और विश्वास को व्यक्त करते हुये लिखा हैं-

''रघुपति महिमा अगुन अबाधा।
बरनब सोइबर बारि अगाधा।।
राम सीय जस सलिल सुधासम।
उपमा बिचि विलास मनोरम।।''

8. **नारी के प्रति दृष्टिकोण**

नारी-चित्रण के विषय में तुलसीदास जी कटु आलोचक नहीं है। उन्होंने विलासी कर्तव्यहीन चरित्रहीन, धर्म-हीन कुमार्गी आदि अवगुणी नारियों की बार-बार भर्त्सना की है। पतिव्रता और भक्त नारियों तो तुलसीदास के लिये हमेशा उपास्य है -

''हिये हरषे मुनि वचन सुनि देखी प्रीति विश्वास।
चले भवानी नाइ सिर गये हिमाचल पास।।''

9. **लोक-धर्म और मर्यादा**

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में लोक-धर्म और मर्यादा का सफल चित्रण मिलता है। तुलसी के इष्टदेव श्रीराम लोक-धर्म और मर्यादा के सच्चे पालक हैं, वे इसके समर्थक और प्रतीक है। इसलिए तुलसी के इष्टदेव ''श्रीराम'' मर्यादा पुरुषोतम के रूप में और स्वयं तुलसी ''लोकनायक'' के रूप में सर्वमान्य और लोकप्रिय हैं।

10. **वस्तु-विन्यास**

तुलसी के काव्य का वस्तु-विन्यास अत्यन्त सरल और बोधगम्य है। स्वाभाविकता, सरलता, सजीवता रोचकता एवं स्पष्टता उनके वस्तु-विन्यास की प्रमुख विशेषतायें हैं।

11. **प्रकृति चित्रण**

तुलसीदास प्रकृति के चतुर चितेरे चित्रकार है। तुलसीदास ने प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्रण किया है। प्रकृति का चित्रण सौंदर्य या आकर्षण की दृष्टि से नहीं अपितु मानव से उसका तादात्म्य स्थापित करके उसके नाना व्यापारों एवं स्वरूपों का चित्रण उपदेशक के रूप में एवं आत्मीय के रूप में किया है। तुलसी काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। उनके काव्य में वन, नदी, पर्वत, पक्षी आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

दृष्टव्य है- राम की वियोग-दशा को चित्रित करने वाला प्रकृति का एक वर्षाकालीन दृश्य-

''घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रियाहीन हरपत मन मोरा॥''

समन्वय की भावना :

तुलसीदास के काव्य में समन्वय की भावना का अद्‌भुत चित्रण हुआ है। तत्कालीन समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि सभी समस्याओं का किसी-न-किसी रूप में उल्लेख हुआ है।

अगुनहि सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥

तुलसी के काव्य की कला-पक्ष विशेषताएं

तुलसी काव्य की कलागत विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

कला-पक्ष

तुलसी के काव्य का कला-पक्ष काफी समुन्नत एवं विकसित है। उन्होंने अपने समय की प्रसिद्ध अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। 'रामचरितमानस' में अवधी तथा विनय पत्रिका में ब्रज भाषा का सफल प्रयोग हुआ है।

1. **अलंकार** - तुलसी के काव्य में अलंकार प्रियता देखी जा सकती है। हालांकि वे अलंकारवादी नहीं है। तुलसी को अलंकार प्रदर्शन पसंद नहीं है, बल्कि अलंकार उनके काव्य में सहज रूप से आये है। उपमा एवं व्यतिरेक का एक उदाहरण देखिये--

   ''पीपर पात सरिस मन डोला॥'' (उपमा)

   ''सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहै जाना।
   निज परिपात द्रवै नवनीता, परिदुख सुसंत पुनीता॥'' (व्यतिरेक)

2. **चित्रात्मकता** - तुलसी के शब्द चित्र अनुपम है। वे पाठक के अन्त पटल पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। सीता की असहाय स्थिति का एक चित्र दिखिये-

   ''रघुकुल तिलक वियोग तिहारे।
   मैं देखो जब नाई जानकी,
   मनहुँ विरह मरति मन मारे॥''

3. **शब्द और अर्थ का सामंजस्य** - तुलसी के काव्य में शब्दार्थ का सुदर समन्वय है। लक्षणा शब्द शक्ति का एक सुन्दर प्रयोग देखिये-

   ''सत्य सराहि कहेड बरु देना,
   जानेहु लेइहि मांगि चर्वेना॥''

4. **भाषा** - तुलसी की कृतियों को पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उन्होंने अवधी और ब्रजभाषा दोनों का सुन्दर और अधिकारिक प्रयोग किया है। रामचरितमानस की रचना पश्चिमी अवधी तथा पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलाल नहछू की रचना पूर्वी अवधी में हुई है। कवितावली, विनय पत्रिका और गीतावली की रचना सरस ब्रज भाषा में हुई है। उनकी भाषा प्रसंगानुकूल है। वह कहीं सारगर्भित है तो कहीं पर मुहावरेदार है। उनकी भाषा में शिथिलता नहीं है, वह भावों की अनुगामिनी है। भावों के अनुसार भाषा का रुप बदलता रहा है। भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुण मिलते हैं। उदाहरणार्थ-

विकसे सरसिज नाना रंगा। मुख गुंजत बहु श्रृंगा।

चातक, कोकिल वीर चकोरा। कूजत विहग नवत मन मोरा।

5. **मुहावरे का प्रयोग :**

तुलसीदास के काव्य में मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

(i) अंजन आंखि जेहि फूटै

(ii) कहाँ कालिमा ध्वैहौ।

(iii) सौ दिन सोने को कब आइहौं

(iv) मोहितौ सावन के अंधहि ज्यो सूझत रंग हरयो

6. **लोकोक्तियों का प्रयोग :**

तुलसीदास के काव्य में लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है।

(i) मेरो सब पुरुषारथ थाके, मन मोदकन कि भूख बुताई।

(ii) मांगि कै खैबो मसीद की सोइबौ

लेबी को एक न देव को दोउ।

7. **शैली एवं छन्द योजना-**

तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य शैलियों का प्रयोग किया। छप्पय, दोहा, सूफियों की मसनबी शैली, सूक्तिपरक दोहा शैली, कवित्त, सवैया, लोकगीतों में प्रचलित सोहर आदि काव्य शैलियों का सफल प्रयोग किया है। मानस में जायसी द्वारा प्रयुक्त मसनवी शैली, गीतावली व विनय पत्रिका में विद्यापति की गीत पद्धति, कवितावली में सवैया एवं कविक्त शैली, दोहावली में नीति उपदेश परक सूक्ति पद्धति शैली का प्रयोग कवि ने किया। राचरितमानस में एक ही कृति में विभिन्न छन्दों और काव्य शैलियों का प्रयोग मिल जाता है-

(i) **गुरु अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदय आनन्द विसेषी।।**
भरतहिं धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तम मानुस बानी ।।

(ii) **कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात।। -दोहा**

(iii) **कतुहुँ विपट मधुर उपारि परसन वरष्पत।**
कतहुं बाजि सों बाजि मद गजराज करणपत।। - छप्पय

(iv) **वरदन्त की पंगति कुन्दकली, अधराधर पल्लव खोलन की।**
चपला चमकै धनबीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की।।

(v) **जे आपकारी चार तिम्हकर गौरव मान्य तेड़ । - सवैया**
मन क्रम बचन लवार तेइ वकता ललि काल महँ ।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. तुलसी दास की भाषा का नाम लिखें।
2. तुलसी दास के काव्य की एक विशेषता बताओं।
3. तुलसी दास की प्रसिद्ध रचना का नाम लिखें।

14.4 सारांश -

सारांश रूप में हम कह सकते है कि तुलसी दास ने अपने काव्य में भगवान श्रीराम के चरित्र के साथ साथ कृष्ण के रूप का भी वर्णन किया है। उन्होंने अपने काव्य में समन्वय की भावना का चित्रण किया है। काव्य में समकालिन समय की प्रसिद्ध भाषा साहित्यक अवधि का प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति हेतु किया है।

14.5 कठिन शब्दावली :

अवगुनहिं - अवगुण । सवगुनहिं सगुण । संकोच - शर्माना या संकोच करना। मानुस - मनुष्य। अनुरागु - प्रेम करना। मधुर मीठा कोमल। उपारि - ऊपर। गजराज - हाथी।

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर:

1. उत्तर- अवधि।
2. उत्तर- समन्व्यवादी कवि।
3. उत्तर- रामचरितमानस।

14.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. तुलसी : आधुनिक वातायन से, रमेश कुन्तल मेघ, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
2. तुलसीदास : वस्तु और शिल्प, प्रकाश दीक्षित, सरस्वती पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल, का ना. प्र. सभा, वाराणसी।

14.8 सात्रिक प्रश्न

1. तुलसी दास के काव्य की एक विशेषता बताओं।
2. साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन करें।

*****

इकाई–15
तुलसीदास की भक्ति भावना

संरचना

15.1 भूमिका

15.2 उद्देश्य

15.3 तुलसीदास की भक्ति भावना

स्वयं आकलन प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्दावली

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

15.7 संदर्भित पुस्तकें

15.8 सात्रिक प्रश्न

15.1 भूमिका

भक्तिकाल की सगुण भक्ति धरा में रामभक्ति काव्य की लबी परंपरा रही है। भक्तिकालीन हिंदी सगुण भक्ति काव्य के अंतर्गत राम भक्ति काव्य के प्रमुख प्रवर्तक तुलसीदास है। राम भक्ति की प्रतिष्ठा रामानंद द्वारा हुई रामानंद की भक्ति और विचारधारा से तुलसीदास प्रभावित थे। राम भक्ति काव्य विकास में कई कवियों ने अपना योगदान दिया है। इनमें प्रमुख है ईश्वरदास, तुलसीदास, नामादास केशवदास, प्राणचंद चौहान आदि हैं। राम भक्त कवि राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध है। यही कारण है कि भक्त कवियों ने अपने और राम के बीच सेवक सव्य भाव स्वीकार किया है। तुलसीदास अनुसार सेवक ''सेवक सेव्य भाव बिनुभव न तरिउ उरगारि।

15.2 उद्देश्य

1. तुलसी दास की भक्ति भावना के स्वरूप की जानकारी।
2. भक्ति भावना के स्वरूप की जानकारी।
3. नारद की नवधा भक्ति का बोध।

15.3 तुलसी की भक्ति भावना

तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोतम राम के चरित्र को आधार बनाकर साहित्यिक रचना की। राम को एक आदर्श राजा, भाई, पति ,पिता आदि के रूप में चित्रित कर समाज सामने पेश किया। इससे तुलसीदास की विचारधारा तथा भक्ति भावना को समझा जा सकता है। तुलसी की भक्ति भावना भक्ति शब्द 'भज' धातु 'क्तिन' प्रत्यय के योग से बना जिसका अर्थ है प्रीतिपूर्वक सेवा करना। 'भक्ति' शब्द से सामान्य रूप से यह अर्थग्रहण किया जाता है- प्रेमपूर्वक भगवान की शरण में जाना।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति कहा है। प्राचीन धर्मग्रंथों में भक्ति को लेकर विभिन्न परिभाषाएं हैं।

शांडिलभक्तिसूत्र में कहा गया है - 'सापरानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति भक्ति है।

नारदभक्तिसूत्र में भक्ति की परिभाषा देते हुए प्रभु के प्रति प्रदर्शित परमप्रेम को भक्ति कहा गया है- 'सात्वारिमन परमप्रेमरूपा।'

रूपगोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिंधु में भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्ति रूत्तमा अर्थात अनुकूलता के साथ कृष्ण का अनुशील भक्ति है, उत्तम भक्ति हैं वस्तुत: भक्ति ईश्वर के अनुराग का नाम है। भक्तिकालीन कवियों के समक्ष भक्ति का स्वरूप स्पष्ट था और पुष्ट आधार था। अत: सभी ने अपने अपने ढंग अराधना आरम्भ की जहां तक तुलसी के समक्ष भक्ति स्वरूप का प्रश्न था। उन्होंने उसे स्पष्ट करते हुए कहा कि श्रीराम के प्रति प्रेम ही भक्ति है -

प्रीति राम सों नीति पथ चलिए राग रिस जीति।
तुलसीं संतन के मतै इहै भगति की रीति॥

इस भक्ति में स्वार्थ, छल, कपट नहीं होता, प्रत्युत सेवक की ओर से प्रेमपूर्ण समर्पण का भाव होना चाहिए। भक्ति का कोई न कोई आलम्बन होता है। भक्त का वही ईष्ट होता है। तुलसी के राम विष्णु के अवतार है। अवतार का अर्थ है उतरना अवतरण। अथवा बैकुण्ठा दत्रागमनम भगवान बैकुंठ धाम में रहते है, और धरती पर भक्तों के कल्याण, दुष्टों के नाश, धर्म की स्थापना के लिए उतरते हैं। तुलसी की भी ऐसी सोच है-

जब जब होई धर्म की हानि बढ़े असुर अधम अभिमानी।
तब तब प्रभु धरे विविध सरीरा, हरहि कृपानिधि सज्ज न पीरा॥

धेनु अर्थात जन कल्याण के लिए ही वह निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप लेकर धरती पर उतरता है- विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार। तुलसी के इष्टदेव राम हैं। यद्यपि तुलसी ने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकारा है-

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।

गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।

पर वे सगुण भक्ति को ही श्रेयस्कर मानते हैं। उनकी भक्ति राम के प्रति हैं। जिसने इस भक्ति को प्राप्त कर लिया है, उसे फिर किसी वस्तु को पाने की इच्छा नहीं रहती है। तुलसी के राम शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है। आचार्य शुक्ल के अनुसार शक्तिशील और सौन्दर्य की पराकाष्ठा भगवान का व्यक्त या सगुण रूप है। इनमें से सौन्दर्य और शील भगवान के लोकपालन और लोकरंजन के लक्षण है और शक्ति उद्‌भव और लाय का लक्षण है। तुलसी ने भक्ति और ज्ञान में भी अभेद की स्थापना की है। वे इन दोनों को सांसारिक खेद को दूर करने का साधन मानते हैं -

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहि भव सम्भव खेदा।।

भक्ति और ज्ञान, दोनों में तुलसी ने अपना विश्वास प्रकट किया है, पर भक्ति को वे ज्ञान ने श्रेष्ठ मानते हैं। तुलसी के अनुसार ज्ञान दीपक के समान है जो आंधी के झोंके से बुझ सकता है, पर भक्ति मणि की तरह से है जो सदा उज्ज्वल बनी रहती है। अन्यन्त्र वे लिखते हैं कि 'भक्ति' और 'माया' दोनों स्त्रियां है, किन्तु ज्ञान पुरुष है। जिस प्रकार पुरुष स्त्री के वश में रहता है, उसी प्रकार ज्ञान माया के अधीन रहता है, परन्तु माया भक्ति नहीं मोह सकती। इस प्रकार तुलसी ने भक्ति और ज्ञान का समन्वय करते हुए भी भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बतलाया है। यह ज्ञान से सहज भी है।

भक्ति दो प्रकार की मानी गई है- वैधी और रागात्मिका। वैधी भक्ति में शास्त्रोक्त विधानों की प्रमुखता है और रागात्मिका भक्ति में भगवत प्रेम की। रागात्मिका भक्ति का आधार एक-मात्र ईश्वर-प्रेम है। तुलसी की दृष्टि में रागात्मिका अथवा प्रेम रूप भक्ति ही सर्वोत्तम है। यह साधन भी है और सिद्धि भी 'साधन सिद्धि राम पद नेहू।'

भाव-भद भक्तों के चार-भेद माने गये हैं - आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। 'रामचरितमानस' में चार संवाद (शंकर-उमा सम्वाद, काकभुशुण्डि गरुड़ सम्वाद, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज सम्वाद, तुलसी और सज्जन सम्वाद) भक्तों के इन चारों रूपों को प्रस्तुत करते हैं। प्रथम सम्वाद में आर्त होकर उमा शंकर जी से राम की कथा सुनाने का आग्रह करती हैं। दूसरे सम्वाद में गरुड़ को जिज्ञासु भक्त के रूप में माना जा सकता है। याज्ञवल्क्य और भारद्वाज के संवादों में ज्ञानी भक्त का रूप प्रस्तुत होता है इसमें भारद्वाज एक ज्ञानी भक्त है। तुलसीदास और सज्जन सम्वाद में सहदय सज्जन अधार्थी भक्त है। इसलिए तुलसी कहते है-

'मन कामना सिद्धि नर पावा।

जो यह कथा कपट तजि गावा।।'

भक्ति के पांच विशिष्ट भाव कहे जाते हैं-

कान्त, वात्सल्य, सख्य, दास्य और शान्त। तुलसीदास ने इनमें दास्य भाव की भक्ति को प्रधानता दी है। भगवान को स्वामी और स्वयं को सेवक समझना दास्य-भक्ति है। यही भक्ति तुलसी का आदर्श है-

''सेवक सेव्य भाव बिनु भाव न तरिय उरगारि।''

तुलसी की विनय-पत्रिका दास्य भाव की भक्ति का अनुपम ग्रन्थ है। तुलसी के आराध्य श्रीराम है जिनकी भक्ति ही एकमात्र साधन है जो इस भवसागर से सदेव छुटकारा दिला सकती है। चाहे कुछ भी हो जाए बिना भक्ति के मोक्ष असंभव है-

बारि मथे घृत होइ बरु सिकता से बरु तेल।

बिनु हरि भजन भव न तरिय यह सिद्धांत अपेल॥

भक्ति ने भक्ति में भी सेवक-सेव्य भाव की भक्ति को श्रेष्ठता दी है। क्योंकि जब तक दास स्वामी को बड़ा और स्वयं को छोटा नहीं मानेगा तब तक निष्ठापूर्ण समर्पण का भाव जागृत नहीं होगा। तभी उन्होंने कहा है-

राम सो बड़ी है कौन मो सो कौन छोटा।

राम सो खरा है कौन मो सो कोन खोटो॥

इसलिए तुलसी बार बार अपने को दीन-हीन नीच, मलिन बताते है और राम को गरीब निवाज साहेब आदि का पद देते हैं। इस प्रकार भक्ति के पांच विशिष्ट भावी (कान्त, वात्सल्य, शांत, दास्य, सख्य) में से दास्य भक्ति को प्रधानता दी है। यही भक्ति तुलसी का आदर्श है।

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।'

तुलसी की दृष्टि में वही भक्ति सर्वोत्तम है। वह साधन भी है सिद्धि भी जिसमें राम की वंदना और प्रेम का भाव मिला है- 'साध्साप्न सिद्धिराम पद नेहू। तुलसी ने भक्ति में राम के प्रति एक निष्ठ भाव रखने के लिए अनेक उपमान दिए हैं-

एक भरोसे एक बल एक आस बिरवास।

एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास॥

भक्ति अथवा प्रेम की यह अनन्यता राम पर श्रद्धा और विश्वास बिना सम्भव नहीं-

'बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम'।

तुलसी ने राम से प्रेम के द्वारा भक्त द्वारा जीव का साक्षात्कार हो सकता है। इसके लिए भक्त के विचार मन बिल्कुल सीधे साफ होने चाहिए-

सूधे मन सूधे वचन सूधि सब करतूति।

तुलसी सूधि सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति॥

भक्ति की निबंधना के क्षेत्र में नवधा भक्ति का बड़ा महत्व है। नौ प्रकार की भक्ति नवध भक्ति कहलाता है।

1. श्रवण, 2 कीर्तन, 3 स्मरण, 4 पादसेवन, 5 अर्चना, 6 वंदना, 7 दास्य, 8 सख्य और आत्म निवेदन।

भक्ति के ये नौ प्रकार है। भगवत पुराण में इसका संकेत किया गया है। तुलसी के काव्य में इस तरह की भक्ति का व्यापक प्रयोग हुआ है यहाँ पर कुछ संकेत दिये जाते हैं-

1. **श्रवण** - जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना।
2. **कीर्तन** - जो नाहिं करै राम गुन गाना। जीह सो दादुरं जीह संमाना।।
3. **स्मरण** - श्री रघुनाथ रूप उर आया। परमानन्द अमित सुख पावा।।
4. **पादसेवन**- वंदि चरन बोली कर जोरी।
5. **अर्चन** - पूजहिं प्रभुहि देव बहु वेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा।
6. **वंदन** - श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भव दारूण।
7. **दास्य** - मैं सेवक रघुपति पति मोरै।
8. **सख्य** - सनहु सखा कह कृपानिधना।

9. आत्मनिवेदन - श्रवण सुजस सुनि आयउँ प्रभु भंजन भवमीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुवीर।।

भक्ति में विनय की सात भूमिकाएं मानी गई हैं -

दीनता, मानमर्षता, भर्त्सना, भयदर्शन, आश्वासन, मनोराज, विचारणा। ये सातों भूमिकाएं तुलसी की 'विनय पत्रिका' में सहज ही मिल जाती हैं। जिनके संकेत यहां द्रष्टव्य हैं-

1. **दीनता** - कैसे देउँ नाचहि खोरि।
2. **मानमर्षता** - काहे रे हरि मोहि बिसारो।
3. **भर्त्सना** - ऐसी मूढ़ता या मन की।
4. **भयदर्शन** - राम कहत चल राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।
5. **आश्वासन**- ऐसे राम दीन हितकारी।
6. **मनोराज** कबहुँक ही यह रहनि रहोगो।
7. **विचारण**- केशव कहि न जाय का कहिए।

भक्ति के आचार्यो ने भक्ति की पंद्रह आसक्तियों का वर्णन किया है। नारदमुक्तिसूत्रा में जिनके नाम इस प्रकार का नाम है-गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, साख्यसक्ति, कांतासक्ति वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति परमविरहासक्ति।

नवधा भक्ति के प्रसंग में ये सभी तुलसी के काव्य में आ गई है। डॉ. उदयमान सिंह के शब्दों में वे तुलसी के काव्य में न्यूनारंजक रूप में दखी जा सकती है।

भक्तिरसामृतसिंधु में रूपगोस्वामी ने भक्ति की सांगोपांग विवेचना करके उसके पांच मुख्य भाव वर्णित किए हैं - शांत, दास्य, सख्य, वत्सल, मधुर। तुलसी के काव्य में भक्ति के ये पांचों भाव मिलते हैं-

1. शांत - जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।

2. दास्य - तू दयालु दीन हौं तू दानि हौ भिखारी।
हौ प्रसिद्व पातुकी तू पाप पुंजहारी।।

3. सख्य - सनहुं सखा कह कृपा निधना।

4. वात्सलय - वत्सल कौशल्या जब बोलन जाई।
ठुमक ठुमक प्रभु चलाहिं पराई।

5. मधुर (श्रृंगार) - राम को रूप निहारति जानकी
कंकन के नग की परछाई।
तातै सबै सुधि भूलि रही कर
देखि रही पल डरत नाहीं।

तुलसीदास ने भक्ति के बाधक तत्वों की ओर भी संकेत किया है। संशय, मोह, क्रोध, कुसंगति आदि। इनसे मनुष्य को सावधान रहने के लिए कवि ने कई स्थानों पर चेतावनी भी दी है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. विनयपत्रिका की भाषा कौन सी है?
2. तुलसीदास में किस भक्ति भावना का प्रधन्य है?
3. शुक्ल ने तुलसीदास के कितने ग्रंथों को प्रमाणिक बताया है?

15.4 सारांश

इस प्रकार तुलसी की भक्ति संवागपूर्ण है और जीवन के विविध पक्षों का स्पर्श करती चलती है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण तुलसी की भक्ति आज भी भारतवासियों के लिए प्रेरणादायक है। भक्तिमार्गी तुलसी तर्क और विवाद के व्यसन में न पढ़कर जीवन की सार्थकता भक्ति में ही मानते हैं-

'वाद विवाद स्वाद तजि भजि हरि सरल चरित चित लायेंहिं।'

15.5 कठिन शब्दावली

व्यालहिं-वाणी रूपी भ्रमरी। भोर पनु-मेरा प्रण। व्यालहि सांप। मनसिज-कामदेव। लोल-चंचल। बिलोचनं नेत्रा। दारूनि कठिन। निकेष-पल। लप-अंश। वैदेहीं-सीता जी। सकल भुवन-समस्त संसार। लखि-देखकर। मराल-हंस। भृंग-भौरें। बंदि-वंदना करके। भेषज औषधि। रजनिचर-राक्षस। लाहू-लाभ। सुकसारी-तोता-मैना। मसि-स्याही।

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. उतर - ब्रज।
2. उतर - दैव भक्ति भाव।
3. उतर - 12

15.7 संदर्भित पुस्तकें

1. प्रकाश दीक्षित, तुलसीदास : वस्तु और शिल्प, सरस्वती पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, का. ना. प्र. सभा, वाराणसी।
3. चन्द्रबली पाण्डेय, तुलसीदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

15.8 सात्रिक प्रश्न

1. तुलसीदास की भक्ति भावना का स्वरूप स्पष्ट करें।
2. तुलसीदास की भक्ति की विशेषताओं का वर्णन करे।

*****

इकाई–16

तुलसीदास की समन्वय भावना

संरचना

16.1 भूमिका

16.2 उद्देश्य

16.3 तुलसीदास की समन्वय भावना

स्वयं आकलन प्रश्न

16.4 सारांश

16.5 कठिन शब्दावली

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

16.7 संदर्भित पुस्तकें

16.8 सात्रिक प्रश्न

16.1 भूमिका :

हिंदी साहित्य जगत में तुलसी अपने विराट व्यक्तित्व के साथ अपनी जिस दृष्टि को लेकर आये वह थी उनकी समन्वयवादी दृष्टि जिसके बल पर ही उन्होंने तद्‌युगीन समाज में फैली विसंगतियों और विषमताओं को ही दूर नहीं किया अपितु उनकी यह दृष्टि आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

16.2 उद्देश्य

1. तुलसीदास की दार्शिनमता का बोध।
2. तुलसीदास की समन्वय भाव की जानकारी।
3. तुलसीदास के काव्य में वर्ण्य विषय की जानकारी।

16.3 तुलसीदास की समन्वय भावना :

तुलसीदास भक्ति काल के श्रेष्ठ कवियों में से एक कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में समन्वय का मार्ग चयन किया है। समन्वय के मार्ग की चर्चा करने से पूर्व इस 'समन्वय' शब्द को समझ लें। समन्वय व्यापक अर्थ में संयोग अथवा पारस्पिरक संबंध के निर्वाह का द्योतक है। संकुचित अर्थ में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली बातों के आभासित विरोध का परिहार करके सामंजस्य स्थापित करना। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'समन्वय' का मतलब है कुछ झुकना और कुछ दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना समन्वय शब्द की व्युत्पति इस प्रकार कर सकते हैं। सम् + अन्वय अर्थात् अलग-अलग को समान करना।

अत: इसके अनेक अर्थ हो सकते हैं। संयोग, मिलन, मिलाप, विरोध का अभाव, कार्यकारण नि का प्रवाह या निर्वाह। लेकिन 'समन्वय' शब्द 'समाहार' शब्द के बहुत निकट पड़ता है। हिंदी के शब्दकोशों में द्वद्ध विहीनता, संतुलनमयता, अप्रतिद्वंद्धि आदि शब्द मिलते हैं। कार्ल मार्क्स ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार सृष्टि के उद्‌भव और विकास का मूलाध पर सघर्ष है। सृष्टि में विरोधी प्रकृति और तत्वों के होने से उन संघर्ष अवश्यंमावी है, किंतु इसे विकास का मूलाधार कहना उचित नहीं है वास्तव में समन्वय ही उद्‌भव और विकास का आधार है। बीज को जब तक प्रकाश, जल, ऊष्मा का समन्वित रूप नहीं मिलता तब तक उसमें अंकुर का उदभव नहीं होता है। अंकुर का अनुकूल विकास भी तीनों की समन्वित वह उपलब्धि पर निर्भर है। भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति सभी में समन्वय का विशेष महत्व है तभी एक चित्रकार सरल था वक्र रेखाओं का अनुकूल समायोजन करता है। कविता के सृजन में भी तक, छंद, लय आदि का संमन्वय होता है।

भारत में विभिन्न प्रकार को संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ, परंतु वे घुल-मिल कर एक हो गई। तुलसी ने अपने युग की विसंगत और तनावी स्थिति को पहचाना और इसी समन्वय के सिद्धांत के बल पर उन पर जगत संतुलन बनाने का प्रयास किया। समन्वय करना मजाक का काम नहीं है वह सूक्ष्म अनुभव, अन्वेषण और गहन अनुशीलन का परिणाम है। तुलसी ने इस कठिन कार्य को किया उन्होंने व्यत्तिफ, कृतित्व और भत्तिफ का ही समन्वय नहीं किया अपितु सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर सभी पर उन्होंने अपनी समन्वयकारिणी दृष्टि रखी है जिनका कुछ बिदुओं में उल्लेख किया जा रहा है।

- **निर्गुण और सगुण ब्रह्म में समन्वय**

तत्कालीन समाज में निर्गुण और सगुण का विवाद व्याप्त था। तुलसी ने कहा कि वस्तुत: राम एक ही हैं। वे ही निर्गुण सगुण निराकार-साकार, अव्यक्त-व्यक्त, गुणातीत और गुणाश्रयी हैं। दोनों में कोई तात्विक विरोध नहीं है यह तो विश्वास की बात है वे कहते हैं-

अगुनहि सगुणहिं नहिं कछु भेदा।

गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥

इनके अनुसार ब्रह्म अव्यक्त (निर्गुण) है पर भक्त की पुकार पर सगुण रूप में आते हैं

जब जब होई धर्म की हानि बाढ़े असुर अधम अभिमानी।

तब तब प्रभु घरे विविध सरीरा हरहिं कृपा निधि सज्जनपीरा ॥

● **द्वैत और अद्वैतवाद में समन्वय**- तुलसी के समय द्वैतवाद (ईश्वर व जीव दो अलग-अलग हैं) और अद्वैतवाद (ईश्वर व हो जीव अलग-अलग नहीं है) इन दोनों सिद्धांतों के झगड़े को निपटाते हुए उन्होंने कहा ईश्वर व जीव एक ही है पर अलग अलग दिखते हैं, कारण है 'माया।' अत में माया के जाल से छूट जाने पर यह अंश जीव उस अंशी परमात्मा में समा जाता है।

● **अद्वैत और विशिष्टाद्वैतवाद में समन्वय :**

तुलसी रामानुजाचार्य के मतानुयायी थे। अत: वे विशिष्टा द्वैतवादी थे। उन्होंने जीव को उस अलख, अरूप का अंश माना है

ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेतन अमल सहज सुख व रासी॥

लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि जीव गुण-अवगुण का संगम है, माया से आविष्ट है लेकिन ब्रह्म गुणातीत है। अत: वह विशिष्ट है वह उस अंश का अंशी है।

● **विद्या और अविद्या माया में समन्वय** -

अद्वैतवादियों ने विद्या व अविद्या माया को एक ही माना पर तुलसी कहा दोनों राम से उत्पन्न हैं। विद्या माया सृजन करती है और अविद्या भ्रमजाल फैलाती है। श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी ही विद्या माया हैं, शक्ति रूपा है लेकिन कनन कामिनी, पापिनी माया अविद्या माया है-

जो माया सब जगहि नचाना।

● **जगत की सत्यता और असत्यता में समन्वय-**

शंकराचार्य के अनुसार 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' है लेकिन तुलसी कहा जगत मिथ्या है पर फिर भी सत्य है क्योंकि यह जगत 'सियाराममय' है-

सियाराम मंय सब जग जानी करौ प्रनाम जोरि जुग पानी।

● **ज्ञान और भक्ति में समन्वय**

भवबंधन के दो मूल कारण है - अज्ञान और अभक्ति इसलिए ज्ञान और भक्ति ही मुक्ति के साधन है। तुलसी के अनुसार दाना ही मार्गो से मुक्ति मिल सकती है और दोनों में कोई अंतर नहीं है-

भगतहिं ग्यानहिं नहीं कछु भेदा, उभय हरहिं भव संभव खेदा।

● **शैव और वैष्णूव में समन्वय-**

तुलसी ने अपने युग में फैले शैवों और वैष्णवों के विवाद को दूर करने के लिए राम के द्वारा शिव की और शिव के द्वारा राम की अराधना की है और इनमें विरोध करने वालों के लिए कहा है।

संकर प्रिय मम द्रोही शिव दोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास ॥

शिव द्रोही मम दास कहावा ते नर मोहि सपनेहू न पावा।

● ब्राह्मण और शूद्र में समन्वय–

तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था बहुत विकृत थी। ब्राह्मण समाज रूपी शरीर का सिर एवं शूद्र पैर कहे जाते थे। एक उच्चवर्ग था, एक निम्नवर्ग का। इस भेद को दूर करने के लिए तुलसी ने राम उच्च वर्ग का मिलन निषादराज, हनुमान, शबरी निम्न वर्ग से करवाया है।

● नर और नारायण में समन्वय

तुलसी के युग में नर और नारायण में अंतर था। तुलसी ने निर्गुण ब्रह्म को दशरथ पुत्र बनाया जो ब्रह्म होते हुए भी प्राकृत नर की भांति क्रिया करते हैं। उनके अनुसार नर–नारायण में अंतर नहीं है क्योंकि मनुष्य ही अपने कर्मों से नारायण बन जाता है और नारायण भत्तफों के लिए साधारणजन बन जाते हैं–

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

● राजा और प्रजा में समन्वय –

तुलसी के समयाकाल में राजा और प्रजा में वैमन्षय बलकता है क्योंकि वे शिक्षित वर्ग तक ही अपनी बात नहीं पहुंचाई अपितु आम जनता तक भी पहुंचाई।

● भाग्य और पुरुषार्थ में समन्वय –

तद्युगीन समाज में ऐसा वर्ग भी था जो ब्रह्म को ही सब कुछ मान निठल्ले रहना चाहता था, वे भाग्याश्रित थे। लेकिन तुलसी ने कहा श्रम और कर्म द्वारा ही भाग्य बनता है–

करम प्रधान विश्व रचि राख, जो जस करै तैसा फल चाख।

● गृहस्थ और वैराग्य में समन्वय

तुलसी के समय वैरागियों की भीड़ जुट गई थी। निर्गुण ब्रह्म के प्रभाव के कारण सभी साधु संत बन गए थे। ऐसे में तुलसी ने गृहस्थ धर्म में ही राम की भक्ति सुलभ कराई। भक्ति के लिए किसी वैराग्य की आवश्यकता नहीं है–

जो जन रूखे विषय रस चिकने राम सनेह।
ते जन प्रिय राम को कानन बसे की गेह ॥
धर कीन्हे घर जात है घर छाड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच में राम प्रेम पुर छाई॥

● पारिवारिक संबंधों में समन्वय – तुलसी ने राम जैसे आदर्श के माध्यम से मानवीय भावनाओं की उच्चता प्रकट करने का प्रयास किया है। इसलिए माता–पुत्र, पिता–पुत्र, भाई–भाई, पति–पत्नी, सेवक–स्वामी आदि के आदर्श संबंध दिखाए है।

● पात्र संबंधों में समन्वय

पात्रों की तीन कोटि मानी गई है। सत्व गुणी, रजत्व गुणी और तमत्व गुणी। तुलसी ने भेदभाव से रहित तीनों रूपों के पात्रों को समन्वित किया है। राजा, देवी–देवता आदि सत्वगुणी पात्र हैं। गृहस्थ जीवन वाले रजत्व गुणी और रावण, निशाचर आदि तमत्व गुणी पात्र है। तुलसी ने सभी को अपने काव्य में स्थान दिया है।

● शक्ति, शील और सौन्दर्य में समन्वय –

शक्ति, शील और सौन्दर्य तीनों विरोधी तत्व है फिर भी तुलसी ने राम के चरित्र को इन्हीं तीनों गुणों से युक्त दिखाकर समन्वय की चेष्टा की है और इन्हीं तीनों गुणों के कारण साधारण पुरुष भी पुरुषोतम की संज्ञा प्राप्त करता है।

● वैधी और रामानुगा भक्ति में समन्वय

भक्ति के क्षेत्र में भक्ति के मुख्यत: दो भेद है वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। विधि विधानों के आधार पर की जाने वाली भक्ति वैधी भक्ति कहलाती है और रागानुगा भक्ति प्रेम पर आधारित होती है। तुलसी ने अपने काव्य में दोनों को स्थान दिया क्योंकि पहली भक्ति आम जनता के लिए तथा दूसरी भक्ति ज्ञान से। ऊपर उठी आत्माओं के लिए उपादेय थी।

● वर्णाश्रम धर्म और मानवतावाद में समन्वय

तुलसी अपने युग में मानव मूल्यों के ह्यास और वर्ण-आश्रम के विखण्डन को देख चिंतित थे। उनके मन में जन सामान्य के हित की कामना थी। वे समाज में सत्य, अहिंसा कर्मठता, प्रेम और सहिष्णुता के द्वारा, मानवतावाद की स्थापना चाहते थे अत: उन्होंने परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम अधम अधि माई। कहकर वर्णाश्रम धर्म और मानवतावाद में समन्वय करने का प्रयास किया।

● व्यक्ति और समाज में समन्वय-

व्यक्ति द्वारा समाज का निर्माण होता है और समाज में ही व्यक्ति का। अत: दोनों का पूर्वापर सबंध होता है। लेकिन तुलसी ने व्यक्ति और समाज के आदर्श संबंध का वर्णन किया। तुलसी ने अपने काव्य का निर्माण किया वह स्वांत सुखाय थी लेकिन व्यक्तिक नहीं थी, दूसरी तरफ तुलसी ने कहा कि मेरा काव्य प्राकृतजन के लिए नहीं है। लेकिन उनका काव्य था आम जन के लिए ही। अत: उन्होंने व्यक्ति और समाज का समन्वय किया।

● काव्य संबंधी विचारों में समन्वय

तुलसी ने रचनाओं में भी समन्वय करने की चेष्टा की है जहां रामचरितमानस जैसा महाकाव्य लिखा वहीं पार्वती मंगल, जानकी मंगल जैसे खंडकाव्य और गीतावली और दोहावली जैसे मुक्तक काव्य लिखे। उन्होंने आदिकालीन भाटों की छप्पय पद्धति, सूफियों की चौपाइयां, सती के दोहों और पदों को भी अपनाया। भाषा में संस्कृत, ब्रज, अकी सभी को बराबर स्थान दिया है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. तुलसीदास के गुरु का क्या नाम था ?
2. तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य का क्या नाम है ?
3. तुलसीदास की प्रमुख चार रचनाओं के नाम लिखो।

16.4 सारांश :

निष्कर्षत: तुलसी की समन्वय दृष्टि व्यापक रही है जोकि उनक व्यक्तिगत अनुभव की देन है। इसलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। इसी विशेषता के कारण इन्हें लोकनायक के साथ साथ, समन्वयवादी की भी संज्ञा की जाती है। श्री द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में उन्होंने जीवन और जगत के अपने समन्वयवादी विचार द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त विषमता विद्वेष, वैमनस्य, कटुता आदि को दूर करके पारस्परिक स्नेह, सौहार्द, समता, सहानुभूति आदि का प्रचार किया। वस्तुत: अपनी समन्वय भावना के बल पर तुलसी लोकमंगल के कवि माने जाते हैं।

16.5 कठिन शब्दावली :

दारून-भयंकर। भृगपति-परशुराम। लाखेड़-देखा। ताकेउ - देख रहे हैं। आयसु-आज्ञा। चितनू - देखकर। गिरी अलिनि-वाणी रूपी भ्रमरी। मोर पनु-मेरा प्रण। व्यालहिं-वाणी रूपी भ्रमरी।

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर :

1. उत्तर - नरहरि दास
2. उतर - रामचरितमानस
3. उतर - रामचरितमानस, विनयपत्रिका दोहावली, गीतावली

16.7 संदर्भित पुस्तकें :

1. गोस्वामी तुलसीदास - रामचंद्र शुक्ल
2. तुलसीदास- डॉ. उदयभानु सिंह
3. तुलसी दास चिंतन- राम प्रतिपाल सिंह
4. तुलसी का काव्यादर्श- सुरेशचन्द्र गुप्त

16.8 सात्रिक प्रश्न :

1. तुलसी की समन्वय भावना पर एक आलोचनात्मक निबंध लिखे।
2. तुलसीदास के काव्य-सौंदर्य की विवेचना कीजिए।

*****

इकाई–17

तुलसीदास : व्याख्या भाग

संरचना

17.1 भूमिका

17.2 उद्देश्य

17.3 तुलसीदास - रामचरितमानस-उत्तरकाण्ड व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

17.4 सारांश

17.5 कठिन शब्दावली

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

17.7 संदर्भित पुस्तकें

17.8 सात्रिक प्रश्न

17.1 भूमिका :

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल की सगुण काव्य धारा के प्रसिद्ध कवि सूरदास और तुलसीदास माने जाते हैं। सूरदास ने भगवान श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन किया है। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया है। वहीं दूसरी तरफ तुलसीदास ने भगवान श्रीराम को अपने काव्य का आधार बनाया है। उन्होंने भगवान श्रीराम को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। सूरदास ने भगवान श्रीकृष्ण को लोकरंजक के रूप में प्रस्तुत किया है। भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि सूरदास और तुलसीदास ने सगुण काव्य धारा में भारतीय सस्कृति का संरक्षण करते हुए ईश्वर को मानव रूप में धरती में विविध लीलाओ को प्रदर्शित करते हुए स्थापित किया है।

17.2 उद्देश्य

1. तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जानने में सक्षम होंगे।
2. रामचरितमानस के उद्‌देश्यों को स्पष्ट/व्यक्त करने में समर्थ होंगे।
3. रामचरितमानस–उत्तरकाण्ड की व्याख्या सहित अध्ययन करने में समर्थ होंगे।
4. रामचरितमानस–उत्तरकाण्ड के उद्देश्यों को स्पष्ट / व्यक्त करने में समर्थ होंगे।

17.3 तुलसीदास रामचरितमानस उत्तरकाण्ड व्याख्या भाग

पद- रहेउ एक दिन अवधि आधारा.......।

प्रस्तुतीकरण - रहउ एक दिन अवधि...... अधम कवने जग मोहि समाना।

शब्दार्थ - भण्ड–हो गया। पदारविंद चरण रूपी कमलों के। चीन्हा–जान लिया। कल्प सत्कोरी–सी करोड़ कल्प। कवन–कौन। मृदुल–कोमल।

प्रसंग : प्रस्तुत पद 'मध्यकालीन काव्य' पुस्तक में संकलित कवि श्री तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से लिया गया है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में कवि तुलसीदास ने भरत की मनोदशा का चित्रण किया है। पद में भरत की प्रभू श्रीराम के प्रति अगाध स्नहें और आत्मग्लानि का वर्णन कहते हुए कहते है।

व्याख्या- तुलसीदास जी कहते है कि प्रभू श्री राम जी के बनवास से लौटने की अविध्केवल एक दिन शेष रह गई है। यह सोचते भरत के मन में आपार दुख हो रहा है कि क्या कारण नाथ अभी तक नहीं आए? ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभू ने मुझे कुटिल जानकर मुझे भूला दिया है। है लक्ष्मण तुम बड़े भाग्यवान हो कि तुम प्रभू श्री राम के चरण रूपी कमलों की सेवा करने का अवसर मिला। प्रभू ने मुझे कपटी और कुटिल मान लिया है इसलिए वे मुझे साथ नहीं ले गए। यदि प्रभू मेरी करनी पर ध्यान दे तो सौ करोड़ कल्प तक भी मेरा उद्धार नहीं हो सकता। प्रभू अपने भक्त के अवगुण नहीं देखते। वे दीनबनु है उनका स्वभाव मृदुल है इसलिए मेरे हृदय में पक्का विश्वास है कि प्रभू श्री रामचन्द्र मुझे अवश्य मिलेंगे क्योकि मुझे शकुन बड़े शुभ हो रहे हैं। परन्तु अवधि बीत जाने पर यदि प्राण रह गए तो संसार में मुझस नीच कोई व्यक्ति नहीं है।

विशेष- 1. भरत का प्रभू श्री राम के प्रति अगाध स्नेह का चित्रण किया गया है।

2. प्रभू श्री राम की भक्त के प्रति दयालुता का चित्रण।
3. रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अलकार का वर्णन।
4. तुलसी की भगवान राम के प्रति भक्ति भावना का चित्रण।

पद- देखत हनुमान अतिहरषेउ। पुलक गत लोचन जतु बरषेउ।।

प्रस्तुतीकरण : देखत हनुमान अति हरषेउ....परम पुनीत सदगुन सिंध सो।।

शब्दार्थ- हरषेउ-हर्षित हुए। पुलक-पुलकित। वरषेउ-बरसने लगे। मुहँ में। पाती-पंक्तियां। किंकर-दास। भेंटेउ-गले लगाकर मिलना। स्रवत - बहने लगा। प्रसंग- पूर्ववत।

सन्दर्भ- प्रस्तुत पद में हनुमान अयोध्या में आकर भरत को प्रभू श्री राम के आगमन की सूचना देता और भरत बहुत खुश हो जाते है। भरत के हृदय की व्याकुलता का चित्रण करते हुए तुलसीदास कहते है कि-

व्याख्या- भरत को देखते ही हनुमान अत्यन्त हर्षित हो गए। उनका मन पुलकित होने लगा और आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। मन में बहुत प्रकार के सुख मानकर वे उनके लिए अमृत समानवाणी में बोले-जिनके विरह में दिन-रात सोचते रहते हैं तथा जिनके गुण का जाप निरंतर करते रहते हैं, वे रघुकुल के तिलक सजजनों के रक्षक वे सकुशल आ रहे हैं। उन्होंने रण में शत्रु को जीतकर सीता जी और अनुज लक्ष्मण सहित अपने घर पधर रहे हैं और देवता उनके आगमन में सुन्दर यश गा रहे हैं। ये वचन सुनते ही भरत उसी प्रकार सारे दु:ख भूल गए जिस प्रकार प्यासा अमृत पीकर प्यास के दुख को भूल जाता है। हनुमान के मुख से भरत ने प्रभू श्रीराम के आगमन का समाचार सुनते ही भरत हनुमान से पूछते है कि हे तात! तुम कौन हो और कहां से आए हो, जो तुमने परम प्रिय और आनन्द देने वाले वचन सुनाए है। हनुमान ने कहा हे सज्जन। सुनों, मैं पवन पुत्र हनुमान हूँ, और जाति से वानर हूँ। मैं दीबन्धु प्रभू श्रीराम का सेवक हूँ। यह सुनते ही भरत ने उठकर हनुमान को गले लगा लिया। हृदय लते ही प्रेमभाव हृदय में समा नहीं सका, अधु के रूप में बहने लगा। भरत ने कहा कि हे हनुमान! तुम्हारे दर्शन से मेरे सारे दु:ख समाप्त हो गए। तुम्हारे रूप में आज प्रभू श्री राम मिल। भरत ने बार-बार उनकी कुशलता पूछी और कहा है भाई। इस शुभ समाचार के बदले में क्या दू? इस संदेश के बराबर संसार में कुछ भी नहीं है मैंने विचार कर देख लिया है। तात! मैं तुमसे किसी प्रकार भी ऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभू का चरित्र सुनाओं। तब हनुमान ने भरत के चरणों में मस्तक नवाया और रघुनाथ की सारी कथा सुनाई। फिर भरत ने पूछा हे हनुमान! कहो कृपालु स्वामी श्री राम कभी मुझे अपने दास की तरह याद करते हैं। श्रीराम क्या कभी मुझे अपने सखा की भांति मुझे स्मरण करते है। भरत के अत्यन्त विनम्र सुनकर हनुमान का शरीर पुलकित हो गया और उनके चरणों पर गिर पड़े और मन में लगे कि जो चराचर के स्वामी हैं, वे रघुवीर अपने मुख से जिनके गुणों का वर्णन करते भरत जी ऐसे विनम्र, परम पवित्र तथा सद्‌गुणों के समुद्र क्यों नहीं। हनुमान ने कहा हे नाथ! आप श्री राम को प्राणों के समान प्रिय है। हे तात! मेरे वचन सत्य है। यह सुनकर भरत बार-बार मिलते हैं और हृदय से हर्ष समाता नहीं। फिर भरत के चरणों में सिर नवाकर हनुमान तुरंत प्रभू श्री राम के पास लौट गए तथा जाकर उन्होने कुशल कही। तब प्रभू हर्षित होकर पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या की ओर चल दिए।

विशेष:

1. भरत का प्रभू श्रीराम के प्रति अनन्य भक्ति भावना एवं भ्रातृ प्रेम का चित्रण।
2. तुलसी की भक्ति भावना का चित्रण।
3. उपमा, रूपक, अनुप्रास, अलंकार का प्रयोग, 4. चौपाई, दोहा एवं सोरठा छंद का प्रयोग।

पद- हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सव गुरहिं सुनाए ।।

शब्दार्थ: पुनि-फिर से। मंदिर राजमहल। धई-दौड़ी। अरु-और। रोचन-गोरोचन। हेमथार-सोने की थाली। भाभिनी-स्त्रियां। सिधुरगामिनी-हाथिनी की सी चाल।

प्रस्तुत- पूर्ववत

सन्दर्भ - प्रस्तुत पद प्रभू श्री राम का अयोध्या वापस आने की खुशी, अयोध्यावासियों की मनोदशा का चित्रण किया।

व्याख्या- तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभू श्रीराम ने वनवास से अयोध्या आने का समाचार सुनकर भरत हर्षित होकर अयोध्यापुरी में आए और उन्होंने गुरुजी को सब समाचार सुनाए। राजमहल पर यह खबर सुना दी कि प्रभू श्री राम कुशलतापूर्वक नगर में आ रहे हैं। यह समाचार सुनते ही सभी माताएं उठकर दौड़ी। भरत ने सभी कुशल कहकर सबको समझाया। जब नगरवासी ने समाचार सुना तो स्त्री-पुरुष सभी खुश होकर दौड़े। श्रीराम के स्वागत के लिए दही, दूध, गोरोचन, फल, फूल और नए-नए तुलसीदल आदि वस्तुए सोने की पालियों में भर-भरकर हथिनी की सी चाल वाली स्त्रियां उन्हें लेकर गाती हुई चली। जो जैसे हैं, वे वैसे ही उठकर दौड़ते हैं। वे बालकों और बूढो के देर होने के डर से अपने साथ नहीं लाते। वे एक दूसरे से पूछते हैं-हे भाई! तुमने दयालु श्री रघुनाथ जी को देखा है? प्रभू को आते जानकर अवधपुरी सम्पूर्ण शोभा की खान हो गई है। तीनों प्रकार की सुंदर हवा बहने लगी। सरयू नदी अत्यंत निर्मल जलवापी हो गई। गुरु वशिष्ट जी, कुटुबी, छोटे भाई शत्रुघ्न और ब्रह्मणों के समूह के साथ हर्षित होकर भरत अत्यंत प्रेमपूर्वक मन से कृपा के धाम श्रीराम जी ने सामने चले। बहुत-सी स्त्रियां अटारियों पर चढ़कर आकाश में पुष्पक विमान देख रही है और उसे देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर में सुंदर मंगल गीत गा रही हैं। श्री रघुनाथ जी पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान हैं तथा अवधपुरी समुद्र है जो उस पूर्ण चन्द्रमा को देखकर हर्षित हो रहा है और कोलाहल करता हुआ बढ़ रहा है। स्त्रियां उसकी तरंगों के समान लगती है।

विशेष:

1. भगवान राम के प्रति अयोध्यावासियों के हृदय में आगाध श्रद्धा का वर्णन।
2. भगवान राम का अयोध्यापुरी में आने से अयोध्या में चहल-पहल का चित्रण।
3. उत्प्रेक्षा, उपमा और अनुप्रास अलंकारों का चित्रण।

स्वयं आंकलन के लिए प्रश्न :

1. तुलसीदास किस युग के कवि हैं ?
2. तुलसीदास की प्रसिद्ध रचना का नाम बताओ।

3 तुलसीदास के गुरू का क्या नाम था ?

4. तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य का क्या नाम है ?

17.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि सूरदास और तुलसीदास भक्तिकाल के अंतर्गत सगुण भक्ति काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत को आलोकित किया है। भ्रमरगीत परंपरा का आरंभ 'श्रीमद्भागवत' से होता है जो आधुनिक काल तक चली आ रही है। सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में मानव हृदय के सुक्ष्मातिसुक्ष्म भावों का जैसा वर्णन किया है, वैसा वर्णन आज तक कोई भी नहीं कर पाया है। यद्यपि नंददास के भ्रमरगीत में कुछ विशिष्टता दिखाई देती है। परंतु सूरदास के भ्रमरगीत के समक्ष वह भी फीका सा दिखाई देता है। सूरदास के भ्रमरगीत में विरह व प्रेम दिखाई देता है तो उसमें व्यंग्य व उपालम्भ का मिश्रण भी है तो इसके साथ ही इसमें भक्ति का समावेश भी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भ्रमरगीत को सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी व वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश का है।

17.5 कठिन शब्दावली

वृषभानु-राधा के पिता। सकुल सुधि-सारा हाल-चाल। नियार-अलग। सचुपाइयो-सुख प्राप्त करना। वयक्रम-आयु में। सघन बनन-घने जंगल। थाती-धरोहर । गोचारन-गायों को चराने के लिए। काल्हि-कुल। धाए-भाग्य। उपंगसुत-उद्वव। अंकलाए-गले लगा लिया। जुवतनि-युवतियां। पछिताने-पश्चाताप करना। बिसरत-भूलता। पूत जेंव-बेटे भोजन कर लो। व्याप्त आपन नेम-योग मार्ग के नियम याद आ गए। जदुपति-श्रीकृष्ण। रसरीति-प्रेम की पद्वति। टारति-दूर होना। मिथ्या-जात-माया के कारण उत्पन्न, भ्रम रूप। अकुलात-व्याकुल होना। प्लानो-पलायन करो, प्रस्थान करो। भासति-डूबती

है। पठावत–भेज रहा हूं। वेगि–शीघ्र। बल्लभिन–गोपियां। दाहु–वियोग से उत्पन्न जलन पीड़ा। अजौ लौ–आज तक। तिय–नारियां। तूलमय–रूई के समान। पयप्याय–दूध पिलाकर। धूमरि–काली। धौरी–श्वेत। छैया–धरोष्ण अर्थात थन से निकलने वाली दूध की धारा। वैदेही–सीता जी। सकल भुवन–समस्त संसार। लखि–देखकर। मराल–हंस। भृंग–भौरें। बंदि–वंदना करके। भेषज–औषधि। रजनिचर–राक्षस।

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. उत्तर – भक्ति काल की सगुण काव्याधारा
2. उत्तर – रामचरितमानस।
3. उत्तर – नरहरि दास।
4. उत्तर – रामचरितमानस।

17.7 संदर्भित पुस्तकें

1. गोस्वामी तुलसीदास – श्याम सुन्दर दास।
2. तुलसीदास – चन्द्रवती पाण्डेय।
3. गोस्वामी तुलसीदास – रामचंद्र शुक्ल।
4. तुलसीदास – माता प्रसाद गुप्त।

17.8 सात्रिक प्रश्न

1. सिद्व कीजिए कि 'रामचरितमानस' एक उत्तम कोटि का महाकाव्य है।
2. तुलसीदास की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
3. रामचरितमानस के भाषा–सौन्दर्य की विवेचना कीजिए।

*****

इकाई–18

मलिक मुहम्मद जायसी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

18.1 भूमिका

18.2 उद्देश्य

18.3 मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन परिचय

स्वयं आकलन के प्रश्न

18.4 सारांश

18.5 कठिन शब्दावली

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

18.7 संदर्भित पुस्तकें

18.8 सात्रिक प्रश्न

18.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के निर्गुण काव्य धारा के प्रेम मार्गी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने हिन्दी साहित्य के लिए प्रसिद्ध ग्रंथ 'पद्मावत' की रचना की। उन्होंने इस ग्रंथ के माध्यम से भारतीय इतिहास तथा भारतीय लोक-कथाओं के माध्यम से अलौकिक सता की स्थापना की । इसलिए इसके काव्य को अतिश्योक्ति का काव्य कहा जाता है।

18.2 उद्देश्य

1. जायसी के व्यक्तित्व की जानकारी।
2. जायसी के साहित्य की जानकारी।
3. जायसी द्वारा कृत पद्मावत की जानकारी।

18.3 जीवन परिचय

जायसी की एक छोटी सी 'आखिरी पुस्तक' के नाम से फारसी अक्षरों में छपी है। यह सन् 936 हिजरी में (सन् 1528 ई. के लगभग) बाबर के समय में लिखी गई थी। इसमें बाबर बादशाह की प्रशंसा है। इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के संबंध में लिखा है-

भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।।

इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। 'नव सदी' ही पाठ मानें तो जन्मकाल 900 हिजरी (सन् 1492 के लगभग) ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म के 30 वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे। जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है पदमावत जिसका निर्माण काल कवि ने इस प्रकार दिया है-

सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा ।।

इसका अर्थ होता है पदमावत की कथा के प्रारंभिक वचन (अरंभ बैन कवि ने सन् 927 हिजरी) सन् 1520 ई. के लगभग में कहे थे। पर ग्रंथारंभ में कवि ने मनसवी की रूढ़ि के अनुसार 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके शासनकाल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात् सन् 1540 ई. से हुआ था। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो 1520 ई. में ही बनाए थे, पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीठे शेरशाह के समय में पूरा किया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया 'अहा' (= था) और 'कहा' का प्रयोग किया है। जान पड़ता है कि 'पदमावत' की कथा को लेकर थोड़े से पद्य जायसी ने रचे थे। उसके पीछे वे जायस छोड़कर बहुत दिनों तक इधर-उधर रहे। अंत में जब वे जायस में आकर रहने लगे तब उन्होंने इस ग्रंथ को उठाया और पूरा किया। इस बात का संकेत इन पंक्तियों में पाया जाता है-

जायस नगर धरम् अस्थानू। तहां ऐ कवि कीन्ह बखानू।।

'तहाँ आइ' से पं. सुधाकर और डॉ. ग्रियर्सन ने यह अनुमान किया था कि मलिक मुहम्मद किसी और जगह से आकर जायस में बसे थे। पर यह ठीक नहीं। जायसवाले ऐसा नहीं कहते। उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस हकी के रहने वाले थे। उनके घर का स्थान अब तक लोग वहाँ के कंचाने मुहल्ले में बताते हैं। 'पदमावत' में कवि ने अपने चार दोस्तों के नाम लिये हैं-यूसुफ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख। ये चारों जायस ही के थे। सलोने मियाँ के संबंध में अब तक जायस में यह जनश्रुति चली आती है कि वे बड़े बलवान थे और एक बार हाथी से लड़ गए थे। इन चारों में से दो एक के खानदान अब तक हैं। जायसी का वंश नहीं चला, पर उनके भाई के खानदान में एक साहब मौजूद हैं जिनके पास वंशवृक्ष भी है। यह वंशवृक्ष कुछ गड़बड़ सा है।

जायसी कुरूप और काने थे। कुछ लोगों के अनुसार वे जन्म से ही ऐसे थे पर अधिकतर लोगों का कहना है कि शीतला या अर्धांग रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। अपने काने होने का उल्लेख कवि ने आप ही इस प्रकार किया है– 'एक नयन कवि मुहम्मद गुनी'। उनकी दाहिनी आँख फूटी थी या बायीं, इसका उत्तर शायद इस दोहे से मिले–

मुहम्मद बांई दिसि तजा, एक सरवन एक आंखि।

इससे अनुमान होता है कि बायें कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था। जायस में प्रसिद्ध है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गए। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देख हँस पड़ा। उन्होंने अत्यंत शांत भाव से पूछा– 'मोहिका हससि, कि कोहरहि?' अर्थात् तू मुझ पर हँसा या उस कुम्हार (गढ़ने वाले ईश्वर) पर? इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा माँगी। कुछ लोग कहते हैं कि वे शेरशाह के दरबार में नहीं गए थे, शेरशाह ही उनका नाम सुनकर उनके पास आया था।

मलिक मुहम्मद एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वरभक्त और साधु प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों में होते तब अपना खाना वहीं मँगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी न खाते; जो आसपास दिखाई पड़ता उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर–उधर कोई न दिखाई पड़ा। बहुत देर तक आसरा देखते–देखते अंत में एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह से उसे अपने साथ खाने को बिठाया और एक ही बरतन में उसके साथ भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था। कुछ थोड़ा सा मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिए उठाया पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा, 'इसे मैं खाऊँगा, आप साफ हिस्सा खाइए' पर जायसी झट से उसे खा गए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरांत जायसी की मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत लोग अखरावट के इस दोहे में बताते हैं–

बुंदहिं समुद्र समान, यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहिं आपु महँ ॥

कहते हैं कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दबकर, या ऐसी ही किसी और दुर्घटना से मर गए। तब से जायसी संसार से और भी अधिक विरक्त हो गए और कुछ दिनों में घरबार छोड़कर इधर–उधर फकीर होकर घूमने लगे। वे अपने समय के एक सिद्ध फकीर माने जाते थे और चारों ओर उनका बड़ा मान था। अमेठी के राजा रामसिंह उनपर बड़ी श्रद्धा रखते थे। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से कुछ दूर एक घने जंगल में रहा करते थे। कहते हैं कि उनकी मृत्यु विचित्र ढंग से हुई। जब उनका अंतिम समय निकट आया तब उन्होंने अमेठी के राजा से कह दिया कि में किसी शिकारी की गोली खाकर मरूंगा। इस पर अमेठी के राजा ने आस–पास के जंगलों में शिकार की मनाही कर दी। जिस जंगल में जायसी रहते थे उसमें एक दिन एक शिकारी को एक बड़ा भारी बाघ दिखाई पड़ा। उसने डरकर उस पर गोली छोड़ दी। पास जाकर देखा तो बाघ के स्थान पर जायसी मरे पड़े थे। कहते हैं कि जायसी कभी–कभी योगवल से इस प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे।

काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने, जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त में मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्युकाल रज्जब 949 हिजरी (सन् 1542 ई.) दिया है। यह काल कहाँ तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता। इसे ठीक मानने पर जायसी दीर्घायु नहीं ठहरते। उनका परलोकवास 49 वर्ष से भी कम अवस्था में सिद्ध होता है पर जायसी ने 'पदमावत' के उपसंहार में वृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वतः अनुभूत सा जान पड़ता है।

जायसी की कन अमेठी के राजा के वर्तमान कोट में पौन मील के लगभग है। यह वर्तमान कोट जायसी के मरने के बहुत पीछे बना है। अमेठी के राजाओं का पुराना कोट जायसी की कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। अतः यह प्रवाद कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनकी कब्र बनाई, निराधार है।

मलिक मुहम्मद, निजामुद्दीन औलिया की शिष्यपरंपरा में थे। इस परंपरा की दो शाखाएँ हुई-एक मानिकपुर, कालपी आदि की, दूसरी जायस की। पहली शाखा के पीरों की परंपरा जायसी ने बहुत दूर तक दी है। पर जायसवाली शाखा की पूरी परंपरा उन्होंने नहीं दी है; अपने पीर या दीक्षागुरु सैयद अशरफ जहाँगीर तथा उनके पुत्र पौत्रों का ही उल्लेख किया है। सूफी लोग निजामुद्दीन औलिया की मानिकपुर कालपीवाली शिष्य परंप्रा इस प्रकार बतलाते हैं-

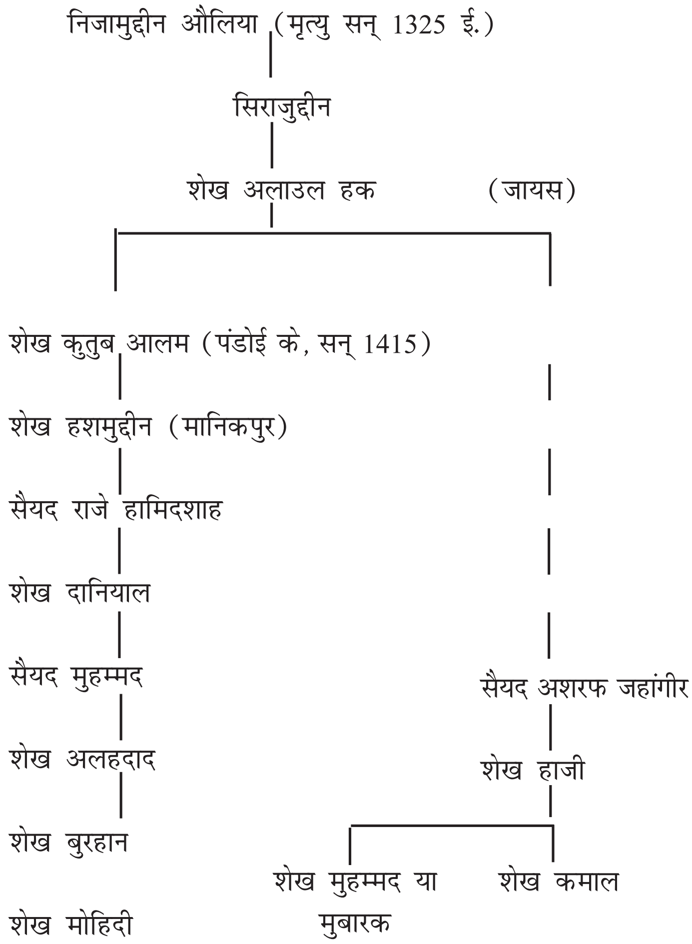

पदमावत और अखरावट दोनों में जायसी ने मानिकपुर कालपीवाली गुरुपरंपरा का उल्लेख विस्तार से किया है। इसमें डॉ. ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को ही उनका दीक्षा गुरु माना है। गुरुवंदना से इस बात का ठीक-ठाक निश्चय नहीं होता कि वे मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस के सैयद अशरफ के। पदमावत में दोनों पीरों का उल्लेख इस प्रकार है-

सैयद असरफ पीर पियारा। जेइ मोहिं पंथ दीन्ह उजियारा ॥

गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा। चले उताइल जेहि कर खेवा।

अखरावट में इन दोनों की चर्चा इस प्रकार है-

कही सरीअत चिस्ती, पीरू। उधरी असरफ औ जहँगीरू ॥

पा पाएउँ गुरु मोहिदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा ॥

'आखिरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ जहाँगीर का ही उल्लेख है। 'पीर' शब्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद अशरफ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का बंदा कहा है। इससे हमारा अनुमान है कि उनके दीक्षागुरु तो थे सैयद अशरफ पर पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की भी सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायसवाले तो सैयद अशरफ के पोते मुबारकशाह बोदले को उनका पीर बताते हैं, पर यह ठीक नहीं जँचता।

सूफी मुसलमान फकीरों के सिवा कई संप्रदायों (जैसे, गोरखपंथी, रसायनी, वेदांती) के हिंदू साधुओं से भी उनका बहुत सत्संग रहा, जिनसे उन्होंने बहुत सी बातों की जानकारी प्राप्त की। हठयोग, वेदांत, रसायन आदि की बहुत सी बातों का सन्निवेश उनकी रचना में मिलता है। हठयोग में मानी हुई इला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की ही चर्चा उन्होंने नहीं की है बल्कि सुषुम्ना नाड़ी में मस्तिष्क, नाभिचक्र (कुंडलिनी), हत्कमल और दशमद्वार (ब्रह्मरंध्र) का भी बार-बार उल्लेख किया है। योगी ब्रह्म की अनुभूति के लिए कुंडलिनी को जगाकर ब्रह्मद्वार तक पहुँचाने का यत्न करता है। उसकी इस साधना में अनेक अंतराय (विघ्न) होते हैं। जायसी ने योग के इस निरूपण में अपने इसलाम की कथा का भी विचित्र मिश्रण किया है। अंतराय के स्थान पर उन्होंने शैतान को रखा है और उसे 'नारद' नाम दिया है। यही नारद दशमद्वार का पहरेदार है और काम, क्रोध आदि इसके सिपाही हैं। यही साधकों को बहकाया करता है (दे. अखरावट)। कवि ने नारद को झगड़ा लगाने वाला सुनकर ही शायद शैतान बनाया है। इसी प्रकार 'पदमावत' में रसायनियों की बहुत सी बातें आई हैं। 'जोड़ा करना' आदि उनके कुछ पारिभाषिक शब्द भी पाए जाते हैं। गोरखपंथियों की तो जायसी ने बहुत सी बातें रखी हैं। सिंहलद्वीप में पद्मावती स्त्रियों का होना और योगियों का सिद्ध होने के लिए वहाँ जाना उन्हीं की कथाओं के अनुसार है। इन सब बातों से पता चलता है कि जायसी साधारण मुसलमान फकीरों के समान नहीं थे। वे सच्चे जिज्ञासु थे और हर एक मत के साधु-महात्माओं से मिलते-जुलते रहते थे और उनकी बातें सुना करते थे। सूफी तो वे थे ही।

इस उदार सारग्राहिणी प्रवृत्ति के साथ ही साथ उन्हें अपने इसलाम धर्म और पैगंबर पर भी पूरी आस्था थी, यद्यपि करबीरदास के समान उन्होंने भी उदारतापूर्वक ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों का होना तत्त्वत: स्वीकार किया है-

विधिना के मारग हैं लेते। सरग नखत, तन रोवाँ जेते ॥

पर इन असंख्य मार्गों के होते हुए भी मुहम्मद साहब के मार्ग पर अपनी श्रद्धा प्रकट की है-

तिन्ह महं पंथ कहीं भल गाई। जेहि दूनीं जग छाज बड़ाई ॥

सो बड़ पंच मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा ॥

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे, पर कबीरदास के समान अपना एक 'निराला पंथ' निकालने का हौसला उन्होंने कभी न किया। जिस मिल्लत या समाज में उनका जन्म हुआ उसके प्रति अपने विशेष कर्तव्यों के पालन के साथ-साथ वे सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुयायी थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण देन्य उनमें पूरा-पूरा था। कबीरदास के समान उन्होंने अपने को सबसे अधिक पहुँचा हुआ कहीं नहीं कहा है। कबीर ने तो यहाँ तक कह डाला कि इस चादर को सुर, नर, मुनि सबने ओढ़कर मैली किया, पर मैंने 'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया' इस प्रकार की गर्वोक्तियों से जायसी बहुत दूर थे। उनके भगवत्प्रेमपूर्ण मानस में अहंकार के लिए कहीं जगह न थी। उनका औदार्य वह प्रच्छन्न औद्धत्य न था जो किसी धर्म के चिढ़ाने के काम में आ सके। उनकी वह उदारता ऐसी थी जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का महत्त्व स्वीकार करने की क्षमता उनमें थी। वीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था, तभी 'पदमावत' ऐसा चरितकाव्य लिखने की उत्कंठा उन्हें हुई। अपने को सर्वज्ञ मानकर पंडितों और विद्वानों की निंदा और उपहास करने की प्रवृत्ति उनमें न थी। वे जो कुछ थोड़ा-बहुत जानते थे उसे पंडितों का प्रसाद मानते थे-

हाँ पंडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥

यद्यपि कबीरदास की और उनकी प्रवृत्ति में बहुत भेद था–कबीर विधिविरोधी और वे विधि पर आस्था रखने वाले, कबीर लोकव्यवस्था का तिरस्कार करने वाले थे औ वे सम्मान करने वाले–पर कबीर को वे बड़ा साधक मानते थे, जैसा कि इन चौपाइय से प्रकट होता है–

ना–नारद तब रोई पुकारा। एक जोलाहे सीं मैं हारा ॥

प्रेम तंतु निति ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई॥

जायसी को सिद्ध योगी मानकर बहुत से लोग उनके शिष्य हुए। कहते हैं पदमावत के कई जंशों को वे गाते फिरते थे और चेले लोग भी साथ–साथ गाते चलते थे। परंपरा से प्रसिद्ध है कि एक चेला अमेठी (अवध) में जाकर उनका नागमती बारहमासा गा–गाकर घर–घर भीख माँगा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने बारहमासे को सुना। उन्हें वह बहुत अच्छा लगा, विशेषत: उसका यह अंश–

कंवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।

सूखि बेलि पुनि पलुहै, जो पिय साँचौ आइ ॥

राजा इस पर मुग्ध हो गए। उन्होंने फकीर से पूछा, 'शाह जी! यह दोहा किसका बनाया है।' उस फकीर से मलिक मुहम्मद का नाम सुनकर राजा ने बड़े सम्मान और विनय के साथ उन्हें अपने यहाँ बुलाया था।

'पदमावत' को पढ़ने से यह प्रकट हो जाएगा कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में और क्या भगवत्पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता और गंभीरता विलक्षण दिखाई देती है। जायसी की 'पदमावत' बहुत प्रसिद्ध हुई। मुसलमानों के भक्त घरानों में इसका बहुत आदर है। यद्यपि उसको समझने वाले अब बहुत कम हैं पर उसे गूढ़ पोथी मानकर यत्न से रखते हैं। जायसी की एक और छोड़ी सी पुस्तक 'अखरावट' है जो मिरजापुर में एक वृद्ध मुसलमान के घर मिली थी। इसमें वर्णमाला के एक–एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी कुछ बातें कही गई हैं। तीसरी पुस्तक 'आखरी कलाम' के नाम से फारसी अक्षरों में छपी है। यह भी दोहे–चौपाइयों में है और बहुत छोटी है। इसमें मरणोपरांत जीव की दशा और कयामत के अंतिम न्याय आदि का वर्णन है। बस ये ही तीन पुस्तकें जायसी की मिली हैं। इनमें से जायसी की कीर्ति का आधार 'पदमावत' ही है। यह प्रबंध काव्य हिंदी में अपने ढंग का निराला है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका अनुवाद बंगभाषा में सन् 1650 ई. के आसपास अराकान में हुआ। जायसवाले इन तीन पुस्तकों के अतिरिक्त जायसी की दो और पुस्तकें बतलाते हैं– 'पोस्तीनामा' तथा 'नैनावत' नाम की प्रेमकहानी। 'पोस्तीनामा' के संबंध में उनका कहना है कि मुबारकशाह बोदले को लक्ष्य करके लिखी गई थी, जो चंडू पिया करते थे।

18.4 पदमावत की कथा

कवि सिंहलद्वीप, उसके राजा गंधर्वसेन, राजसभा, नगर, बगीचे इत्यादि का वर्णन करके पदमावती के जन्म का उल्लेख करता है। राजभवन में हीरामन नाम का एक अद्‌भुत सुआ था जिसे पदमावती बहुत चाहती थी और सदा उसी के पास रहकर अनेक प्रकार को बातें कहा करती थी। पदमावती क्रमश: सयानी हुई और उसके रूप की ज्योति भूमंडल में सबसे ऊपर हुई। जब उसका कहीं विवाह न हुआ तब वह रात–दिन हीरामन से इसी बात की चर्चा किया करती थी। सूए ने एक दिन कहा कि यदि कहो तो देश–देशांतर में फिरकर मैं तुम्हारे योग्य वर ढूँढें राजा को जब इस बातचीत का पता लगा तब उसने कुद्ध होकर सूए को मार डालने की आज्ञा दी। पदमावती ने विनती कर किसी प्रकार सूए के प्राण बचाए। सूए ने पदमावती से विदा माँगी, पर पदमावती ने प्रेम के मारे सूए को रोक लिया। सूआ उस समय तो रुक गया, पर उसके मन में खटका बना रहा।

एक दिन पदमावती सखियों को लिये हुए मानसरोवर में स्नान और जलक्रीड़ा करने गई। सूए ने सोचा कि अब यहाँ से चटपट चल देना चाहिए। वह वन की ओर उड़ा, जहां पत्तियों ने उसका बड़ा सत्कार किया। दस दिन पीछे एक बहेलिया हरी पत्तियों की टट्टी के लिये उस वन में चला आ रहा था। और पक्षी तो उस चलते पेड़ को देखकर उड़ गए पर हीरामन चारे के लोभ में वहीं रहा। अंत में बहेलिए ने उसे पकड़ लिया और बाजार में उसे बेचने के लिए ले गया। चित्तौर के एक व्यापारी के साथ एक दीन ब्राह्मण भी कहीं से रुपये लेकर लोभ की आशा से सिंघल की हाट में आया था। उस सूए को पंडित देख मोल ले लिया और लेकर चित्तौर आया। चित्तौर में उस समय राजा चित्रसेन मर चुका था और उसका बेटा रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। प्रशंसा सुनकर रत्नसेन ने लाख रुपये देकर हीरामन सूए को मोल ले लिया।

एक दिन रत्नसेन कहीं शिकार को गया था। उसकी रानी नागमती सूए के पास आई और बोली, 'मेरे समान सुंदरी और भी कोई संसार में है?' इस पर सूआ हंसा और उसने सिंघल की पद्मिनी स्त्रियों का वर्णन करके कहा कि उनमें और तुममें दिन और अँधेरी रात का अंतर है। रानी ने सोचा कि यदि यह तोता रहेगा तो किसी दिन राजा से भी ऐसा ही कहेगा और वह मुझसे प्रेम करना छोड़कर पदमावती के लिए जोगी होकर निकल पड़ेगा। उसने अपनी धाय से उसे ले जाकर मार डालने को कहा। धाय ने परिणाम सोचकर उसे मारा नहीं, छिपा रखा। जब राजा ने लौटकर सूए को न देखा तब उसने बड़ा कोप किया। अंत में हीरामन उसके सामने लाया गया और उसने सब वृत्तांत कह सुनाया। राजा को पदमावती का रूपवर्णन सुनने की बड़ी उत्कंठा हुई और हीरामन ने उसके रूप का लंबा-चौड़ा वर्णन किया। उस वर्णन को सुन राजा बेसुध हो गया। उसके हृदय में ऐसा प्रबल अभिलाष जगा कि वह रास्ता बताने के लिए हीरामन को साथ ले जोगी होकर घर से निकल पड़ा। उसके साथ सोलह हजार कुँवर भी जोगी होकर चले। मध्यप्रदेश के नाना दुर्गम स्थानों के बीच होते हुए सब लोग कलिंग देश में पहुँचे। वहाँ के राजा गजपति से जहाज लेकर रत्नसेन ने और सब जोगियों के सहित सिंघलद्वीप की ओर प्रस्थान किया। क्षार समुद्र, क्षीर समुद्र, दधि समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र और किलकिला समुद्र को पार करके वे सातवें मानसरोवर समुद्र में पहुँचे जो सिंघलद्वीप के चारों ओर है। सिंघलद्वीप में उतरकर जोगी रत्नसेन तो अपने सब जोगियों के साथ महादेव के मंदिर में बैठकर तप और पदमावती का ध्यान करने लगा और हीरामन पदमावती से भेंट करने गया। जाते समय वह रत्नसेन से कहता गया कि वसंत पंचमी के दिन पदमावती इसी महादेव के मंडप में वसंतपूजा करने आएगी; उस समय तुम्हें उसका दर्शन होगा और तुम्हारी आशा पूर्ण होगी।

बहुत दिन पर हीरामन को देख पदमावती बहुत रोई। हीरामन ने अपने निकल भागने और बेचे जाने का वृत्तांत कह सुनाया। इसके उपरांत उसने रत्नसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की बड़ी प्रशंसा करके कहा कि वह सब प्रकार से तुम्हारे योग्य वर है और तुम्हारे प्रेम में जोगी होकर यहाँ तक आ पहुँचा है। पदमावती ने उसकी प्रेमव्यथा सुनकर जयमाल देने की प्रतिज्ञा की और कहा कि वसंत पंचमी के दिन पूजा के बहाने मैं उसे देखने जाऊँगी। सूआ यह समाचार लेकर राजा के पास मंडप में लौट आया।

वसंत पंचमी के दिन पदमावती सखियों के सहित मंडप में गई और उधर भी पहुँची जिधर रत्नसेन और उसके साथी जोगी थे। पर ज्योंही रत्नसेन की आँखें उस पर पड़ीं, वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। पदमावती ने रत्नसेन को सब प्रकार से वैसा ही पाया जैसा सूए ने कहा था। वह मूर्छित जोगी के पास पहुँची और उसे होश में लाने के लिए उस पर चंदन छिड़का। जब वह न जागा तब चंदन से उसके हृदय पर यह बात लिखकर यह चली गई कि जोगी, तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा, जब फल प्राप्ति का समय आया तब तू सो गया।

राजा को जब होश आया तब वह बहुत पछताने लगा और जल मरने को तैयार हुआ। सब देवताओं को भय हुआ कि यदि कहीं यह जला तो इसकी घोर विरहाग्नि से सारे लोक भस्म हो जाएँगे। उन्होंने जाकर महादेव-पार्वती के यहाँ पुकार की। महादेव कोढ़ी के वेश में बैल पर चढ़े राजा के पास आए और जलने का कारण पूछने लगे। इधर पार्वती

की, जो महादेव के साथ आई थीं, यह इच्छा हुई कि राजा के प्रेम की परीक्षा लें। ये अत्यंत सुंदरी अप्सरा का रूप धरकर आई और बोलीं– 'मुझे इंद्र ने भेजा है। पदमावती को जाने दे, तुझे अप्सरा प्राप्त हुई।' रत्नसेन ने कहा– 'मुझे पदमावती को छोड़ और किसी से कुछ प्रयोजन नहीं।' पार्वती ने महादेव से कहा कि रत्नसेन का प्रेम सच्चा है। रत्नसेन ने देखा कि इस कोढ़ी की छाया नहीं पड़ती है, इसके शरीर पर मक्खियों नहीं बैठती हैं और इसकी पलकें नहीं गिरती हैं अतः यह निश्चय ही कोई सिद्ध पुरुष है। फिर महादेव को पहचानकर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। महादेव ने उसे सिद्धि गुटिका दी और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बताया। सिद्धि गुटिका पाकर रत्नसेन सब जोगियों को लिये सिंहलगढ़ पर चढ़ने लगा।

राजा गंधर्वसेन के यहाँ जब यह खबर पहुँची तब उसने दूत भेजे। दूतों से जोगी रत्नसेन ने पद्मिनी के पाने का अभिप्राय कहा। दूत क्रुद्ध होकर लौट गए। इस बीच हीरामन रत्नसेन का प्रेमसंदेश लेकर पदमावती के पास गया और पदमावती का प्रेमभरा संदेशा आकर उसने रत्नसेन से कहा। इस संदेश से रत्नसेन के शरीर में और भी बल आ गया। गढ़ के भीतर जो अगाध कुंड था वह रात को उसमें धँसा और भीतरी द्वार को, जिसमें वज्र के किवाड़ लगे थे, उसने जा खोला। पर इस बीच सवेरा हो गया और वह अपने साथी जोगियों के सहित घेर लिया गया। राजा गंधर्वसेन के यहाँ विचार हुआ कि जोगियों को पकड़कर सूली दे दी जाए। दल-बल के सहित सब सरदारों ने जोगियों पर चढ़ाई की। रत्नसेन के साथी युद्ध के लिए उत्सुक हुए पर रत्नसेन ने उन्हें यह उपदेश देकर शांत किया कि प्रेममार्ग में क्रोध करना उचित नहीं। अंत में सब जोगियों सहित रत्नसेन पकड़ा गया। इधर यह सब समाचार सुन पदमावती की बुरी दशा हो रही थी। हीरामन सूए ने जाकर उसे धीरज बंधाया कि रत्नसेन पूर्ण सिद्ध हो गया है, वह पर नहीं सकता।

जब रत्नसेन को बाँधकर सूली देने के लिए लाए तब जिसने-जिसने उसे देखा सबने कहा कि यह कोई राजपुत्र जान पड़ता है। इधर सूली की तैयारी हो रही थी, उधर रत्नसेन पदमावती का नाम रट रहा था। महादेव ने जब जोगी पर ऐसा संकट देखा तब वे और पार्वती भांट-भाटिनी का रूप धरकर वहाँ पहुँचे। इस बीच हीरामन सूआ भी रत्नसेन के पास पदमावती का यह संदेशा लेकर आया कि 'मैं भी हथेली पर प्राण लिये बैठी हूँ, मेरा जीना-मरना तुम्हारे साथ है।' भाँट (जो वास्तव में महादेव थे) ने राजा गंधर्वसेन को बहुत समझाया कि यह जोगी नहीं राजा और तुम्हारी कन्या के योग्य वर है, पर राजा इस पर और भी क्रुद्ध हुआ। इस बीच जोगियों का दल चारों ओर से लड़ाई के लिए चढ़ा। महादेव के साथ हनुमान आदि सब देवता जोगियों की सहायता के लिए आ खड़े हुए। गंधर्वसेन की सेना के हाथियों का समूह जब आगे बढ़ा तब हनुमानजी ने अपनी लंबी पूँछ में सबको लपेटकर आकाश में फेंक दिया। राजा गंधर्वसेन को फिर महादेव का घंटा और विष्णु का शंख जोगियों की ओर सुनाई पड़ा और साक्षात् शिव युद्ध-स्थल में दिखाई पड़े। यह देखते ही गंधर्वसेन महादेव के चरणों पर जा गिरा और बोला-'कन्या आपकी है, जिसे चाहिए उसे दीजिए।' इसके उपरांत हीरामन सूए ने आकर राजा रत्नसेन के चित्तौर से आने का सब वृत्तांत कह सुनाया और गंधर्वसेन ने बड़ी धूमधाम से रत्नसेन के साथ पदमावती का विवाह कर दिया। रत्नसेन के साथी जो सोलह हजार कुँवर थे उन सबका विवाह भी पद्मिनी स्त्रियों के साथ हो गया और सब लोग बड़े आनंद के साथ कुछ दिनों तक सिंहल में रहे।

इधर चित्तौर में वियोगिनी नागमती को राजा की बाट जोहते एक वर्ष हो गया। उसके विलाप से पशु-पक्षी विकल हो गए। अंत में आधी रात को एक पक्षी ने नागमती के दुःख का कारण पूछा। नागमती ने उससे रत्नसेन के पास पहुँचाने के लिए अपना संदेशा कहा। वह पक्षी नागमती का संदेशा लेकर सिंहलद्वीप गया और समुद्र के किनारे एक पेड़ पर बैठा। संयोग से रत्नसेन शिकार खेलते-खेलते उसी पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। पक्षी ने पेड़ पर नागमती की दुःखकथा और चित्तौर की हीन दशा का वर्णन किया। रत्नसेन का जी सिंहल से उचटा और उसने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया। चलते समय उसे सिंहल के राजा के यहाँ से विदाई में बहुत सा सामान और धन मिला। इतनी अधिक संपत्ति देख राजा के मन में गर्व और लोभ हुआ। वह सोचने लगा कि इतना अधिक धन लेकर यदि मैं स्वदेश पहुँचा तो फिर मेरे समान संसार में कौन है। इस प्रकार लोभ ने राजा को आ घेरा।

समुद्रतट पर जब रत्नसेन आया तब समुद्र यातक का रूप धरकर राजा से दान माँगने आया, पर राजा ने लोभवश उसका तिरस्कार कर दिया। राजा आधे समुद्र में भी नहीं पहुंचा था कि बड़े जोर का तूफान आया जिससे जहाज दक्खिन लंका की ओर बह गए। वहाँ विभीषण का एक राक्षस माँझी मछली मार रहा था। वह अच्छा आहार देख राजा से आकर बोला कि चलो हम तुम्हें रास्ते पर लगा दें। राजा उसकी बातों में आ गया। वह राक्षस सब जहाजों को एक भयंकर समुद्र में ले गया जहाँ से निकलना कठिन था। जहाज चक्कर खाने लगे और हाथी, घोड़े, मनुष्य आदि डूबने लगे। वह राक्षस आनंद से नाचने लगा। इस बीच समुद्र का राजपक्षी वहाँ आ पहुँचा जिसके डैनों का ऐसा घोर शब्द हुआ मानो पहाड़ के शिखर टूट रहे हों। यह पक्षी उस दुष्ट राक्षस को चंगुल में दबाकर उड़ गया। जहाज के एक तख्ते पर एक ओर राजा बहा और दूसरे तख्ते पर दूसरी ओर रानी।

पदमावती बहते-बहते वहाँ जा लगी जहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी। लक्ष्मी मूर्छित पदमावती को अपने घर ले गई। पदमावती को जब चेत हुआ तब यह रत्नसेन के लिए विलाप करने लगी। लक्ष्मी ने उसे धीरज बँधाया और अपने पिता समुद्र से राजा की खोज कराने का वचन दिया। इधर राजा बहते-बहते एक ऐसे निर्जन स्थान में पहुंचा जहाँ मूँगों के टीलों के सिवा और कुछ न था। राजा पद्मिनी के लिए बहुत विलाप करने लगा और कटारं लेकर अपने गले में मारा ही चाहता था कि ब्राह्मण का रूप धरकर समुद्र उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसे मरने से रोका। अंत में समुद्र ने राजा से कहा कि तुम मेरी लाठी पकड़कर आँख मूँद लो; मैं तुम्हें जहाँ पदमावती पद्मावती है उसी तट पर पहुंचा दूँगा।

जब राजा उस तट पर पहुँच गया तब लक्ष्मी उसकी परीक्षा लेने के लिए पदमावती का रूप धारण कर रास्ते में जा बैठी। रत्नसेन उन्हें पदमावती समझ उनकी ओर लपका। पास जाने पर वे कहने लगीं- -मैं पदमावती हूँ।' पर रत्नसेन ने देखा कि यह पदमावती नहीं है, तब चट मुँह फेर लिया। अंत में लक्ष्मी रत्नसेन को पदमावती के पास ले गई। रत्नसेन और पदमावती कई दिनों तक समुद्र और लक्ष्मी के मेहमान रहे। पदमावती की प्रार्थना पर लक्ष्मी ने उन सब साथियों को भी ला खड़ा किया जो इधर-उधर बह गए थे। जो मर गए थे वे भी अमृत से जिला दिए गए। इस प्रकार बड़े आनंद से दोनों वहाँ से विदा हुए। विदा होते समय समुद्र ने बहुत से अमूल्य रत्न दिए। सबसे बढ़कर पाँच पदार्थ दिए-अमृत, हंस, राजपक्षी, शार्दूल और पारस पत्थर। इन सब अनमोल पदाथों को लिये अंत में रलसेन और पदमावती चित्तौर पहुँच गए। नागमती और पदमावती दोनों रानियों के साथ रत्नसेन सुखपूर्वक रहने लगे। नागमती से नागसेन और पदमावती से कमलसेन ये दो पुत्र राजा को हुए।

चित्तौर की राजसभा में राघव चेतन नाम का एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजा ने पंडितों से पूछा श्दूज कब है? राघव के मुँह से निकला 'आज' । और सब पड़ितों न एक स्वर से कहा कि 'आज नहीं हो सकती, कल होगी।' राघव ने कहा कि 'यदि आज दूज न हो तो मैं पंडित नहीं।' पंडितों ने कहा कि 'राघव वाममार्गी है; यक्षिणी की पूजा करता है, जो चाहे सो कर दिखावे, पर आज दूज नहीं हो सकती।' राघव ने यक्षिणी के प्रभाव से उसी दिन संध्या के समय द्वितीया का चंद्रमा दिखा। पर जब दूसरे दिन चंद्रमा देखा गया तब वह द्वितीया का ही चंद्रमा था। इस पर पंडितों ने राजा रत्नतेन से कहा-'देखिए, यदि कल द्वितीया रही होती, तो आज चंद्रमा की कला कुछ अधिक होती; झूठ और सच की परख कर लीजिए।' राघव का भेद खुल गया और यह वेदविरुद्ध आचार करने वाला प्रमाणित हुआ। राजा रत्नसेन ने उसे देशनिकाले का दंड दिया।

पदमावती ने जब यह सुना तब उसने ऐसे गुणी पंडित का असंतुष्ट होकर जाना राज्य के लिए अच्छा नहीं समझा। उसने भारी दान देकर राघव को प्रसन्न करना चाहा। सूर्यग्रहण का दान देने के लिए उसने उसे बुलाया। जब राघव महल के नीचे आया तब पदमावती ने अपने हाथ का एक अमूल्य कंगन-जिसका जोड़ा और कहीं दुष्प्राप्य था-झरोखे पर से फेंका। झरोखे पर पदमावती की झलक देख राघव बेसुध होकर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तब उसने सोचा कि अब यह कंगन लेकर बादशाह के पास दिल्ली चलूँ और पदमावती के रूप का उसके सामने वर्णन करूँ। वह लंपट है, तुरंत चित्तौर पर चढ़ाई करेगा और इसके जोड़ का दूसरा कंगन भी मुझे इनाम देगा। यदि ऐसा हुआ तो राजा से मैं बदला भी ले लूंगा और सुख से जीवन भी बिताऊँगा।

यह सोचकर राघव दिल्ली पहुँचा और वहाँ बादशाह अलाउद्दीन को कंगन दिखाकर उसने पदमावती के रूप का वर्णन किया। अलाउद्दीन ने बड़े आदर से उसे अपने यहाँ रखा और सरजा नामक एक दूत के हाथ एक पत्र रत्नसेन के पास भेजा कि पदमावती को तुरंत भेज दो, बदले में और जितना राज्य चाहो ले लो। पत्र पाते ही राजा रत्नसेन क्रोध से लाल हो गया और बिगड़कर दूत को वापस कर दिया। अलाउद्दीन ने चित्तौर गढ़ पर चढ़ाई कर दी। आठ वर्ष तक मुसलमान चित्तौड़ को घेरे रहे और घोर युद्ध होता रहा, पर गढ़ न टूट सका। इसी बीच दिल्ली से एक पत्र अलाउद्दीन को मिला जिसमें हरेव लोगों के फिर से चढ़ आने का समाचार लिखा था। बादशाह ने जब यह देखा कि गढ़ नहीं टूटता है तब उसने कपट की एक चाल सोची। उसने रत्नसेन के पास संधि का एक प्रस्ताव भेजा और यह कहलाया कि मुझे पदमावती नहीं चाहिए; समुद्र से जो पाँच अमूल्य वस्तुएँ तुम्हें मिली हैं उन्हें देकर मेल कर लो।

राजा ने स्वीकार कर लिया और बादशाह को चित्तौरगढ़ के भीतर ले जाकर बड़ी धूमधाम से उसकी दावत की। गोरा बादल नामक विश्वासपात्र सरदारों ने राजा को बहुत समझाया कि मुसलमानों का विश्वास करना ठीक नहीं, पर राजा ने ध्यान न दिया। वे दोनों वीर नीतिज्ञ सरदार रूठकर अपने घर चले गए। कई दिनों तक बादशाह की मेहमानदारी होती रही। एक दिन वह टहलते टहलते पदमावती के महल की ओर भी जा निकला, जहाँ एक से एक रूपवती स्त्रियाँ स्वागत के लिए खड़ी थीं। बादशाह ने राघव से, जो बराबर उसके साथ-साथ था, पूछा कि 'इनमें पदमावती कौन है?' राघव ने कहा, 'पदमावती इनमें कहाँ? ये तो उसकी दासियाँ हैं।' बादशाह पदमावती के महल के सामने ही एक स्थान पर बैठकर राजा के साथ शतरंज खेलने लगा। जहाँ वह बैठा था वहीं उसने एक दर्पण भी रख दिया था कि पदमावती यदि झरोखे पर आवेगी तो उसका प्रतिबिंब दर्पण में देखूँगा। पदमावती कुतूहलवश झरोखे के पास आई और बादशाह ने उसका प्रतिबिंब दर्पण में देखा। देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

अंत में बादशाह ने राजा से विदा माँगी। राजा उसे पहुँचाने के लिए साथ-साथ चला। एक-एक फाटक पर बादशाह राजा को कुछ न कुछ देता चला। अंतिम फाटक पार होते ही राघव के इशारे से बादशाह ने रत्नसेन को पकड़ लिया और बाँधकर दिल्ली ले गया। वहाँ राजा को तंग कोठरी में बंद करके वह अनेक प्रकार के भयंकर कष्ट देने लगा। इधर चित्तौर में हाहाकार मच गया। दोनों रानियाँ रो-रोकर प्राण देने लगीं। इस अवसर पर राजा रत्नसेन के शत्रु कुंभलनेर के राजा देवपाल को दुष्टता सूझी। उसने कुमुदनी नाम की दूती को पदमावती के पास भेजा। पहले तो पदमावती अपने मायके की स्त्री सुनकर बड़े प्रेम से मिली और उससे अपना दुःख कहने लगी, पर जब धीरे-धीरे उसका भेद खुला तब उसने उचित दंड देकर उसे निकलवा दिया। इसके पीछे अलाउद्दीन ने भी जोगिन के वेश में एक दूती इस आशा से भेजी कि वह रत्नसेन से भेंट कराने के बहाने पदमावती को जोगिन बनाकर अपने साथ दिल्ली लाएगी। पर उसकी दाल भी न गली।

अंत में पदमावती गोरा और बादल के घर गई और उन दोनों क्षत्रिय वीरों के सामने अपना दुःख रोकर उसने उनसे राजा को छुड़ाने की प्रार्थना की। दोनों ने राजा को छुड़ाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और रानी को बहुत धीरज बँधाया। दोनों ने सोचा कि जिस प्रकार मुसलमानों ने धोखा दिया है उसी प्रकार उनके साथ भी चाल चलनी चाहिए। उन्होंने सोलह सी ढकी पालकियों के भीतर सशस्त्र राजपूत सरदारों को बिठाया और जो सबसे उत्तम और बहुमूल्य पालकी थी उसके भीतर औजार के साथ एक लोहार को बिठाया। इस प्रकार वे यह प्रसिद्ध करके चले कि सोलह सौ दासियों के सहित पदमावती दिल्ली जा रही है।

गोरा के पुत्र बादल की अवस्था बहुत थोड़ी थी। जिस दिन दिल्ली जाना था उसी दिन उसका गौना आया था। उसकी नवागता वधू ने उसे युद्ध में जाने से बहुत रोका पर उस वीर कुमार ने एक न सुनी। अंत में सोलह सौ सवारियों के सहित वे दिल्ली के किले में पहुँचे। वहाँ कर्मचारियों को घूस देकर उन्हें अपने अनुकूल किया जिससे किसी ने पालकियों की तलाशी न ली। बादशाह के यहां खबर गई कि पदमावती आई है और कहती है कि राजा से मिल लूँ और उन्हें चित्तौर के खजाने की कुंजी सुपुर्द कर हूँ तब महल में जाऊँ। बादशाह ने आभा दे दी। यह सजी हुई पालकी वहाँ पहुँचाई गई जहाँ राजा रत्नसेन कैद था। पालकी में से निकलकर लोहार ने चट राजा की बेड़ी काट दी और वह शस्त्र लेकर एक घोड़े पर सवार हो गया जो पहले से तैयार था। देखते-देखते और हथियारबंद सरदार भी पालकियों में से निकल पड़े। इस प्रकार गोरा और बादल राजा को छुड़ाकर वित्तौर चले।

बादशाह ने जब सुना तब अपनी सेना सहित पीछा किया। गोरा बादल ने जब शाही फौज पीछे देखी तब एक हजार सैनिकों को लेकर गोरा तो शाही फौज को रोकने के लिए डट गया और बादल राजा रत्नसेन को लेकर चित्तौर की ओर बढ़ा। वृद्ध वीर गोरा बड़ी बीरता से लड़कर और हजारों को मारकर अंत में सरजा के हाथ से मारा गया। इस बीच में राजा रत्नसेन चित्तौर पहुंच गया। पहुँचते ही उसी दिन रात को पदमावती के मुँह से रत्नसेन ने जब देवपाल की दुष्टता का हाल सुना तब उसने उसे बाँध लाने की प्रतिज्ञा की। सवेरा होते ही रत्नसेन ने कुभंलनेर पर चढ़ाई कर दी। रत्नसेन और देवपाल के बीच द्वंद्व युद्ध हुआ। देवपाल की साँग रत्नसेन की नाभि में घुसकर उस पार निकल गई। देवपाल साँग मारकर लौटा ही चाहता था कि रत्नसेन ने उसे जा पकड़ा और उसका सिर काटकर उसके हाथ-पैर बाँधे। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर और चित्तौरगढ़ की रक्षा का भार बादल को सौंप रत्नसेन ने शरीर छोड़ा।

राजा के शव को लेकर पदमावती और नागमती दोनों रानियाँ सती हो गई। इतने में शाही सेना चित्तौरगढ़ आ पहुँची। बादशाह ने पदमावती के सती होने का समाचार सुना। बादल ने प्राण रहते गढ़ की रक्षा की पर अंत में वह फाटक की लड़ाई में मारा गया और चित्तौरगढ़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. जायसी किस युग के कवि है?
2. जायसी की एक प्रसिद्ध रचना का बताओं?
3. प्रेममार्गी काव्य धारा के प्रसिद्ध कवि का नाम लिखो।

18.4 सारांश :

उपयुक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि मलिक मुहम्मद जागसी ने भारतीय कथानक को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया जिसके आधार पर उन्होंने अलौलिक सत्ता को लौकिक पर स्थापित किया। काव्य सृजन करने का इनका मुख्य उद्देश्य भारतीय कथानक की अभिव्यक्ति कसा नहीं था बल्कि धर्म मुस्लिम का प्रचार करना था जो उस समय काफी हद तक सफल भी हुए।

18.5 कठिन शब्दावली

भा - भूमि। अवतार - जन्म लेना। बाई दिसि - बांई आंख। अचरज - आरचार्य। आपुहिं - अपने आप। अचरज-आर-चार्य आपुहिं - अपने आप ।

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. भक्तिकाल ।
2. पद्मावत ।
3. जायसी ।

18.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचन्द्र शुक्ल पद्मावत ओमोगा प्रकाशन, दिल्ली।
2. श्री निवास शर्मा, जायसी ग्रंथावली, अशोक प्रकाशन दिल्ली।
3. मलिक मुहम्मद जायसी, कमल कुलश्रेष्ठ, साहित्य भवन दिल्ली।

18.8 सात्रिक प्रश्न

(1) जायसी का जीवन परिचय लिखिए।

(2) जायसी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(3) जायसी के रहस्यवाद को स्पष्ट कीजिए।

****

इकाई–19
जायसी के काव्य में वर्ण्य वर्णन

संरचना

19.1 भूमिका

19.2 उद्देश्य

19.3 जायसी के काव्य में वस्तुवर्णन

स्वयं आकलन के प्रश्न

19.4 सारांश

19.5 कठिन शब्दावली

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

19.7 संदर्भित पुस्तकें

19.8 सात्रिक प्रश्न

19.1 भूमिका

वस्तुओं की ऐसी संश्लिष्ट योजना द्वारा कर बिंबग्रहण कराने का-वस्तुओं बकर अलग-अलग नाम लेकर अर्थग्रहण मात्र कराने का नहीं-प्रयत्न हिंदी कवियों में: बहुत ही कम दिखाई पड़ता है। अत: जायसी में भी हम इसका आभास बहुत कम पाते हैं। इन्होंने जहाँ-जहाँ वस्तुवर्णन किया है वहाँ-वहाँ भाषाकवियों को पृथक् पृथक् वस्तुपरिगणनवाली शैली ही पर अधिकतर किया है। अत: ये वर्णन परंपरामुक्त ही कहे जा सकते हैं। केवल वस्तुपरिगणन में नवीनता कहाँ तक आ सकती है? ऋतु का वर्णन होगा तो उस ऋतु में फलने-फूलने वाले पेड़-पौधों और दिखाई पड़ने वाले पक्षियों के नाम होंगे, वन का वर्णन होगा तो कुछ इने-गिने जंगली पेड़ों के नाम आ जाएँगे, नगर या हाट का वर्णन होगा तो बाग, बगीचों, मकानों और दुकानों का उल्लेख होगा। नवीनता की संभावना तो कवि के निज परीक्षण द्वारा प्रत्यक्ष की हुई वस्तुओं और व्यापारों की संश्लिष्ट योजना में ही हो सकती है। सामग्री नयी नहीं होती, उसकी योजना नये रूप में होती है।

वस्तुवर्णन कौशल से कवि लोग इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना सकते हैं। इस बात में हम संस्कृत के कवियों को अत्यंत निपुण पाते हैं। भाषा के कवियों में वह निपुणता नहीं पाई जाती। मार्ग चलने का ही एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। राम किष्किंधा की ओर जा रहे हैं। तुलसीदासजी इसका कथन इतिवृत्त के रूप में इस प्रकार करते हैं-

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया ॥

किसी पर्वत की ओर जाते समय दूर से उसका दृश्य कैसा जान पड़ता है, फिर ज्यों-ज्यों उसके पास पहुँचते हैं त्यों-त्यों उस दृश्य में किस प्रकार का अंतर पड़ता जाता है, पहाड़ी मार्ग के आस-पास का दृश्य कैसा हुआ करता है, यह सब ब्योरा उक्त कथन में या उसके आगे कुछ भी नहीं है। वही रघुवंश के द्वितीय सर्ग में दिलीप, उनकी पत्नी और नंदिनी गाय के 'मार्ग चलने का दृश्य' देखिए।

19.2 उद्देश्य

1. जायसी के पद्मावत की जानकारी।
2. पद्मावत में वर्णित विषय की जानकारी।
3. वस्तु वर्णन का बोध।
4. पद्मावत में वस्तुवर्णन के प्रयोग का बोध।

19.3 जायसी के काव्य में वस्तु वर्णन

वस्तु वर्णन के लिए जायसी ने घटना-चक्र के बीच उपयुक्त स्थलों को चुना है और उनका विस्तृत वर्णन धिकतर भाषाकवियों की पद्धति पर होते हुए भी बहुत ही भावपूर्ण है। अब संक्षेप में कुछ मुख्य स्थलों का उल्लेख किया जाता है जिन्हें वर्णनविस्तार के लिए जायसी ने चुना है।

सिंहलद्वीप वर्णन- इसमें बगीचों, सरोवरों, कुओं, बावलियों, पक्षियों, नगर, हाट, गढ़, राजद्वार और हाथी-घोड़ों का वर्णन है। अमराई की शीतलता और सघनता का अंदाज इस वर्णन से कीजिए-

घन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुँत लागि अकासा ॥
तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भइ जग छाँह, रैनि होइ आई ॥
मलय समीर सोहावनि छाँहा । जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ ॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास देखावै ॥
पथिक जो पहुँचौ सहिकै घामू । दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू ॥

इतना कहते-कहते कवि का ध्यान ईश्वर के सामीप्य की भावना की और चला जाता है और वह उस अमर धाम की ओर, जहाँ पहुँचने पर भवताप से निवृत्ति हो जाती है, इस प्रकार संकेत करता है-

जेइ पाई वह छाँह अनूपा। फिर नहिं आइ सहै यह धूपा ॥

कवि की यही पारमार्थिक प्रवृत्ति उसे हेतूपेक्षा की ओर ले जाती है। ऐसा जान पड़ता है, मानो उसी अमराई की छाया से ही संसार में रात होती है और आकाश हरा (प्राचीन दृष्टि हरे और नीले में इतना भेद नहीं करती थी) दिखाई देता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जिन दृश्यों का माधुर्य भारतीय हृदय पर चिरकाल से अंकित चला आ रहा है उन्हें चुनने की सहृदयता जायसी का एक विशेष गुण है। भारत के श्रृंगारप्रिय हृदयों में 'पनिघट का दृश्य' एक विशेष स्थान रखता है। बूढ़े केशवदास ने पनिघट ही पर बैठे-बैठे अपने सफेद बालों को कोसा था। सिंहल के पनिघट का वर्णन जायसी इस प्रकार करते हैं-

पानि भरै आवहिं पनिहारी । रूप सुरूप पदमिनी नारी ॥

पद्म गंध तिन्ह अंग बसाहीं । भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं ॥

लंक सिंधिनी, सारंग नैनी । हंस गामिनी, कोकिल बैनी ॥

आवहिं झुंड सो पाँतिहि पाँती । गवन सोहाइ सो भाँतिहि भाँती ॥

कनक कलस, मुख चंद दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं ॥

जा सहुँ वै हेरहिं चख नारी । बाँक नैन जनु हनहिं कटारी ॥

केस मेघावर सिर ता पाई। चमकहिं दसन बीजु कै नाई ॥

पदमावती का अलौकिक रूप ही सारी आख्यायिका का आधार है। अत: कवि इन पनिहारियों के रूप की झलक दिखाकर पदमावती के रूप के प्रति पहले ही से इस प्रकार उत्कंठा उत्पन्न करता है-

माथे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप।

जेहिके अस पनिहारी सो रानी केहि रूप?

बाजार के वर्णन में 'हिंदू हाट' की अच्छी झलक मिल जाती है-

कनक हाट सब कुहुँकुहैं लीपी। बैठ महाजन सिंघलदीपी ॥

सोन रूप भल भएउ पसारा । धवल सिरी पोते घर बारा ॥

जिस प्रकार नगर हाट के वर्णन से सुख-समृद्धि टपकती है उसी प्रकार गढ़ औ राजद्वार के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से प्रताप और आतंक-

निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू। नाहिं त होइ बाजि रथ चूरू ॥

पौरी नवौ वज्र कै साजी। सहस-सहस तहँ बैठे पाजी ॥

फिरहिं पाँच कोटवार सुभौंरी । काँपै पाँव चपत वह पौरी ॥

जलक्रीड़ा वर्णन-सिंहलद्वीप वर्णन के उपरांत सखियों सहित पदमावती की जलक्रीड़ा - वर्णन है (दे. मानसरोदक खंड)। यद्यपि जायसी ने इस प्रकरण की योजना कौमार अवस्था के स्वाभाविक उल्लास और मायके की स्वच्छंदता की व्यंजना के लिए की है, पर सरोवर के जल में घुसी हुई कुमारियों का मनोहर दृश्य भी दिखाया है और जल में उनक के लहराने आदि का चित्रण भी किया है-

घरी तीर सब कंचुकि सारी । सरवर मुँह पैठीं सब नारी ॥

पाइ नीर जानहु सब बेली। हुलसहिं करहिं काम के केली ॥

करिल केस बिसहर बिस भरे। लहरें लेहिं कॅवल मुख घरे ॥

नवल बसंत सँवारी करी। भई प्रगट जानहु रस भरी ॥

सरवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहीं पैठ लेइ तारा॥

उल्लास के अनुरूप क्रिया जायसी ने इस खेल में दिखाई है–

सँवरिहिं साँवरि, गोरिहि गोरी । आपनि-आपनि लीन्हि सो जोरी ॥

सिंहलद्वीप यात्रा वर्णन– वस्तुवर्णन की जो पद्धति जायसी की कही गई है उसे ध्यान में रखते हुए मार्गवर्णन जैसा चाहिए वैसे की आशा नहीं की जा सकती। चित्तौर से कलिंग तक जाने में मार्ग में न जाने कितने वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम, नगर तथा भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति के मनुष्य इत्यादि पड़ेंगे पर जायसी ने उनका चित्रण करने की आवश्यकता नहीं समझी। केवल इतना ही कहकर वे छुट्टी पा गए–

है आगे परबत कै बाटा। विषम पहार अगम सुठि घाटा ॥

बिच-विच नदी खोह औ नारा। ठाँवहिं ठाँव बैठ बटपारा ॥

प्राकृतिक दृश्यों के साथ जायसी के हृदय का वैसा मेल नहीं जान पड़ता । मनुष्य के शारीरिक सुख-दुःख से, उनके आराम और तकलीफ से, उनका जहाँ तक संबंध होता है वहीं तक उनकी ओर उनका ध्यान जाता है। बगीचों और अमराइयों का वर्णन वे जो करते हैं सो केवल उनकी सघन शीतल छाया के विचार से। वन का जो वे वर्णन करते हैं वह कुश कंटकों के विचार से, कष्ट और भय के विचार से–

करहु दीठि यिर होइ बटाऊ। आगे देखि धरहु भुइँ पाऊ ॥

जो रे उबट होइ परे भुलाने । गए मारि, पथ चलै न जाने ॥

पांयन पहिरि लेहु सब पौरी। काँट धँसै न गड़े अँकरौरी।

परे आइ बन परबत माहां। दण्डाकरन बीज बन गाहाँ ॥

सघन ढाक बन चहुँदिसि फूला। बहु दुख पाव उहाँ कर भूला ॥

झाँखर जहाँ सो छाँड़हु पंथा। हिलगि मकोय न घारहु कंथा ॥

फारसी की शायरी में जंगल और बयाबान का वर्णन केवल कष्ट या विपत्ति के प्रसंग में आता है। वहाँ जिस प्रकार चमन आनंदोत्सव का सूचक है उसी प्रकार कोह या बयाबान विपत्ति का। संस्कृत साहित्य का जायसी को परिचय न था। वे वन, पर्वत आदि के अनुरंजनकारी स्वरूप के चित्रण की पद्धति पाते तो कहाँ पाते? उनकी प्रतिभा इस प्रकार की न थी कि किसी नयी पद्धति की उद्‌भावना करके उस पर चल खड़ी होती।

समुद्र वर्णन–हिंदी के कवियों में केवल जायसी ने समुद्र का वर्णन किया है, पर पुराणों के 'सात समुद्र' के अनुकरण के कारण समुद्र का प्रकृत वर्णन वैसा होने नहीं पाया। क्षीर, दधि और सुरा के कारण समुद्र के प्राकृतिक स्वरूप का अच्छा प्रत्यक्षीकरण न हो सका। आरंभ में समुद्र का जो सामान्य वर्णन है उसके कुछ पद्य अवश्य समुद्र की महत्ता और भीषणता का चित्र खड़ा करते हैं, जैसे–

समुद अपार सरग जनु लागा। सरग न घाल गनै बैरागा ॥

उठे लहरि जनु ठाढ़ पहारा। चढ़े सरग औ परै पतारा ॥

विशेष समुद्रों में से केवल 'किलकिला समुद्र' का वर्णन अत्यंत स्वाभाविक तथा वैसे महत्त्वजन्य आश्चर्य और भय का संचार करने वाला है जैसा समुद्र के वर्णन द्वारा होना चाहिए।

भा किलकिल अस उठे हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा ॥

उठहि लहरि परबत कै नाई। फिरि आवहिं जोजन सौ ताई ॥

धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहु भा ठाढ़ा ॥

नीर होइ तर ऊपर सोई । माथे रंभ समुद जस होई॥

यदि इसी प्रकार के वर्णन का विस्तार और अधिक होता तो क्या अच्छा होता! 'समुद्र अपार सरग जनु लागा' इस वाक्य में विस्तार का बहुत ही सुंदर प्रत्यक्षीकरण हुआ है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक समुद्र ही फैला हुआ और क्षितिज से लगा हुआ दिखाई पड़ता है। दृश्य रूप में विस्तार का यह कथन अत्यंत काव्योचित है। अँगरेजी के कवि गोल्डस्मिथ ने भी अपने 'श्रांत पथिक' (ट्रेवेलर) नामक काव्य में विस्तार का प्रत्यक्षीकरण - 'ए वेयरी वेस्ट इक्स्पेंडिंग टु द स्काईज' (आकाश तक फैला हुआ मैदान) कहकर किया है। 'परबत के नाई' इस साम्य द्वारा भी लहरों की ऊँचाई की जो भावना उत्पन्न की गई वह काव्य पद्धति के बहुत ही अनुकूल है। इसके स्थान पर यदि कहा गया होता कि लहरें बीस-पचीस हाथ ऊँची उठती हैं तो माप शायद ठीक होती पर जो प्रभाव कवि उत्पन्न किया चाहता था वह उत्पन्न न होता। इसी से काव्य के वर्णनों में संख्या या परिमाण का उल्लेख नहीं होता और जहाँ होता भी है वहाँ उसका लाक्षणिक अर्थ ही लिया जाता है, जैसे 'फिरि आवहिं जोजन सौ ताई' में। काव्य के वाक्य श्रोता की ठीक मान निर्धारित करने वाली या सिद्धांत निरूपित करने वाली निश्चयात्मिका बुद्धि को संबोधन करके नहीं कहे जाते।

समुद्र के जीव-जंतुओं का जो काल्पनिक और अत्युक्त वर्णन जायसी ने किया है उससे सूचित होता है कि उन्होंने किस्से-कहानियों में सुनी-सुनाई बातें ही लिखी हैं, अपने अनुभव की नहीं। उन्होंने शायद समुद्र देखा भी न रहा हो।

सात समुद्रों के जो नाम जायसी ने लिखे हैं उनमें से प्रथम पाँच तो पुराणानुकूल हैं, पर अंतिम दो किलकिला और मानसर-भिन्न हैं। पुराणों के अनुसार सात समुद्रों के नाम हैं: क्षार (खारे पानी का), जल (मीठे पानी का), क्षीर, दचि, घृत, सुरा और मधु। इनमें से जायसी ने घृत और मधु को छोड़ दिया है। सिंहलद्वीप के पास 'मानसर' की कल्पना वैसी ही है जैसी कैलास में इंद्र और अप्सराओं की।

विवाह वर्णन- इसमें आनंदोत्सव और ओज का वर्णन है। सजावट आदि का चित्रण अच्छा है। इसमें राजा के ऐश्वर्य और प्रजा के उल्लास का आभास मिलता है-

रचि-रचि मानिक मांड़व छावा । औं भुइँ रात बिछाय बिछावा ॥

चंदन खॉभ रचे बहु भाँती। मानिक दिया बरहिं दिन-राती ॥

साजा राजा, बाजन बाजे । मदन सहाय दुवौ दर गाजे ॥

औ राता सोने का रथ साजा। भए बारात गोहने सब राजा॥

घर-घर बंदन रचे दुवारा। गावत नगर गीत झनकारा ॥

हाट बात सब सिघंल, जहें देखहुँ ताँ रात।

धनि रानी पदमावती, जेहिकै ऐसि बारात॥

बरात निकलने के समय अटारियों पर दूल्हा देखने की उत्कंठा से भरी स्त्रियों का जमावड़ा भारतवर्ष का एक बहुत पुराना दृश्य है। ऐसे दृश्यों को रखना जायसी नहीं भूलते, यह पहले कहा जा चुका है। पदमावती अपनी सखियों को लेकर वर देखने की उत्कंठा से कोठे पर चढ़ती है-

पदमावती धौराहर चढ़ी। दहुँ कस रवि जेहि कहें ससि गढ़ी।

देखि बरात सखिन्ह साँ कहा। इन्ह महं सो जोगी कहँ अहा? ॥

सखियाँ उँगली से दिखाती हैं कि वह देखो–

जस रवि, देखु, उठे परभाता। उठा छत्र तस बीच बराता ॥

ओहि माँझ भा दूलह सोई। और बरात संग सब कोई ॥

इस कथन में कवि ने निपुणता यह दिखाई है कि सखी उस बरात के बीच पहले सबसे अधिक लक्षित होने वाली वस्तु छत्र की ओर संकेत करती है; फिर कहती है कि उसके नीचे वह जोगी दूल्हा बना बैठा है।

भोज के वर्णन में व्यंजनों और पकवानों की नामावली है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने राम-सीता के विवाह का जितना विस्तृत वर्णन किया है

उतना विस्तृत वर्णन जायसी का नहीं है। गोस्वामीजी का रामचरितमनस लोकपक्षप्रधान काव्य है और जायसी के 'पदमावती' में व्यक्तिगत प्रेमसाधना का पक्ष प्रधान है। अत: 'पदमावत' में लोकव्यवहार का जो इतना चित्रण मिलता है उसी को बहुत समझना चाहिए। जैसा पहले कह आए हैं, इश्क की मसनवियों के समान यह लोकपक्षशून्य नहीं है।

युद्ध यात्रा-वर्णन–सेना की चढ़ाई का वर्णन बड़ी धूमधाम का है। ग्रंथारंभ में शेरशाह की सेना के प्रसंग की चौपाइयाँ ही देखिए कितनी प्रभावपूर्ण हैं–

हय गय सेन चलै जग पूरी। परबत दृटि मिलहिं होइ धूरी॥
रेनु रैनि होइ रविहिं गरासा। मानुख पंखि लेहिं फिरि बासा ॥
भुई उड़ी अंतरिक्ख मृदमंदा। खड़-खंड घरती बरमहंदा॥
डोलै गगन, इंद्र डरि काँपा। बासुकि जाइ पतारहिं चाँपा॥
मेरु धसमसै, समुद सुखाई। बनखंड टूटि खेह मिलि जाई ॥
अगिलन्ह कहं पानी लेइ बाँटा । पलिछन्ह कहें नहिं काँदी आँटा ॥

इसी ढंग का चित्तौर पर अल्लाउद्दीन की चढ़ाई का बड़ा विस्तृत वर्णन है–

बादसाह हठि कीन्ह पयाना। इंद्र भँडार डोल भय माना ॥
नब्बे लाख सवार जो चढ़ा। जो देखा सो सोने मढ़ा ॥
बीस सहस घुम्मरहिं निसाना। गलगंजहिं फेरहिं असमाना ॥
बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक घरती न समाई॥
सहस पाँति गज मत्त चलावा। घुसत अकास, धँसत भुइँ आवा ॥
बिरिछ उपारि पेड़ि स्यों लेहीं। मस्तक झारि तोरि मुख देहीं॥
कोउ काहू न सँभारे, होत आव डर चाप।
धरति आपु कहूँ काँपै, सरग आपु कहें काँप ॥
आवै डोलत सरग पतारू । काँपै घरति, न अँगवै भारू ॥
टूटहिं परवत मेरु पहारा। होइ-होइ चूरि उड़हिं होइ छारा ॥
सत खंड धरती भइ षट खंडा। ऊपर अस्ट भए बरम्हांडा ॥
गगन छपान खेह तस छाई । सूरुज छपा, रैनि होइ आई॥
दिनहिं-राति अस परी अचाका। भा रवि अस्त, चंद रथ हाँका ॥
मंदिरन्ह जगत् दीप परगसे। पंथी चलत बसेरहि बसे ॥
दिन के पखि चरत उड़ि भागे। निसि के निसरि चरै सब लागे ॥

कैसे घोर सृष्टिविप्लव का दृश्य जायसी ने सामने रखा है! मानव व्यापारों की व्यापकता और शक्तिमत्ता का प्रभाव वर्णन करने में जायसी को पूरी सफलता हुई है। मनुष्य की शक्ति तो देखिए! उसकी एक गति में सारी सृष्टि में खलबली पड़ गई है। पृथ्वी और आकाश दोनों हिल रहे हैं। एक के सात के छः ही खंड रहते दिखाई देते हैं और दूसरे के सात के आठ हुए जाते हैं। दिन की रात हो रही है। जिन जायसी ने विशुद्ध प्रेममार्ग में मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का साक्षात्कार किया-सच्चे प्रेमी की वियोगाग्नि की लपट को लोकलोकांतर में पहुँचाया-उन्होंने यहाँ उसकी भौतिक शक्ति का प्रसार दिखाया है।

इस वर्णन में बिंबग्रहण कराने के हेतु चित्रण का प्रयत्न भी पाया जाता है। इसमें कई व्यापारों की संश्लिष्ट योजना कई स्थलों पर दिखाई देती है। जैसे, हाथी पेड़ों को पेड़ी सहित उखाड़ लेते हैं, और फिर मस्तक झाड़ते हुए उन्हें तोड़कर मुँह में डाल लेते हैं। इस रूप में वर्णन न होकर यदि एक स्थान पर यह कहा जाता है कि हाथी पेड़ उखाड़ लेते हैं, फिर कहीं कहा जाता कि वे मस्तक झाड़ते हैं और आगे चल कर यह कहा जाता कि वे डालियाँ मुँह में डाल लेते हैं तो यह संकेत रूप में (अर्थग्रहण मात्र कराने के लिए, चित्त में प्रतिबिंब उपस्थित करने के लिए नहीं) कथन मात्र होता, चित्रण न होता इसी प्रकार पहाड़ टूटते हैं, टूटकर चूर-चूर होते हैं और फिर धूल होकर ऊपर छा जाते हैं। इस पंक्ति में भी व्यापारों की श्रृंखला एक में गुँथी हुई है। ये वर्णन संस्कृत चित्रणप्रणाली पर हैं। जिन व्यापारों या वस्तुओं में जायसी के हृदय की वृत्ति पूर्णतया लीन हुई है उनका ऐसा चित्रण मानो आपसे आप हो गया है।

इसके आगे राजा रत्नसेन के घोड़ों, हथियारों और उनकी सजावट आदि का अच्छे विस्तार के साथ वर्णन है। सब बातों की दृष्टि से यह युद्ध-यात्रा वर्णन सर्वांगपूर्ण कहा जा सकता है।

युद्धवर्णन-घमासान युद्ध वर्णन करने का भी जायसी ने अच्छा आयोजन किया है। शस्त्रों की चमक और झनकार हथियारों की रेलपेल, सिर और घड़ का गिरना आदि सब कुछ है-

हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहिं। जनु परबत परबत सों बाजहिं ॥
कोउ गयंद न टारे टरहीं। टूटहिं दाँत, सूँड़ गिरि परहीं ॥
बाजहिं खड़ग, उठे दर आगी। भुइँ जरि चहे सरग कहूँ लागी ॥
चमकहिं बीजु होइ उंजियारा। जेहिं सिर परे होइ दुइ फारा ॥
बरसहिं सेल बान, होइ कादों। जस बरसे सावन औ भादों॥
लपटहिं कोपि परहिं तरवारी। औ गोला ओला जस भारी॥
जूझे वीर लखौं कहं ताई । लेइ अछरी कैलास सिधाई ॥

अंतिम पंक्ति में वीरों के प्रति जो सम्मान का भाव प्रकट किया गया है वह हिंदुओं और मुसलमानों दोनों की महत्त्वभावना के अनुकूल है। रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त शूर वीरों का स्वागत जैसे हिंदुओं के स्वर्ग में अप्सराएँ करती हैं वैसे ही मुसलमानों के बहिश्त में भी। लोकसंगत आदर्श के प्रति यह पूज्य बुद्धि जायसी को कबीर आदि व्यक्तिपक्ष ही तक दृष्टि ले जाने वाले साधकों से अलग करती है।

भारतीय कविपरंपरा युद्ध की भीषणता के बीच गीध, गीदड़ आदि के रूप में कुछ बीभत्स दृश्य भी लाया करती है। जायसी ने भी इस परंपरा का अनुसरण किया है-

आनंद ब्याह करहिं मँसखावा। अब भख जनम जनम कहें पावा ॥
चौंसठ जोगिनि खप्पर पूरा । विग जंबुक पर बाजहिं तूरा ॥
गिद्ध चील सब मंडप छावहिं । काग कलोल करहिं औ गावहिं ॥

बादशाह-भोजन-वर्णन-जैसा पहले कह आए हैं, इसमें अनेक युक्तियों से बनाए हुए व्यंजनों, पकवानों, तरकारियों और मिठाइयों इत्यादि की बड़ी लबी सूची है-इतनी लंबी कि पढ़नेवाले का जी ऊब जाता है। यह भद्दी परंपरा जायसी के पहले से चली आ रही थी। सूरदासजी ने भी इसका अनुसरण किया है।

चित्तौरगढ़ वर्णन-यह भी उसी ढंग का है जिस ढंग का सिंहलगढ़ का वर्णन है। इसमें भी सात खण्ड हैं, पर नवद्वारवाली कल्पना नहीं आई है क्योंकि कवि को यहाँ किसी अप्रस्तुत अर्थ का समावेश नहीं करना था। चित्तौर बहुत दिनों तक हिंदुओं के बल, प्रताप और वैभव का केंद्र रहा। सारी हिंदू जाति उसे सम्मान और गौरव की दृष्टि से देखती रही। चित्तौर के नाम के साथ हिंदूपन का भाव लगा हुआ था। यह नाम हिंदुओं के मर्म को स्पर्श करनेवाला है। भारतेंदु के इस वाक्य में हिंदूहृदय की कैसी वेदना भरी है-

हाय चितौर! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी ॥

उसी प्रिय भूमि के संबंध में जायसी क्षत्रिय राजाओं के मुँह से कहलाते हैं-

चितउर हिंदुन कर अस्थाना। सत्रु तुरुक हटि कीन्ह पयाना॥
है चितउर हिंदुन कै माता। गाढ़ परे तजि जाइ न नाता ॥

चित्तौर के इसी गौरव और ऐश्वर्य के अनुरूप गढ़ का यह वर्णन है-

सातौ पंवरी कनक केवारा। सातहु पर बाजहिं घरियारा ॥
खंड-खंड साज पलंग औ पीढ़ी। मानहुँ इंद्रलोक के सीढ़ी॥
चंदन बिरिछ सुहाई छाहां। अमृत कुंड भरे तेहि माहां
फरे खजहजा दारिउँ दाखा। जो ओहि पंथ जाइ सो चाखा ॥
कनक छत्र सिंघासन साजा। पेठत पंवरि मिला लेइ राजा ॥
चढ़ा साह, गढ़ चितउर देखा । सब संसार पायें तर लेखा ॥
देखा साह गगन गढ़, इंद्रलोक कर साज।
कहिय राज फुर ताकर, करै सरग अस राज ॥

षट् ऋतु, बारह मास वर्णन-उद्दीपन की दृष्टि से तो इन पर विचार 'विप्रलंभ श्रृंगार' और 'संयोग श्रृंगार' के अंतर्गत हो चुका है। वहाँ इनके नाना दृश्यों का जो आनंददायक या दुःखदायक स्वरूप दिखाया गया है वह किसी अन्य (आलंबन रत्नसेन) के प्रति प्रतिष्ठित रतिभाव के कारण है। उद्दीपन में वर्णन दृश्यों के स्वतंत्र प्रभाव की दृष्टि से नहीं होता। पर यहाँ उन दृश्यों का विचार हमें इस दृष्टि से करना है कि उनका मनुष्य मात्र की रागात्मिका वृत्ति के आलंबन के रूप में चित्रण कहाँ तक और कैसा हुआ है। ऐसे दृश्यों में स्वतः एक प्रकार का आकर्षण होता है, यह बात तो सहृदय मात्र स्वीकार करेंगे। इसी आकर्षण के कारण प्राचीन कवियों ने प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का सूक्ष्म निरीक्षण करके तथा उनके संश्लिष्ट ब्योरों को संश्लिष्ट रूप में ही रखकर दृश्यों का मनोहर चित्रण किया है। पर जैसा कि पहले कह आए हैं, जायसी के ये वर्णन उद्दीपन की दृष्टि से हैं जिसमें वस्तुओं और व्यापारों की झलक मात्र-जो नामोल्लेख मात्र से भी मिल सकती है-काफी समझी जाती है। पर बहुत ही प्यारे शब्दों में दिखाई हुई यह झलक है बहुत मनोहर। कुछ उदाहरण 'विप्रलंभ श्रृंगार' के अंतर्गत दिए जा चुके हैं, कुछ और लीजिए-

अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई । मोहि बिनु पिउ को आदर देई? ॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी ॥
भा परगास काँस बन फूले। कंत न फिरे, बिदेसहि भूले॥
कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल, हाँ बिरहै जारी ॥

टप-टप बूँद परहिं, औ ओला । बिरह पवन होइ मारै झोला ॥

तरिवर झरहिं झरहिं बन ढाखा। भई ओनन्त फूलि-फरी सखा॥

बौरे आम फरै अब लागे। अबहुँ औ घर, कंत सभागे॥

यह झलक बारहमासे में हमें मिलती है। षट्ऋतु के वर्णन में सुखसंभोग का ही उल्लेख अधिक है, प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का बहुत कम। दोनों का वर्णन यद्यपि उद्दीपन की दृष्टि से है, दोनों में यद्यपि प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों की अलग-अलग झलक भर दिखाई गई है, पर एक-आध जगह कवि का अपना निरीक्षण भी अत्यंत सूक्ष्म और सुंदर है, जैसे-

चमक बीजु बरसे जल सोना। दादुर-मोर सब सुठि लोना ॥

इसमें बिजली का चमकना और उसकी चमक में बूंदों का सुवर्ण के समान झलकना इन दो व्यापारों की एक साथ योजना दृश्य पर कुछ देर ठहरी हुई दृष्टि सूचित करती है। यही बात बैसाख के इस रूपकवर्णन में भी है-

सरवर हिया घटत्त निति जाई। टूक-टूक होइ के बिहराई ॥

बिहरत हिया करहु, पिउ! टेका । दीठि दवंगरा, मेरवहु एका ॥

तालों का पानी जब सूखने लगता है तब पानी सूखे हुए स्थान में बहुत सी दरारें पड़ जाती हैं जिससे खाने कटे दिखाई पड़ते हैं। वर्षा के आरंभ की झड़ी (दवंगरा) जब पड़ती है तब वे दरारें फिर मिल जाती हैं। विदीर्ण होते हुए हृदय को सूखता हुआ सरोवर और प्रिय के दृष्टिपात को 'दवंगरा' बनाकर कवि ने प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का बहुत ही अच्छा परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त दो प्रस्तुत (वैसाख का वर्णन है इससे सूखते हुए सरोवर का वर्णन प्रस्तुत है, नागमती वियोगिनी है इससे विदीर्ण होते हृदय का वर्णन भी प्रस्तुत ही है) वस्तुओं के बीच सादृश्य की भावना भी अत्यंत माधुर्यपूर्ण और स्वाभाविक है। मैं तो समझता हूँ इसके जोड़ की सुंदर और स्वाभाविक उक्ति हिंदी काव्यों में बहुत ढूँढ़ने पर कहीं मिले तो मिले।

बारहमासे के संबंध में यह जिज्ञासा हो सकती है कि कवि ने वर्णन का आरंभ आषाढ़ से क्यों किया है, चैत से क्यों नहीं किया? बात यह है कि राजा रत्नसेन ने गंगा-दशहरे को चित्तौर से प्रस्थान किया था जैसा कि इस चौपाई से प्रकट है-

दसवें दावें कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा ॥

यह वचन नागमती ने उस समय कहा है जब राजा रत्नसेन सिंहल से लौटकर चित्तौर के पास पहुँचा है। इसका अभिप्राय यह है कि जो केवट दसहरे के दिन मेरी दशम दशा (मरण) करके गया था, जान पड़ता है कि वह नाव लेकर आ रहा है। दशहरे के पाँच दिन पीछे ही आषाढ़ लगता है इससे कवि ने नागमती की वियोगदशा का आरंभ आषाढ़ से किया है।

रूप-सौंदर्य-वर्णन- जैसा कि पहले कह आए हैं, रूप-सौंदर्य ही सारी आख्यायिका का आधार है अतः पदमावती के रूप का बहुत ही विस्तृत वर्णन तोते के मुँह से जायसी ने कराया है। यह वर्णन यद्यपि परम्परायुक्त ही है, अधिकतर परंपरा से चले आते हुए उपमानों के आधार पर ही है, पर कवि की भोली-भाली और प्यारी भाषा के बल से यह श्रोता के हृदय को सौंदर्य की अपरिमित भावना से भर देता है। सृष्टि के जिन-जिन पदार्थों में सौंदर्य की झलक है, पदमावती की रूपराशि की योजना के लिए कवि ने मान सबको एकत्र कर दिया है। जिस प्रकार कमल, चंद्र, हंस आदि अनेक पदार्थों से सौंदर्य लेकर तिलोत्तमा का रूप संघटित हुआ था उसी प्रकार कवि ने मानो पदमावती का रूपविधान किया है। पदमावती का सौंदर्य अपरिमेय है, अलौकिक है और दिव्य है। उसके वर्णन मात्र से, उसकी भावना मात्र से, राजा रत्नसेन बेसुध हो जाता है। उसकी दृष्टि संसार के सारे पदार्थों से फिर जाती है, उसका हदय उसी रूपसागर में मग्न हो जाता है। यह जोगी होकर निकल पड़ता है।

पदमावती के रूप का वर्णन दो स्थानों पर है। एक स्थान पर हीरामन सूज चित्तौर में राजा रत्नसेन के सामने वर्णन करता है। दूसरे स्थान पर राघव चेतन दिल्ली में बादशाह अलाउद्दीन के सामने। दोनों स्थानों पर वर्णन नख-शिख की प्रणाली पर और सादृश्यमूलक है अत: उसका विचार अलंकारों के अंतर्गत करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। यहाँ पर केवल उन दो-चार स्थलों का उल्लेख किया जाता है जहाँ सौंदर्य के सृष्टिव्यापी प्रभाव को लोकोत्तर कल्पना पाई जाती है, जैसे-

सरवर तीर पदमावती आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई ॥

ओनई घटी, परी जग छाँहां।

बेनी छोरि झार जौ बारा। सरंग पतार होइ अंधियारा ॥

केशों की दीर्घता, सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उनके प्रभाव की उद्‌भावना की है। इस छाया और अंधकार में माधुर्य और शीतलता है, भीषणता नहीं।

पदमावती के पुतली फेरने से उत्पन्न इस रस-समुद्र-प्रवाह को तो देखिए-

जग डोलै डोलत नैनाहां। उलटी अड़ार जाहिं पल मांहां।

जबहिं फिराहिं गगन गहि बोरा। अस वै भँवर चक्र के जोरा ॥

पवन झकोरहिं देइ हिलोरा। सरग लाइ भुंइं लाइ बहोरा ॥

उसके मंद मृदु ह्रास के प्रभाव से देखिए कैसी शुभ्र उज्ज्वल शोभा कितने रूप धारण करके सरोवर के बीच विकीर्ण हो रही है-

बिगसा कुमुद देखि ससिरेखा। भई तहं ओप जहां जो देखा।

पावा रूप, रूप जस चहा। ससिमुख सहुँ दरपन होइ रहा ॥

नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर।

हंसत जो देखा हंस भा, दासन ज्योति नाग हीर॥

पदमावती के हँसते ही चंद्रकिरण सी आभा फूटी इससे सरोवर के कुमुद खिल उठे यहीं तक नहीं, उसके चंद्रमुख के सामने वह सारा सरोवर दर्पण सा हो उठा अर्थात् उसमें जो-जो सुंदर वस्तुएँ दिखाई पड़ती थीं वे सब मानो उसी के अंगों की छाया थीं। सरोवर में चारों ओर जो कमल दिखाई पड़ रहे थे वे उसके नेत्रों के प्रतिबिंब थे, जल जो इतना स्वच्छ दिखाई पड़ रहा था। वह उसके स्वच्छ, निर्मल शरीर के प्रतिबिंब के कारण। उसके ह्रास की शुभ्र कांति की छाया वे हंस थे जो इधर-उधर दिखाई पड़ते थे और उस सरोवर में (जिसे जायसी ने एक झील या छोटा समुद्र माना है) जो हीरे थे वे उसके दर्शनों की उज्ज्वल दीप्ति से उत्पन्न हो गए थे। पदमावती का रूपवर्णन करते-करते किस अनंत सौंदर्य-सत्ता की ओर कवि की दृष्टि जा पड़ी है। जिसकी भावना संसार के सारे रूपों को भेदती हुई उस मूल सौंदर्यसत्ता का कुछ आभास पा चुकी है यह सृष्टि के सारे सुंदर पदार्थो में उसी का प्रतिबिंब देखता है।

इसी प्रकार उस 'पारसरूप' का आभास-जिसके छायास्पर्श से यह जगत् रूपवान है-जायसी ने उस स्थल पर भी दिया है जहाँ अलाउद्दीन ने दर्पण में पदमावती के स्मित आनन का प्रतिबिंब देखा है-

बिहंसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह दरपन महँ देखी ॥

होतहिं दरस, परस भा लोना । धरती सरग भएउ सब सोना ॥

उसकी एक जरा सी झलक मिलते ही सारा जगत् सौंदर्यमय हो गया, जैसे पारस मणि के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। उस 'पारस-रूप-दरस' के प्रभाव से शाह बेसुध हो जाता है और उस दर्पण को एक सरोवर के रूप में देखता है।

'नख-सिख खंड' में भी दाँतों का वर्णन करते-करते कवि की भावना उस अनंत ज्योति की ओर बढ़ती जान पड़ती है-

जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतै जोति-जोति ओहि भाई।।

रवि-ससि नखत दीपहिं ओहि जोती। रत्न पदारथ मानिक मोती।।

जहँ-जहँ बिहंसि सुभावहिं हँसी। तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी।।

इसी रहस्यमय परोक्षाभास के कारण जायसी की अत्युक्तियां उतनी नहीं खटकतीं जितनी श्रृंगाररस के उट पद्यों की वे उक्तियाँ जो ऊहा अथवा नापजोख द्वारा निर्धारित की जाती हैं। 'शरीर की निर्मलता' और 'जल की स्वच्छता' के बीच जो बिंब-प्रतिबिंब-संबंध जायसी ने देखा है वह हृदय को कितना प्यारा जान पड़ता है। इसके सामने बिहारी की यह स्वच्छता जिसमें भूषण 'दोहरे, तिहरे, चोहरे' जान पड़ते हैं, कितनी अस्वाभाविक और कृत्रिम लगती है। शरीर के ऊपर दर्पण के गुण का यह आरोप भद्दा लगता है। यह बात नहीं है कि उपमान के चाहे जिस गुण का आरोप हम उपमेय में करें वह मनोहर ही होगा।

कवियों की प्रथा के अनुसार पदमावती की सुकुमारता का भी अत्युक्तिपूर्ण वर्णन जायसी ने किया है। उसकी शय्या पर फूल की पंखड़ियाँ चुन-चुनकर बिछाई जाती हैं। यदि कहीं समूचा फूल रह जाए तो रात भर नींद न आए-

पखुरी काढ़हिं फूलन्ह सेंती। सोई डासहिं सौंर सपेती ।।

फूल समूचे रहै जो पावा। व्याकुल होइ नींद नहिं आवा ।।

बिहारी इससे भी बढ़ गए हैं। उन्होंने अपनी नायिका के सारे शरीर को फोड़ा बना डाला है। वह तो 'झिझकति हिये गुलाब के झवाँ झवॉचत पाय'। जायसी ने भी इस प्रकार की भद्दी अत्युक्तियाँ की हैं, जैसे-

नस पानन्ह के काढ़हिं हेरी। अधर न गड़ै फाँस ओहि केरी ।।

मकरि क तार ताहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू ।।

सुकुमारता की ऐसी अत्युक्तियाँ अस्वाभाविकता के कारण, केवल ऊहा द्वारा मात्रा या परिमाण के आधिक्य की व्यंजना के कारण कोई रमणीय चित्र सामने नहीं लातीं।

प्राचीन कवियों के 'शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्य' को जो प्रभाव हृदय पर पड़ता है। वह इस खरोंट और छालेवाले सौकुमार्य नहीं। कहीं-कहीं गुण की अवस्थिति मात्र का दृश्य जितना मनोरम होता है उतना उस गुण के कारण उत्पन्न दशांतर का चित्र नहीं। जैसे, नायिका के होठ की ललाई का वर्णन करते-करते यदि कोई 'तगुण' अलंकार की झोंक में यह कह डाले कि जब वह नायिका पीने के लिए पानी होठों से लगाती है तब वह खून हो जाता है तो यह दृश्य कभी रुचिकर नहीं लग सकता। ईगुर, बिंबा आदि सामने रखकर उस लाली की मनोहर भावना उत्पन्न कर देना ही काफी समझना चाहिए। उस लाली के कारण क्या-क्या बातें पैदा हो सकती हैं, इसका हिसाब-किताब बैठाना जरूरी नहीं।

इसी प्रकार की विस्तारपूर्ण अत्युक्ति ग्रीवा की कोमलता और स्वच्छता के इस वर्णन में भी है-

पुनि तेहि ठाँव परीं तिनि रेखा। घूँट जो पीक लीक सब देखा।।

इस वर्णन से तो चिड़ियों के अंडे से तुरंत फूटकर निकले हुए बच्चे का चित्र सामने आता है। वस्तु या गुण का परिमाण अत्यंत अधिक बढ़ाने से ही सर्वत्र सरसता नहीं आती। इस प्रकार की वस्तुव्यंग्य उक्तियों की भरमार उस काल से आरंभ हुई जब से 'ध्वनि' का आग्रह बहुत बढ़ा, और सब प्रकार की व्यंजनाएँ उत्तम काव्य समझी जाने लगीं। पर, वस्तुव्यंजनाएँ ऊहा द्वारा ही की और समझी जाती हैं, सहृदयता से उनका नित्य संबंध नहीं होता।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) पदमावत में सिंहलद्वीप किसका प्रतीक है।

(2) पदमावत के प्रमुख पात्र कौन हैं ?

(3) पदमावत में जायसी ने कहां का कथानक लिया है।

19.4 सारांश

वस्तुवर्णन का संक्षेप में इतना दिग्दर्शन कराके हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि जिन-जिन वस्तुओं का विस्तृत वर्णन हुआ है उन सबको हम 'आलंबन' मानते हैं। जो वस्तुएँ किसी पात्र के आलंबन के रूप में नहीं आतीं उन्हें कवि और श्रोता दोनों के आलंबन समझना चाहिए। कवि ही आश्रय बनकर श्रोता या पाठक के प्रति उनका प्रत्यक्षीकरण करता है। उनके प्रत्यक्षीकरण में कवि की भी वृत्ति रमती है और श्रोता या पाठक की भी। वन, सरोवर, नगर, प्रदेश, उत्सव, सजावट, युद्ध, यात्रा, ऋतु इत्यादि सब वस्तुएँ और व्यापार मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति के सामान्य आलंबन हैं। अत: इनके वर्णनों को भी हम रसात्मक वर्णन मानते हैं। आलंबन मात्र के वर्णन में भी रसात्मकता माननी पड़ेगी। 'नख-शिख' की पुस्तकों में श्रृंगार रस के आलंबन का ही वर्णन होता है और वे काव्य की पुस्तकें मानी जाती हैं। जिन वस्तुओं का कवि विस्तृत चित्रण करता है उनमें से कुछ शोभा या सौंदर्य या चिर साहचर्य के कारण मनुष्य के रतिभाव का आलंबन होती हैं; कुछ भव्यता, विशालता, दीर्घता आदि के कारण उसके आश्चर्य का; कुछ घिनौने रूप के कारण जुगुप्सा का इत्यादि। यदि बलभद्र कृत 'नख-शिख' और गुलाम नवी कृत 'अंगदर्पण' रसात्मक काव्य हैं तो कालिदास कृत हिमालयवर्णन और भू-प्रदेश-वर्णन भी।

19.5 कठिन शब्दावली :

बहुरि - बहू। रघुराम - रघुनाथ। घन-आसमान। भूमि-धरती। आकास - आकाश। मलय-पर्वत। पनिहारी- पानी लाने वाली। दीठी - देखकर। सरग - स्वर्ग।

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

(1) उत्तर - हृदय का।

(2) उत्तर - पद्मावती, नागमति, रत्नसेन।

(3) उत्तर - भारतीय कथानक।

19.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) रामचन्द्र शुक्ल - पद्मावत।

(2) श्री निवास मिश्र - जायसी ग्रंथावली।

(3) कमल कुल श्रेष्ठ -मलिक मुहम्मद जायसी ।

19.8 सात्रिक प्रश्न

(1) पद्मावत का सार अपने शब्दों में लिखों ।

(2) पद्मावत के उद्देश्य का स्पष्ट करे ।

(3) पद्मावत की विशेषताओं को स्पष्ट करें।

****

इकाई–20

जायसी के काव्य में अप्रस्तुत विधान

संरचना

20.1 भूमिका

20.2 उद्देश्य

20.3 जायसी के काव्य में अप्रस्तुत विधान

20.3.1 साम्यमूलक अप्रस्तुत विधान

20.3.2 अतिशयमूलक अप्रस्तुत-विधान

20.3.3 औचित्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

20.3.4 वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

20.3.5 वक्रतामूलक अप्रस्तुत-विधान

20.3.6 वैचित्र्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

स्वयं आकलन के प्रश्न

20.4 सारांश

20.5 कठिन शब्दावली

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

20.7 संदर्भित पुस्तकें

20.8 सात्रिक प्रश्न

20.1 भूमिका

अप्रस्तुत-विधान एक काव्य-सौन्दर्य मापक काव्यशास्त्रीय अवधारणा है, जो मात्र उपमान या अलंकार-विधान तक सीमित न रहकर अपने व्यापक अर्थों में, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, शब्द-शक्ति आदि प्रस्तुत के अतिरिक्त अन्य रूप विधानों को समाहित किए हुए है। प्रथम अध्याय में अप्रस्तुत-विधान के सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत अप्रस्तुत-विधान का अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, शब्द-शक्ति आदि से पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाते हुए उनकी स्थिति एवं महत्व के विषय में विवेचन किया जा चुका है। अलंकार, अप्रस्तुतों के योग में विशिष्ट भूमिका का वहन करते हैं। अलंकार काव्य के शोभाकारक धर्म हैं। ये काव्य को प्रभावी, रोचक, स्पष्ट एवं अलंकृत अभिव्यक्ति क्षमता प्रदान करते हैं। अप्रस्तुत-विधान के प्रभावी, मार्मिक एवं व्यंजक रूप में अलंकार सार्थक योग देते हुए प्रस्तुत की श्रीवृद्धि करते हैं।

20.2 उद्देश्य (1) जायसी के पद्मावत की जानकारी।

(2) अप्रस्तुत विधान का बोध।

(3) जायसी के काव्य में अप्रस्तुत विधान के प्रयोग का बोध।

20.3 जायसी के काव्य में अप्रस्तुत विधान

अप्रस्तुत-विधान का वर्ग विभाजन कवि के छः मानस व्यापारों के आधार पर करते हुए उसे छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। उसी छः मानस-पर व्यापारों के परिप्रेक्ष्य में जायसी के काव्य में अप्रस्तुत-विधान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है -

1. साम्यमूलक अप्रस्तुत विधान
   (क) रूपसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान
   (ख) धर्मसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान
   (ग) प्रभावसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान
   (घ) व्यंग्यसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान
2. अतिशयमूलक अप्रस्तुत-विधान
3. औचित्यमूलक अप्रस्तुत-विधान
4. वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान
5. वक्रतामूलक अप्रस्तुत-विधान
6. वैचित्र्यमूलक (चमत्कारमूलक) अप्रस्तुत-विधान

सूफी महाकवि जायसी के काव्य में विभिन्न अप्रस्तुतों के माध्यम से प्रस्तुत की प्रभावी एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है जो हृदयग्राही बन पड़ी है। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है

'अधिकतर अलंकारों का विधान सादृश्य के आधार पर होता है। जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग अधिक किया है। सादृश्यता की योजना दो दृष्टियों से की जाती है- स्वरूपबोध के लिए और भाव को तीव्र करने के लिए। कवि लोग सादृश्य वस्तुएँ भाव तीव्र करने के लिए ही अधिकतर लाया करते हैं। पर बाह्य कारणों से, अगोचर तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए जहाँ सादृश्य का आश्रय लिया जाता है, वहाँ कवि का लक्ष्य स्वरूप बोध भी रहता है।'

अतः अप्रस्तुत-विधान के वर्ग विभाजन के आधार पर पृथक् पृथक् रूप से जायसी के काव्य में निहित अप्रस्तुत-विधान का विवेचन-विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

20.3.1 साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान का मुख्य प्रयोजन वर्ण्य-विषय का स्वरूप-बोध एवं भावोत्कर्ष होता है। साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान की सफलता स्वरूप बोध, सौन्दर्य-बोध एवं भावोत्कर्ष के सुसामंजस्य में निहित है। साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान के अंतर्गत गृहीत सामान्य विषय को 'उपमान' अथवा 'अप्रस्तुत' कहा जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य रूप, गुण, क्रिया अथवा भाव को स्पष्ट एवं सुन्दर बनाना हुआ करता है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत समान भाव के बोधक और उत्तेजक हों। साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान के माध्यम से रूप-आकार, गुण, धर्म तथा क्रिया की समता के प्रभाव को ग्राह्य एवं प्रभावी रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। कवि प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मध्य साम्य तत्व को रखता है, जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत की स्पष्टता प्रभावपूर्ण ढंग से लक्षित होती है। साम्यमूलक अप्रस्तुतों की विधान-समता के कारण वर्ण्य-वस्तु की स्पष्टता के साथ-साथ उसमें सजीवता का संचार भी होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साम्य के प्रमुख वर्गों का निर्धारण करते हुए माना है कि ''हमारे यहाँ सादृश्य तीन प्रकार के माने गये हैं सादृश्य (रूप की समानता), साधर्म्म (धर्म अर्थात् गुण, क्रिया आदि की समानता) तथा शब्द साम्य (केवल शब्द या नाम के आधार पर समानता)। इसी प्रकार, आगे शुक्ल जी स्पष्ट करते हैं कि सादृश्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी केवल प्रभाव- साम्य का हल्का-सा संकेत लेकर ही अप्रस्तुत को रखा जाता है।

जायसी के काव्य में रूप, आकार, गुण, प्रभाव आदि के आधार पर साम्यमूलक अप्रस्तुततों का सफल एवं व्यंजक विधान हुआ है जो प्रस्तुत की श्रीवृद्धि में आवश्यक योग प्रदान करता है। अत: जायसी के काव्य में साम्य मूलक अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत चार प्रकार का साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान देखने को मिलता है।

(क) रूपसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

सादृश्य के आधार पर ही प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के रूप की अभिव्यंजना की जाती है। इस रूपसाम्य का मुख्य उद्देश्य वर्ण्य विषय के स्वरूप-बोध के साथ ही सौन्दर्य-बोध तथा भाव-बोध की तीव्रानुभूति की प्रतीति कराना होता है। पं. रामदहिन मिश्र के अनुसार- 'काव्य के लिए सादृश्य में सौन्दर्य का होना आवश्यक है। इसी से पंडित राज ने उपमा के लक्षण में लिखा है कि वाक्यार्थ को सुशोभित करने वाले सुन्दर सादृश्य का नाम 'उपमा अलंकार' है। सुन्दरता का अर्थ चमत्कार होना और चमत्कार का अर्थ है वह विशेष प्रकार का आनन्द जो सादृश्यों का हृदयाह्लादक होता है, सहृदय की सुन्दरता के यथार्थ का पारखी है।'

इसी प्रकार डॉ. नगेन्द्र ने भी सादृश्य का उद्देश्य वर्ण्य-विषय में रूप, आकार को स्पष्ट करना मानते हुए कहा है कि ''सादृश्य मूलक अप्रस्तुत का प्रयोग वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करने के निमित्त किया जाता है।''

जायसी का साम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान सौन्दर्यबोधक एवं प्रभावोत्पादक होने के साथ-साथ वर्ण्य-वस्तु का चित्र अंकित करने में भी सक्षम है। कवि जायसी ने पद्मावती के आकर्षणयुक्त तरंगित रूप को चित्रित करते हुए कहा है -

जोबन भर भादौं जस गंगा। लहरें दैइ, समाइ न अंगा।

यहाँ कवि ने यौवन का साम्य 'भादौं की गंगा' अप्रस्तुत से किया है। जिस प्रकार भादौं मास में गंगा नदी अपने उफान पर होती है। उसी प्रकार, पद्मावती की यौवन रूपी लहरें अंगों में समा नहीं पा रही है। पद्मावती की युवावस्था एवं उसके सौन्दर्य रूप को कवि ने भादों की गंगा उपमान से प्रभावी एवं आकर्षक रूप में चित्रित किया है।

जायसी द्वारा उपमानों का सफल चुनाव ऋतु के अनुसार पाई जाने वाली वस्तुओं की समानता के अंतर्गत भी विशेष रूप में किया गया है। इस प्रकार का वर्णन नागमती के विरह वर्णन में देखने को मिलता है, जहाँ प्रस्तुत भी सामने है और अप्रस्तुत भी। वर्षा ऋतु में हिंडोले पर सब झूल रहे हैं, विरहिणी का हृदय रो रहा है। एक ओर छप्पर चू रहा है तथा दूसरी ओर विरहिणी की आँखें।

बरसै मेघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी।

दुर्लभ और कठिन पथ के लिए कवि द्वारा प्रयुक्त सुई की नोंक का उपमान अत्यन्त सजीव बन पड़ा है।

पै सुठि अगम पंथ बड़ बाँका । तस मारग जस सुई क नाका॥

अत: कवि ने रूपसाम्यमूलक अप्रस्तुतों के अंतर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग करते हुए विभिन्न उपमानों के माध्यम से प्रस्तुत को प्रभावी रूप में निरूपित किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुत अत्यन्त सार्थक बन पड़े हैं। प्रस्तुत के स्वरूप बोध, सौन्दर्य बोध के साथ ही भावों की तीव्रानुभूति कराने में जायसी के अप्रस्तुत सक्षम हैं।

(ख) धर्मसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

धर्मसाम्य समता के क्षेत्र में आन्तरिक सौन्दर्य को स्पष्ट करने का अधिक सामर्थ्य होता है। कवि रूप एवं आकार के सादृश्य को प्रौढ़ता देने हेतु धर्म साम्य का विधान करता है। भावों की तीव्रानुभूति धर्मसाम्य द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म अभिव्यंजना रूप में की जा सकती है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ''साधर्म्यमूलक उपमानों का उद्देश्य धर्म अथवा गुण की अनुभूति में सहायक होता है। सादृश्य-विधान के द्वारा वहाँ उसका अभीष्ट वस्तु के धर्म अथवा गुण की अनुभूति को संवेदनीय बनाना होता है। आधुनिक उपमान जिनमें लक्षणा का चमत्कार प्राय: वर्तमान रहता है, साधर्म्यमूलक ही होते हैं।''

जायसी के काव्य में निहित धर्मसाम्य पर आधारित अप्रस्तुत-विधान विभिन्न काव्य-स्थलों पर दृष्टिगत होता है। संयोग में मानव हृदय का खिलना, प्रसन्न रहना तथा वियोग में विरह से पीड़ित एवं शोकातुर रहना आदि 'पदमावत' के वसन्त खण्ड में कवि ने वृक्ष के पत्ते झड़ने को अर्थात् पतझड़ को वियोग अवस्था तथा नवीन कोमल पल्लवों के आगमन को संयोग अवस्था कहा है। प्रकृति मानव की सहचरी है। इसका मानव के साथ धर्मसाम्य दिखलाते हुए जायसी पतझड़ और वसन्त अप्रस्तुतों के माध्यम से वियोग एवं संयोग दशाओं को सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत करते हैं -

पियर पात दुख झरे निपाते। सुख पल्लव उपने होइ राते।

कवि ने नेत्रों की चपलता को मृग-चपलता से साम्य प्रस्तुत करते हुए उनके भोलेपन को व्यंजित किया है।

... खंजन लरहि, मिरिग जनु भूले।

विरह-शोक से संतृप्त नायिका की शारीरिक दशा को सूखे पत्तों के समान बताते हुए उनमें साम्य का प्रस्तुतीकरण अत्यंत प्रभावी बन पड़ा है -

तन जस पियर पात भा भोरा। विरह न रहे पवन होइ झोरा॥

यहाँ पर उपमा द्वारा नायिका शरीर के अत्यधिक कृशकाय रूप को व्यंजित किया गया है।

मानव जीवन के उत्तम और अधम रूप को व्यंजित करते हुए जायसी दूध, मलाई तथा घी के उपमान को अपनाते हैं। यदि दूध की मलाई अच्छी होगी तो संभवत: घी भी बढ़िया होगा। ऐसे ही मनुष्य यदि अपने सांसारिक जीवन को श्रेष्ठ एवं योग्य बनायेगा तो उसका परिणाम भी सदैव श्रेष्ठ ही होगा।

....यह जग जैसा दूध के साधन।

यहाँ दूध अप्रस्तुत के माध्यम से जीवन एवं जगत में धर्मसाम्य प्रदर्शित किया गया है।

विरह को ग्रीष्म से, प्रिय मिलन की सूचना को वर्षा आगमन सूचना द्वारा तथा हर्षोल्लास को फुलवारी से एवं आशा को नवांकुर के फूटने से कवि ने मनोहारी ढंग से निरूपित किया है, जो धर्मसाम्य का उत्कृष्ट उदाहरण है -

जस भुई दहि असाढ़ पलुहाई। परहिं बुंद औ सोंध बसाई।
ओहि भाँति पलुही सुख बारी। उठे करिल नव कॉप सँवारी॥

पद्मावती की संयोगावस्था का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार चातक को स्वाति की बूँद मिलने पर वह उसके लिए सुख शांति का कारण बनती है उसी प्रकार धर्मसाम्य प्रदर्शित करते हुए पद्मावती की कामेच्छा पूर्ति को उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा चातक, स्वाती अप्रस्तुतों के माध्यम से निरूपित किया गया है, जो धर्मसाम्य का सुन्दर उदाहरण है –

पिउ-पिठ करत जो सूखि रहि, धनि चातक की भाँति।

परी सो बूंद सीप जनु, मोती होड़ सुख साँति॥

बिम्ब प्रतिबिम्बोपमा अलंकार के अन्तर्गत उपमेय और उपमान के कहे हुए भिन्न–भिन्न धर्मो का परस्पर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है। कवि ने बाला को कमल की उपमा और प्रेमभाव को सुरभि की उपमा दी है। जैसे सूर्य कमल को विकसित कर उसे रूप लावण्य एवं सुरभिपूर्ण बनाता है, वैसे ही भौंरा रूपी प्रेमी कली को प्रेमभाव से पुलकित करते हुए लावण्ययुक्त बनाता है।

(ग) प्रभावसाम्यमूलक अप्रस्तुत–विधान

रूपसाम्यमूलक अप्रस्तुत–विधान और धर्मसाम्यमूलक अप्रस्तुत–विधान की अपेक्षा प्रभावसाम्यमूलक अप्रस्तुत–विधान अत्यधिक सूक्ष्म एवं संवेद्य है। प्रथम में कवि बाह्य–सौन्दर्य की अभिव्यंजना का प्रयास करता है लेकिन प्रभाव साम्य में अनुभूति के द्वारा होने वाले साम्य–प्रभाव का संवेदनीय रूप प्रस्तुत करता है, जो अत्यन्त सूक्ष्म और भावनात्मक है। प्रभाव साम्य के द्वारा अनुभूति से तीव्रता, प्रभावोत्पादकता, स्पष्टता एवं लाक्षणिकता का संचार होता है। प्रभाव–साम्य अप्रस्तुत में अनुभूति की सूक्ष्मता एवं संवेदनशीलता के विषय में पं. रामदहिन मिश्र का मत है कि – ''प्रभाव–साम्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वस्तु के प्रत्येक कार्य या गुण का पूर्णतः साम्य हो। सादृश्य और साधर्म्य के संकेत वा सूत्रमात्र से भी भाव की श्रीवृद्धि हो तो पूरा आरोप अनावश्यक है। यदि सादृश्य और साधर्म्य प्रभाव–विस्तारक नहीं तो वह उपमान निर्जीव है। अप्रस्तुत– योजना में प्रभाव की क्षमता उपेक्षणीय नहीं है।''

प्रभाव की अनुभूति की महत्ता प्रभावसाम्य में अत्यधिक है – सादृश्य तथा साधर्म्य की अपेक्षाकृत परन्तु इसके उपरान्त भी साधर्म्य और प्रभावसाम्य में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर है। इस विषय में डॉ. नगेन्द्र का मत है ''प्रभावसाम्य और धर्मसाम्य में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया जा सकता। वास्तव में प्रभाव साम्य साधर्म्य का सूक्ष्मतर रूप ही है। इसका प्रयोग वस्तु अथवा व्यक्ति के गुण को संवेदनीय बनाने के स्थान पर किसी प्रभाव की अनुभूति को स्पष्टतर करने के निमित्त होता है। इसका भी सौन्दर्य बहुत कुछ लक्षणा पर ही आश्रित रहता है।

जायसी के काव्य में प्रभावसाम्यमूलक अप्रस्तुतों का सफल एवं मनोहारी विधान हुआ है जो अपनी विलक्षणता एवं विशिष्ट प्रभावोत्पादक को समाहित किए हुए है। पक्षी और मानव में हृदय साम्य के द्वारा विरह की तन्मयता एवं तल्लीनता की सार्थक अभिव्यक्ति की गई है। नागमती के विरह–विलाप से द्रवित होकर पक्षी का उसके प्रति उमड़ा हुआ प्रेमभाव कवि द्वारा प्रभावसाम्य के आधार पर प्रस्तुत किया गया है –

फिरि फिरि रोव, कोई नहिं डोला। आधी राति बिहंगम बोला।

'तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी'।

संयोग में वर्षा कितनी सुहावनी एवं सुखद प्रतीत होती है तथा वियोग में वही वर्षा दुखदायी एवं कष्टदायी लगती है। लक्ष्योपमा द्वारा इस भाव को प्रकट करते हुए कवि कहता है कि –

चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना॥

एक अन्य स्थल पर, रत्नसेन जब पद्मावती की प्राप्ति न होने पर नैराश्यभाव में डूब जाता है। उस समय तोते और सेमल के फल के अप्रस्तुतों के द्वारा नैराश्य प्रभाव को अभिव्यक्त करते कवि कहता है कि जैसे तोता सेमल के फल को मीठा जानकार चोंच मारता है और उसे नीरस रूई की प्राप्ति होती है, वैसे ही रत्नसेन ने बड़ी आशाओं से पद्मावती की प्राप्ति के लिए पूजा की थी परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। यहाँ नैराश्य में दोनों पर पड़ने वाले प्रभावों में उपयुक्त साम्य आरोपित किया गया है।

सुफल लागि पग टेकेऊँ तोरा। सुआ क सेंवर तू भा मोरा।

विरह शोक से संतप्त सारस जोड़ी के अप्रस्तुत द्वारा नागमती को विरह-वेदना को प्रभाव साम्य रूप में चित्रित किया गया है जो अत्यन्त हृदयग्राही बन पड़ा है।

सारस जोरी किमि हरी मारि गइउ किं खग्गि।

झूरि झुरि पांजरि धनि भाई विरह कै लागी अग्गि॥

जिस प्रकार विरह में सारस की जोड़ी शोकातुर एवं अत्यन्त व्याकुल रहती है तथा प्रतिपल उत्सुकता से विरहाग्नि की समाप्ति के लिए अपने प्रिय से मधुर मिलन की एवं प्रिय-प्राप्ति की कामना करती है। उसी प्रकार नागमती अपने प्रिय रत्नसेन के विरह में प्रतिपल विरहाग्नि की शांति के लिए मिलनातुर होकर व्याकुल एवं बेचैन है।

पद्मावती के प्रथम दर्शन से मूर्च्छित राजा रत्नसेन को होश आने पर अपने हृदय पर चन्दन से लिखे अक्षर पद्मावती न पाने पर जलते हुए बाणों के समान प्रतीत होने लगे। यहाँ वे अक्षर बाण रूप में उसके हृदय में लग गये हैं जिनसे प्रतीत होता है कि लिखे हुए शब्द उसके हृदय में बाणों से भी तीखी चुभन एवं कष्ट पैदा कर रहे हैं। अर्थात् अक्षरों के लिए बाणों का अप्रस्तुत एवं दोनों से होने वाले प्रभाव एवं समान पीड़ा को कवि ने अत्यन्त प्रभावसाम्य रूप में निरूपित किया है।

चन्दन आँक दाग हिय परे। बुझहिं न ते आखर परजरे ॥

जनु सर आगि होइ हिय लागे। सब तन दागि सिंघ बन दागे।

सूर्य पर आश्रित अंधेरे-उजियारे से प्रभावसाम्य व्यंजित करते हुए जायसी कहते हैं -

'अथएउ सुरुज होइ अब साँझा॥'

को अब भोर देइ जग माँझा ॥

दिया बुझाई होई अंधियारा।

को अब लेसि करइ उजियारा॥

पति के सान्निध्य में नागमती का उज्ज्वल चाँद के सादृश रूपवती एवं शोभायमान बतलाना तथा पति से विछोह पर विरहणी रूप में उसे ग्रहण लगे चाँद के समतुल्य कहना, संयोग एवं वियोग में प्रकृति का मानवीय अवस्थाओं के साथ सार्थक प्रभावसाम्य पर आधारित दशा का द्योतक है।

चांद जैस धनि उजियारि अही। भा पिउ रोस, गहन अस गही

(घ) व्यंग्यसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

अप्रस्तुत कथन द्वारा प्रस्तुत की अनुभूति में तीव्रता एवं व्यंजकता लाने के लिए व्यंग्यसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान का प्रयोग किया जाता है। यह काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति को मार्मिकता एवं सजीवता से परिपूर्ण करते हुए व्यंग्यार्थ का प्रभावी निरूपण करता है। व्यंग्य-साम्य का विधान सांकेतिक भावना के आधार पर किया जाता है। संकेत मात्र द्वारा अर्थात् अप्रस्तुत के सांकेतिक विधान के माध्यम से प्रस्तुत अर्थ को व्यंग्य द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

व्यंग्यसाम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान का प्रयोग सामान्यत: अन्योक्ति, दृष्टांत, उदाहरण एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार के रूप में जायसी के काव्य में दृष्टिगत होता है। जायसी-काव्य में विभिन्न काव्य स्थलों पर व्यंग्यसाम्य की प्रतीति हुई है, जो अत्यन्त स्पष्ट, आकर्षक एवं व्यंजकता से परिपूर्ण है।

कवि ने प्रिय-मिलन की उत्कंठा एवं संयोग के प्रभाव को प्रकृति के द्वारा सांकेतिक व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जहाँ मिलन की अभिलाषा को प्रसिद्ध अन्योक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है, वहाँ कवि ने नागमती के विरह को मानसरोवर में खिले उस कमल के समान कहा है, जो बिना जल के सूख गया है। नागमती को उस लता के समान कहा है जो सूख चुकी है परन्तु यदि प्रियतम उसे फिर आकर सीखें अर्थात् मिलन का सुख दें तो वह फिर से पल्लवित हो सकती है।

कवँल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ ॥

कबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सीचौ आइ॥

यहाँ विरहणी को सूखी लता अप्रस्तुत द्वारा तथा पति को जल के अप्रस्तुत द्वारा दोनों में साम्य प्रदर्शित किया गया है जो सांकेतिक भावना की प्रमुखता अपने आप में लिए हुए है।

इसी प्रकार, कवि ने अभिमान को विनाशकारी मानते हुए दृष्टांत अलंकार के माध्यम से अभिव्यक्त किया है-

रावन लंक जारि सब तापा। रहा न जोबन, आव बुढ़ापा॥

कवि की व्यंजना है कि जो व्यक्ति अपने वैभव और सम्पत्ति पर अभिमान करता है उसका विनाश निकट है। इसके लिए लंकापति राजा रावण का दृष्टांत देकर साम्य का विधान किया गया है।

हर्ष और विषाद की अभिव्यंजना कवि ने बिजली के चमकने तथा बादलों के वर्षा करने आदि अप्रस्तुतों से की है जो व्यंग्य साम्य पर आधारित अप्रस्तुत हैं। नागमती रत्नसेन से उसकी खुशी एवं अपने दुखी हृदय के विषय में कहती है कि तुम हँसते हो ? तुमने तो दूसरे से प्रेम किया है, तुम्हारे मुख पर तो खुशी की बिजली चमक रही है अर्थात् प्रसन्न हो लेकिन मेरे मुख पर विरह पीड़ा के कारण बारिश अर्थात् अश्रु वर्षा हो रही है -

काह हँसो तुम मौसौं, किएउ ओर सौं नेह।

तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोहिं मुख बरिसै मेंह।

प्रसन्नता के लिए बिजली का चमकना अप्रस्तुत एवं दुखी हृदय अर्थात् अश्रु प्रवाह के लिए बारिश का अप्रस्तुत अत्यन्त सार्थक बन पड़ा है, जो व्यंग्यसाम्य को प्रकट करता है।

जायसी ने राजा की चिंता, अभिलाषा, उद्वेग को एक सम्मिश्रित भाव 'चातक के मुख में बूँद सेवाती' अप्रस्तुत के माध्यम व्यंजित किया है। पद्मावती की मिलन उत्कंठा पर रत्नसेन की चित्तवृत्ति का सूक्ष्म एवं सांकेतिक रूप चित्रित किया गया है।

जस चातक मुख बूँद सेवाती । राजा चख जोहत तेहि भाँती।

प्रेम रंग का साम्य प्रदर्शित करते हुए कवि कहता है कि जब तक पान, सुपारी और कत्था मिलकर, पिसकर एक नहीं हो जाते तब तक रंग नहीं देते, उसी प्रकार प्रेम भी मिलन के पश्चात् अपना रंग-रूप निखारता है।

पान, सुपारी, खैर जिमि मेरइ करै चकचून।

तौ लगि रंग न रांचे जौ लगि होइ न चून॥

पद्मावती की प्रेम भावनाओं को व्यंजित करते हुए अनन्य प्रेम का प्रतिपादन व्यंग्यसाम्य के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सुभर सरोवर हंस चल, घटतहि गए बिछोड़।

कँवल न प्रीतम परिहरै, सूखि पंक बरु होइ॥

यहाँ रत्नसेन को सरोवर अप्रस्तुत द्वारा तथा पद्मावती के मन को हंस अप्रस्तुत द्वारा चित्रित किया गया है। अभिव्यंजना व्यंग्य साम्य पर आधारित सार्थकता लिए हुए है। पद्मावती व्यंजित कर रही है कि उसका मन रूपी हंस अब सरोवर रूपी रत्नसेन के जल रूपी प्रेम के कम हो जाने पर उससे हट गया है परन्तु शरीर रूपी कमल उस सरोवर रूपी रत्नसेन का कभी परित्याग नहीं कर सकेगा, वह तो कीचड़ में भी अर्थात् उसकी कुवासनाओं में भी साथ रहेगा। इस प्रकार जायसी ने विरहणी के चित्रण में, हर्ष और विषाद में, चिन्ता, अभिलाषा एवं उद्वेग में तथा विभिन्न अन्यान्य रूपों में व्यंग्य साम्य पर आधारित अप्रस्तुतों का प्रभावी विधान किया है, जो अपनी व्यंजकता से प्रस्तुत की श्रीवृद्धि में सार्थक योग प्रदान करते हैं।

20.3.2 अतिशयमूलक अप्रस्तुत-विधान

अतिशयमूलक अप्रस्तुत-विधानमूल आधार अतिशयत है। काव्य में वर्ण्य विषय की तीव्र भावाभिव्यक्ति के लिए अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन हुआ करता है। कवि अपनी अनुभूति को सूक्ष्मता एवं अतिशयतापूर्ण अभिव्यक्त करके पाठक अर्थात् प्रत्येक सहृदय के लिए तीव्र रूप में ग्राह्य बनाने का प्रयत्न करता है। इसके लिए वह उपमान को उपमेय की तुलना में असीम काल्पनिक उड़ान की अतिशयता के साथ वर्णित करता है। अतः आश्चर्य, कौतूहल एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन शैली को अतिशयोक्ति का नाम दिया जाता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - ''अपने मूल रूप में अतिशयोक्ति का उद्देश्य उत्तेजना को संवेदनीय बनाना अर्थात् अपनी उत्तेजना को व्यक्त करना और दूसरों को उत्तेजित करना है। उत्तेजना के लिए चित्त के विस्तार और उत्कर्ष की अपेक्षा होती है - और चित्त के विस्तार और उत्कर्ष के लिए अपनी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कर कहना आवश्यक होता है। तभी अतिशयमूलक अलंकारों का जन्म होता है। भाव की उद्दीप्ति काव्य का मुख्य ध्येय होने के कारण अतिशय प्रायः कथन की सभी प्रणालियों में प्रच्छन्न अथवा प्रकाश रूप में वर्तमान तव में उसका मूल सम्बन्ध भावोद्दीप्ति से ही है।

इस श्रेणी में मुख्यतः अतिशयोक्ति, अत्युक्ति, उदात्त तथा विशेष आदि अलंकार आते हैं।

सूफी महाकवि जायसी का अतिशयमूलक अप्रस्तुत-विधान भावोनेजक एवं संवेदनशीलता से परिपूर्ण है। उन्होंने विशेष रूप से रूप वर्णन, विरह वर्णन तथा सौन्दर्य की अतिशयतापूर्ण अभिव्यक्ति में इन अप्रस्तुतों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसके अन्तर्गत जायसी के काव्य में अतिशयोक्ति के विभिन्न भेदों-प्रभेदों को देखा जा सकता है।

कवि आश्रयदाता शेरशाह के अतुलनीय साहस एवं शौर्य का वर्णन करते हुए कहता है। सूरवंश का वह शौर्यवान पुत्र है। उसके सामने कोई दृष्टि मिला नहीं सकता, अर्थात् किसी में उसका सामना करने की शक्ति नहीं है। जो देखता है. वही दृष्टि झुका लेता है।

साँह दीठि कै हेरि न जाई। जेहि देखा सो रहा सिर नाई

यहाँ कवि ने अतिक्रमातिशयोक्ति अलंकार द्वारा शेरशाह के अतुलनीय शौर्य एवं साहस को प्रस्तुत किया है। हाथियों के चलने से कर्म और शेषनाग में कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु जायसी ने यहाँ संबंधातिशयोक्ति अप्रस्तुत-विधान किया है।

कुरुम टुटै, भुइँ फटै तिन हस्तिन्ह के चाली।

गन्धर्वसेन के साम्राज्य की विशालता के लिए अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया गया है। छत्र के लिए अतिशयता से परिपूर्ण आकाश उपमान देना वह राजा के लिए सूर्य उपमान देना, इन अप्रस्तुतों से अतिशयोक्तिमूलक अप्रस्तुत-विधान जायसी काव्य में दृष्टिगत होता है।

छत्र गगन लगि ताकर, सूर तवै जस आप।

सभा कँवल अस बिगसै, माथे बड़ परताप।।

भौ और धनुष में रूपक है तथा उपमान रूप में सर कटाक्षों को लिया गया है। अतः रूपक और रूपकातिशयोक्ति द्वारा अप्रस्तुतों का विधान किया गया है।

भौंह धनुक साधे सर फेरै। नयन कुरंग भूलि जनु हेरै ।।

सुआ खण्ड में पद्मावती द्वारा सुआ के उड़ जाने पर जो दुख कवि ने व्यंजित किया है, उससे अतिशयता है। आसूँ को नक्षत्र अप्रस्तुत द्वारा एवं आँखों के लिए आकाश का अप्रस्तुत अतिशयमूलक अप्रस्तुत-विधान के माध्यम से विशिष्ट एवं सार्थक प्रतीति कराते हैं

एहि बिधि आँसु नखत होइ चूए। गगन छाँडि सरवर महँ ऊए।

विरहाधिक्य में, जायसी ने पद्मावती की विरह में प्रस्तुत दशा एवं उसको कल्प के समान बताते हुए अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णित किया है।

20.3.3 औचित्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

अप्रस्तुत-विधान के अंतर्गत अतिशयमूलक अप्रस्तुतों के पश्चात् औचित्यमूलक अप्रस्तुत-विधान को लिया जा सकता है। यह मूल रूप से कार्य-कारण श्रृंखला की औचित्य पर आधृत है। औचित्य निर्धारण का कारण अभिव्यंजना में अत्यधिक स्पष्टता, सुबोधता, प्रभावपूर्णता का समावेश होता है। इसके अन्तर्गत, तद्‌गुण, सार, समुच्चय, काव्यलिंग तथा प्रत्यनीक अलंकार आते हैं। औचित्यमूलक अप्रस्तुतों के विषय में डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि – ''औचित्यमूलक अलंकारों में तो मूलत: ही एक संगति वर्तमान रहती है जो हमारी वृत्तियों को सीधे रूप में ही समन्वित होने में सहायता देती है।'' औचित्यमूलक अलंकारों की महत्ता एवं उपयोगिता के संदर्भ में डॉ. महेन्द्र कुमार का मत है कि ''बिम्ब में स्वाभाविकता के विधायक होने के कारण ये विशेष महत्व रखते हैं। इन अलंकारों का मूल आधार है 'औचित्य' अथवा 'अन्विति' जिसकी सहायता से कवि अपने बिम्ब का निर्माण करते समय तत्सम्बन्धी विभिन्न प्रतीतियों को विशिष्ट क्रम में इस प्रकार से रखता है कि उसमें सहज स्वाभाविकता आह्लादक होकर आ जाती है। वस्तुत: अतिशयमूलक अलंकार बिम्ब विस्तार द्वारा जहाँ सहृदय के चित्त को चमत्कृत किया करते हैं वहाँ ये अलंकार उसमें अन्विति का सन्निवेश कर उसके मन का प्रसादन करते हैं। चूँकि चमत्कार की अपेक्षा प्रसादन कहीं अधिक प्रेय हुआ करता है, इसीलिए संभवत: दण्डी ने काव्य के भीतर स्वाभावोक्ति को काव्य के लिए ईप्सित कह दिया है। स्वाभावोक्ति, यथासंख्य, कारणमाला, एकावली आदि कतिपय अलंकार इसी वर्ग के हैं तथा जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया को अन्विति-जन्य प्रसादक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

जायसी के काव्य में औचित्य लोक न्याय के अनुरूप है। समस्त काव्य में औचित्यमूलक अप्रस्तुतों का सुन्दर एवं सहज प्रयोग किया गया है। समुच्चय अलंकार द्वारा स्पष्ट एवं प्रभावी रूप में वाक्य न्याय पर आधारित औचित्यमूलक अप्रस्तुत-विधान काफी सार्थक बन पड़ा है। प्रणय मान को चित्रित करते हुए पद्‌मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में पद्मावती की मिलन से पूर्व की दशा का वर्णन है। वह मन ही मन मिलन हेतु डरती है और कहती है कि हे जोगी (रतनसेन) मेरी बाँह को इस प्रकार मत पकड़ो। वह अपने को चेली मानती हुई उसके अंदर से अर्थात् उसके शरीर से कुरकुटा की दुर्गन्ध आने की बात कहती है-

सुकुचै डरै मनहि मन बारी। गहु न बाँह, रे जोगी भिखारी?॥

ओहट होसि, जोगी ! तोरि चेरी। अवै वास कुरकुटा केरी॥

इसी प्रकार, वाक्य-विन्यास पर आधारित भाव-सबलता का समुच्चय अलंकार द्वारा औचित्यमूलक अप्रस्तुत विधान सजीव चित्रण हुआ है।

20.3.4 वैषम्यमूलक अप्रस्तुत विधान

वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों के द्वारा वयं-विषय का प्रभावी एवं मार्मिक प्रस्तुतीकरण किया जाता है। काव्य में इनका प्रयोग विस्तार रूप से मिलता है। विरोध के माध्यम से वर्ण्य-विषय की प्रभाव तीव्रता को उक्ति चमत्कार के साथ वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों द्वारा काव्य में निरूपित किया जाता है। मानव जीवन विरोधी तत्वों का मेल है। अत: विषमता मानव जीवन में अंगीरूप होने के फलस्वरूप साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसी के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य में भी इसका विस्तारपूर्वक प्रयोग मिलता है। यद्यपि ''वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों का विधान साम्य, अतिशय अथवा औचित्यमूलक अप्रस्तुतों की तुलना में कम मिलता है परन्तु इसके साथ यह भी निश्चित है कि जहाँ पर इसकी नियोजना में कवि सफल हो जाता है वहाँ उसमें (बिम्ब में) एक अद्‌भुत सौन्दर्य की सृष्टि कर देता है। यह विरोध साधारणत: जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य, व्यक्ति, कार्य-कारण, क्रिया-फल, परिस्थिति, देश, काल तथा आधार-आधेय गत होता है और विरोध, वैषम्य अथवा विपर्यय द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

कवि की कल्पनाशक्ति की तीव्रता एवं संवेदनशीलता उसके वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान की परिचायक है। अप्रस्तुत, सूक्ष्म भावबोध के स्पष्टीकरण हेतु काव्य में निहित होते हैं। साम्य-मूलक अप्रस्तुतों में जहाँ दो या दो से अधिक वस्तुओं के साम्य अर्थात् एकरूपता को उद्घाटित किया जाता है, वहाँ वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों में अनेकरूपता को प्रतिपादित किया जाता है। अतः सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और विदग्ध कल्पना के आधार पर कोई कवि वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान के माध्यम से उक्ति चमत्कार द्वारा अद्‌भुत सौन्दर्य की सृष्टि कर सकता है।

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - ''साम्य और वैषम्यमूलक जितने अलंकार हैं, उनका प्रधान साधन कल्पना ही है। वस्तु और भाव के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिये कल्पना का योग अनिवार्य है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि साम्यमूलक अलंकारों में साम्य की स्थापना और विरोध, विषम, विभावना आदि वैषम्यमूलक प्रयोगों में वैषम्य की धारणा कल्पना के आश्रय से की जाती है। अतिशयोक्ति में भी यही बात है। साम्य में समान-धर्मा वस्तुओं का, वैषम्य में विपरीत-ध र्मा वस्तुओं का और अतिशयोक्ति में दूर स्थित वस्तुओं का स्पष्टीकरण किया जाता है।

वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत मुख्य रूप से विरोधाभास, विभावना, व्याघात, असंगति, विचित्र, अधिक, विषम, विशेष तथा अन्योन्य अलंकारों का प्राधान्य रहता है। जायसी काव्य में वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों का सजीव एवं प्रभावी प्रयोग हुआ है।

कवि अपने व्यक्तित्व का आत्मश्लाघापूर्ण वर्णन करते हुए वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान को अपनाकर विरोधाभास अलंकार के माध्यम से कहता है कि परमात्मा ने उसे चन्द्रमा के समान अमर किया है और कलंक देकर भी प्रकाशमय किया गया है। कलंक होते हुए अमरत्व हेतु विरोधाभास में चन्द्रमा का अप्रस्तुत अपनी प्रभावी अभिव्यक्ति लिए हुए है -

चाँद जैस जग बिधि औतारा। दीन्ह कलंक, कीन्ह उजियारा॥

पद्‌मावती के जन्म के समय रात्रि में दिन जैसा प्रकाश होना, यह विरोधाभास अलंकार और समस्त कैलास का प्रकाशित होना वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-विधान का प्रभावी उदाहरण है -

''भा निसि महँ दिन कर परकासू। सब उजियार भएउ कबिलासू ।''

नागमती के वियोग वर्णन में उसके विरह को वैषम्यमूलक अप्रस्तुत के माध्यम से प्रकट किया है। वर्षा हो रही है, परन्तु नागमती वर्षा ऋतु में विरह के दुख से जल रही है। वर्षा में जलन की अनुभूति अपने वैषम्य को लिए हुए है, जिसे कवि ने वर्णित किया है।

20.3.5 वक्रतामूलक अप्रस्तुत-विधान

वक्रतामूलक अप्रस्तुत-विधान का मूलाधार कथन की विदग्धता अर्थात् वक्रता के माध्यम से चारुत्व का सृजन करना है। कथन की यह विदग्धता अर्थात् वक्रता प्रमाता को रस की प्रतीति कराने में सहायक होती है। इस वक्रतापूर्ण अभिव्यक्ति से काव्य में रोचकता, भावोत्कर्ष एवं मधुरता का समावेश होता है।

प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र शैली है वक्रोक्ति कही जाती है। वैदग्ध का अर्थ है चतुरतापूर्ण कवि कर्म मान) का कौशल उसकी भंगी शैली या शोभा उनका भणिति अर्थात् (वर्णन) कथन करना। विचित्र (आसाधारण) प्रकार का वर्णन-शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है।

जायसी के काव्य में वक्रतापूर्ण प्रभावशाली प्रयोग अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होते हैं। वक्रतामुलक अप्रस्तुत विधान के अंतर्गत आने वाले समस्त अलंकारों को उनके काव्य में देखा जा सकता है। अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार द्वारा वक्रता मूलक अप्रस्तुतों का प्रचुर प्रयोग जायसी-काव्य में मिलता है। गौरख अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत पद्‌मावती का वर्णन किया गया है। पद्‌मावती की सखियाँ रत्लसेन को उसके गुरु गोरखनाथ अर्थात् पद्‌मावती के आने की सूचना देती हुई हास-परिहास करती है। 'गोरखनाथ' अप्रस्तुत का विधान वक्रतामूलक अप्रस्तुत का सूचक है

बोलहिं सबद सहेली, कान लागि, गहि माथ।।

गोरख आइ ठाढ़ भा, उठु, रे चेला नाथ!।।

एक अन्य स्थल पर, भ्रमर अप्रस्तुत के माध्यम से उसके आचरण वर्णन द्वारा प्रस्तुत रत्नसेन और पद्मावती के पारस्परिक प्रणय भाव को निरूपित किया गया है। चम्पा की सुगन्धि बढ़ने पर भौंरा उसके प्रेम में नहीं फँसता किन्तु जिस भौरे को मालती से प्रेम हो जाता है वह मरते समय तक भी उससे प्रेम नहीं छोड़ता। यहाँ सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार के द्वारा वक्रतामूलक अप्रस्तुत-विधान देखने को मिलता है

चंपा प्रीति न भौरहि, दिन दिन आगरि बास।

भौंर जो पावै मालती, मुएहु न छाँडै पास।।

इसी प्रकार, भौरे, कमल और मालती वक्रतामूलक अप्रस्तुतों के द्वारा प्रस्तुत रत्नसेन, पद्मावती और नागमती के सम्बन्धों का चित्रण प्रभावी रूप में किया गया है- भौरें रूपी रत्नसेन तथा कमल रूपी पद्मावती का मिलन अवश्य होगा किन्तु मालती रूपी नागमती को याद करके भ्रमर रूपी रत्नसेन रारा अवश्य लौटेगा -

भौंर कँवल सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहुँ आवा ।।

नागमती की सखियाँ कहती है कि दस दिन के लिए पद्मावती रूपी तालाब नष्ट हो जायेगा और फिर वही सरोवर नागमती संवर उठेगा तथा वहीं इस अर्थात् रत्नसेन होंगे। विभिन्न अप्रस्तुतों के द्वारा वक्रता का नियोजन यहाँ किया गया है -

दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोइ सरवर, सोई हंसा।।

20.3.6 वैचित्र्यमूलक अप्रस्तुत-विधान

वैचित्र्य से महासागर है चमत्कार। वैचित्र्यमूलक अप्रस्तुत-विधान बहुज्ञता एवं चमत्कार प्रदर्शन पर आधारित होता है तथा भावानुरू तीव्राभिव्यक्ति में सक्षम होता है। प्रत्येक कवि का प्रयत्न रहता है कि उसकी अभिव्यंजना-शिल्प चमत्कार अर्थात् वैचित्र्य से परिपूर्ण हो। कवि इसी कारण से अपनी अभिव्यक्ति में शब्द और युक्ति के माध्यम से वैचित्र्य का समावेश करता है। इस विषय में डॉ. नगेंद्र का मत है कि ''चमत्कार का संबंध है हमारी विस्मयवृत्ति से। काव्य की अनुभूति में विस्मय वृत्ति का भी कुछ योग रहता है। सत्काव्य या कला में यद्यपि हमारे चित का रंजन करने का गुण ही प्रधान रहता है परन्तु मस्तिष्क को चमत्कृत करने की थोड़ी बहुत शक्ति अनिवार्यत: रहती है। काव्य के मूल मर्म को जानने वाले कवि और सहृदय तो सदा इन दोनों तत्वों के इसी अनुपात को स्वीकार करते आये हैं, परन्तु जिनको दृष्टि ऊपरी स्तर तक ही पहुँच पाती है जो काव्य को आत्माभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण न कर आत्म-प्रदर्शन के रूप में ही ग्रहण करते हैं, वे इस अनुपात को उलट देते हैं। उनके लिये चमत्कार मुख्य हो जाता है और हृदय का रंजन गौण।

इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से शब्दालंकार अनुप्रासादि, श्लेष और यमक तथा अर्थालंकारों में मुद्रा एवं पर्यायोक्ति आदि आते हैं। अनुप्रास संगीतात्मक का समावेश करता है। यमक गंभीर एवं चारुत्व शक्ति का परिचायक है, श्लेष आदि में भी चमत्कार का प्राधान्य है। जायसी काव्य में ये अलंकार स्वाभाविक रूप से आये हैं तथा इनका विधान काव्य में रस की श्रीवृद्धि में सहायक है। जायसी-काव्य में वैचित्र्यमूलक अप्रस्तुतों का विधान भावोत्कर्ष में विशेष योग प्रदान करता है।

अनुप्रास अलंकार वर्णों की आवृत्ति पर आधारित मूल अलंकार है। बड़े संयत एवं प्रभावोत्पादक रूप में जायसी ने अनुप्रास अलंकार को उसके भेदो-प्रभेदों के साथ अपने काव्य में निरूपित किया है जो भावों की तीव्र अनुभूति में सहयोगी का कार्य करता है। वैसे तो जायसी के काव्य में प्रत्येक पृष्ठ पर अनुप्रास की छटा देखने को मिलती हैं। परन्तु कुछ विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

नित पिरीत, नित नव नव नेह।

वृत्यानुप्रास का प्रयोग द्रष्टव्य है –

सखी सहस दस सेवा पाई।

रंग करत रह हृदय राता।

लाटानुप्रास का उदाहरण अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है –

सोरह सहस घोड़ा घोड़ासारा।

जायसी का अनुप्रास अलंकार के अन्तर्गत वैचित्र्यमूलक विधान देखकर लगता है कि कवि को शब्दों के खिलवाड़ से विशेष प्रेम रहा है।

चित्रमूर्ति चित्त चित्र सुहाई।

बिसरि बियाह पूत कर गएआ।

अत: कवि ने भावानुकूल वर्णों की आवृत्ति एवं संगीतात्मकता के साथ–साथ वर्णों के चमत्कारपूर्ण विधान का विशेष समायोजन किया है, जिससे रस परिपाक हुआ है।

जहां अनुप्रास को जायसी ने भेदो–प्रभेदों सहित अपनाया है वहां यमक, श्लेष, अत्युक्ति आदि विभिन्न अलंकारों द्वारा भी वैचित्र्यमूलक अप्रस्तुत विधान किया है

यमक अलंकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

रंगनाथ हौं जा कर, हाथ ओहि के नाथ।

गहे नाथ सो खैंचे, फेरे फिरै न माथ।

यहाँ 'नाथ' शब्द में यमक है। एक 'नाथ' का अर्थ है – 'स्वामी' तथा दसरे 'नाथ' का अर्थ 'नकेल' है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) जायसी की प्रमाणिक रचना के नाम लिखों।

(2) जायसी का पूरा नाम लिखों।

(3) अप्रस्तुत विधान किसे कहते हैं।

20.4 सारांश

निष्कर्षत: में कहा जा सकता है कि सूफी महाकवि जायसी ने प्रमुख छ: मानस व्यापारों के परिप्रेक्ष्य में साम्यमूलक, अतिशयमूलक, औचित्यमूलक, वैषम्यमूलक, वक्रतामूलक एवं वैचित्र्यमूलक अप्रस्तुतों का काव्य में प्रभावी, मार्मिक एवं व्यंजक अप्रस्तुत विधान किया है। कवि ने साम्यमूलक अप्रस्तुतों एवं अतिशयमूलक अप्रस्तुतों का विधान विस्तारपूर्वक किया है। साम्य के अंतर्गत रूपसाम्य, धर्मसाम्य, प्रभाव साम्य और व्यंग्यसाम्य सभी प्रकार के अप्रस्तुतों को लिया गया है। उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति, प्रस्तुति की सार्थक अभिव्यक्ति, संयोग–वियोग में प्रकृति का मानव के साथ रागात्मक संबंध, विभिन्न मनोभावों का वर्णन आदि विभिन्न रूपों को साम्यमूलक अप्रस्तुतों के माध्यम से व्यंजित किया है। सिंहलद्वीप का वर्णन, वैभव, वैभव का संयोग–वियोग में हर्षोल्लास एवं विरही रूप का चित्रण अतिशय रूप में अतिशयमूलक प्रमाणों के द्वारा किया गया है।

20.5 कठिन शब्दावली

अप्रस्तुत – जो प्रत्यक्ष न हो। साम्य – समान दिखने वाला। वैषमय– समान न दिखने वाला। औाचित्य – उचित प्रयोग। वक्र– टेढ़ी–मेढ़ी उक्ति। आतिशय – अधिकता।

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर – पद्मावत, अखरावट, आखरी कलाम।

(2) उत्तर – मलिक मुहम्मद जायसी।

(3) उत्तर – ऐसा विधान जिसके माध्यम से अप्रस्तुत को प्रस्तुत किया जाए।

20.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) रामचंद्र शुक्ल – पद्मावत

(2) श्री निवास मिश्र – जायसी ग्रंथावली

(3) कमल कुलश्रेष्ठ – मलिक मुहम्मद जायसी।

20.8 सात्रिक प्रश्न

(1) जायसी के काव्य का वर्णय विषय लिखें।

(2) जायसी के काव्य में अप्रस्तुत विधान को स्पष्ट करें।

(3) साम्यमूलक अप्रस्तुत विधान को सोदाहरण स्पष्ट करें।

*****

इकाई–21

जायसी : व्याख्या भाग

संरचना

21.1 भूमिका

21.2 उद्देश्य

21.3 जायसी : व्याख्या भाग

21.3.1 व्याख्या भाग - मानसरोदक खंड

21.3.2 व्याख्या भाग - नागमती वियोग खंड

स्वयं आकलन प्रश्न

21.4 सारांश

21.5 कठिन शब्दावली

21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

21.7 संदर्भित पुस्तकें

21.8 सात्रिक प्रश्न

21.1 भूमिका

भक्तिकाल के सूफी काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने हिन्दी साहित्य के लिए प्रसिद्ध ग्रंथ 'पदमावत' की रचना की है। पदमावत में जायसी ने भारतीय परिवार की कथा को मुख्य आधार बनाया है। पद्मावत में पदमावली राजा रत्नसेन तथा नागमती को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया है।

21.2 उद्देश्य -

(1) पद्मावती के चरित्र की जानकारी।

(2) पद्मावती और राजा रत्नसेन के प्रेम का चित्रण।

(3) नागमती के विरह की जानकारी।

(4) नागती और राजा रत्नसेन के जीवन का बोध।

21.3 जायसी : व्याख्या भाग

21.3 व्याख्या भाग - मानसरोवर खंड

1. **एक दिवस पूनो तिथि आई। मानसरोवक चली आई॥**
पदमावति सब सखी बुलाई। जनु फूलवारि सवै बलि आई।
कोई चंपा कोड़ कुल सहेली। कोई सुकेत करता।
कोई सु गुला सुबरसन सती। कोई भी चकावरी वकूचन भौतिक।
कोई सो मौलसिरि पुहपावती। कोइ जाही जूही सेवती।
कोइ सोनजरन कोई केसर। कोइ सिंगार-हार नागेसर॥
कोई कुजा सदबर्ग चमेली। कोई कदम सुरस रस बैली॥
चली सवै भालति संग फूलों कर्वल कुमोव।
बेधि रहे गन गैधरव बास-परमदामोद॥

शब्दार्थ - पून्यो तिथि = पूर्णिमा की तिथि। **मानसरोदक** = मानसरोवर। **जनु** = मानो। **फुलवारी** = फूलों की वाटिका। **केत** = केतकी के फूल। **भांति** = की तरह। **कूजा** = सफेद जंगली फूल। **सबबर्ग** = एक प्रकार का गेंदा का फूल। **कुमोद** = कुमुदिनी।

प्रसंग - प्रस्तुत काव्यांश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित मलिक मुहम्मद जायसी के मानसरोदक खंड से उद्धृत है। यह खंड 'पद्मावत' नामक ग्रंथ से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब राजकुमारी पद्मावती की शादी नहीं हुई थी। वह अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए जाती है। सखियों के तत्कालीन सौंदर्य को चित्रण करते हुए कवि कहता है कि

व्याख्या - जायसी कहते हैं कि एक दिन पूर्णिमा की तिथि की पदमावती अपनी सभी सखी-सहेलियों को लेकर मानसरोवर में स्नान करने के लिए जा रही थी उन सभी सहेलियों को देखकर ऐसा लग रहा था मानो फूलों की पूरी वाटिका ही उसके साथ चल रही हो। उनमें से कोई सखी चंपा के फूल के समान है तो कई कुंद की तरह, कोई केतकी, कोई करना और रसबेलि के फूल के समान है उनमें से कोई लाल गुलाब के समान सुंदर दिखने वाली है, कोई गुलाबकावली के गुच्छे के समान हंसती हुई है, कोई मौलश्री के फूल के समान है, कोई जूही के समान और कोई सफेद फूल के समान कोई सोने के समान पीली, कोई केसर के समान, कोई जूही के समान और कोई सफेद फूल के समान, कोई सोने के समान पीली, कोई केसर के समान, कोई हरासेंगर के फूल की भांति तो कोई नापकेसर जैसी लग रही

है। ये सभी सखियां मालती जैसी पद्मावती के साथ इस प्रकार चलों जैसे कमल के साथ कुमुदनियों का समूह हो। उनकी सुगंध से भंवरे भी बिंध रहे थे।

विशेष– 1. इसमें लौकिक जीवन के सुख एवं स्वच्छंदता का वर्णन किया गया हैं

2. रहस्यवादी दृष्टि से ये पंक्तियां काव्यगत लगती हैं।

3. चौपाई और दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।

4. अभिधा और लक्षणा शब्द शक्ति है।

5. संपूर्ण पदावली में अवधी भाषा का सफल प्रयोग हुआ है।

6. माधुर्य गुण है।

7. अनुप्रास, उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकार की छठा दर्शनीय है।

8. यहां कवि ने प्राकृतिक उपादानों का सहारा लेने का प्रयास किया है।

2. खेलत मानसरोवर गई। जाइ पाल प ठाढ़ी भई।।
देखि सरोवर हसैं कुलेली। पदमावति सौं कहहिं सहेली।।
ए रानी! मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लहिं अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गवनब काली कित हम, कित एह सरवर-पाली।।
कित आवन पुनि अपने हाथ। कित मिलि कै खेलब एक साथ।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारून सुसर न निसरै देहीं।।
पिउ पियार सब ऊपर सो पुनि करै दहुं काह।
कहुज सुख राखै की दुख, वहुं कस जन निबाह।।

शब्दार्थ - पाल = तट या किनारा। **ठाढ़ी भई** = खड़ी हो गई। **कुलेली** = कुलेल करना। **विचारी** = विचार करना। **ऐहि** = यहां। **नैहर** = पिता का घर। **दिन चारी** = चार दिन अर्थात कुछ ही दिन। **खेलि** = खेल। **लेहु** = लौ। **आजू** = आज। **पुनि** = फिर। **सासुर** = ससुराल। **गवनब** = चले जाना। **कित** = कहां। **सरवर पाली** = सरोवर के तट या किनारे पर। **आवन** = आना। **मिलि कै** = मिलकर। **खेलब** = खेलना। **बोलिन्ह** = बोल बोल कर (ताने देकर)। **प्यार। पिउ** = पति। दहुं = देगा। **राखै** = रखेगा। **कस** = कैसे। **जनम** = जीवन भर। **निवाह** = निर्वाह (गुजारा) होगा।

प्रसंग - प्रस्तुत काव्यांश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित मलिक मुहम्मद जायसी के 'मानसरोदक खण्ड' से उद्धृत है। यह खंड 'पद्मावत' नामक ग्रंथ से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब राजकुमारी पद्मावती की शादी नहीं हुई थी। वह अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए जाती है। यहां पद्मावती और उसकी सखियों के बीच वार्तालाप का वर्णन किया गया है।

व्याख्या - कवि जायसी कहते हैं कि पद्मावती की सभी सखियां खेलती-कूदती मानसरोवर पर पहुंच गई और सरोवर के किनारे (ऊपरी भाग) पर खड़ी हो गई। उस सरोवर को देख-देखकर वे मनोविनोद और क्रीड़ाएं करने लगी। हे रानी! जरा मन में विचार करके देखो अर्थात मन में सोचो कि यहां पिता के घर चार दिन अर्थात कुछ ही दिन रहकर सुख लेना है। जब तक पिता के घर है, तब तक जो स्वच्छंद क्रीड़ाएं करनी हैं कर ली जाएं। कल जब ससुराल चली जाएंगी तब कहां हम और कहां यह सुंदर सरोवर का तट। फिर यहां आना और साथ खेलना संभव होगा। यह सब कुछ हमारे हाथों में नहीं होगा। वहां हमारी सास और ननद ताने दे-देकर प्राण ले लेंगी और कठोर ससुर हमें यहां आने नहीं देगा। इन सबके ऊपर प्रियतम (पति) का भय बना रहेगा कि वह न जाने क्या कर बैठे। पता नहीं वह हमारे साथ कैसा व्यवहार करेगा। हमें सुख से रखेगा या दुख देगा ? वहां पता नहीं जीवन भर कैसे निर्वाह होगा।

विशेष – 1. पूरे खंड में समासोक्ति अलंकार की प्रधानता है।

2. कुंवारी बालाओं की मनोवैज्ञानिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया गया है।

3. लोकव्यवहार की बातें स्वाभाविक ढंग से बताई गई है।

4. श्रृंगार रस का प्रयोग है।

5. चौपाई और दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।

6. अभिधा और लक्षणा शब्द शक्ति है।

7. संपूर्ण पदावली में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।

8. माधुर्य गुण है।

9. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।

3. **मिलहि रहसि सब चढ़हिं हिंडोरी। झूल लेंहि सुख बारी भोरी।**
झूल लेहु नैहर जब साई। फिरि नहिं झुलन देइहिं साईं॥
पुनि सासुर लेइ राखिहिं तहां। नैहर चाह न पाउब जहां॥
कित यह धूप, कहां यह छाहां। कौन उतर पाउव तहं मोखू॥
सासु नैंनद कै भौंह सिकोरे। रहब संकोचि दुबौ कर जोरे॥
कित यह रहसि जो आउब करना। ससुरेइ अंत जनम दुख भरना॥
कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल।
आपु आपु कहं होइहि परब पंखि जस डेल॥

शब्दार्थ चढ़हिं = चढ़कर। **हिंडोरी** = हिंडोला। **लेहिं** = लें। **भोरी** = भोली। **नैहर** = पिता का घर। **साई** = पति। **सासुर** = ससुराल। **छाहां** = छाया, सुख। **रहब** = रहना पड़ेगा। **सखी बिनु** = सखियों के बिना। **मंदिर** = महल। **माहां** = के अंदर। **बारी** = बालिकाएं। **दोखू** = दोष। **जस** = जैसे **परब** = पड़ेगी। **भौंह सिकोरे** = भौं सिकोड़ेंगी। (नाराज होएंगी)। **रहब** = रहना होगा। **दुबौ कर** = दोनों हाथ। **जोरे** = जोड़कर। **ससुरेइ** = ससुराल में। **कित** = कहां। **पुनि आउब** = वापस आना होगा। **पंखि** = पक्षी। **बारी** = कुंवारी। **ताई** = तक। **डेल** = बहेलिया का पिंजरा।

प्रसंग – प्रस्तुत काव्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित मलिम मुहम्म्द जायसी के 'मानसरोदक खंड' से उद्धृत है। यह खंड 'पदमावत' नामक ग्रंथ से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब राजकुमारी पद्मावती की शादी नहीं हुई थी। वह अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए जाती हैं। कवि ने बताया कि है पद्मावती और उसकी सखियां परस्पर वार्तालाप कर रही हैं।

व्याख्या – जायसी बताते हैं कि पद्मावती की सखी उसे कहती है कि हे पद्मावती! जब तक हम कुंवारी हैं तब तक सुखपूर्वक झूला झूल लें और परस्पर मिल लें। जब तक हमें मायके (पिता के घर में) रहना हे तब तक हम खूब झूला झूल लें। फिर झूलने का अवसर नही मिलेगा। पतिदेव झूला झूलने नहीं देंगे। फिर हमें सुसराल में ही रहना पड़ेगा तथा हम चाहकर भी मायके नहीं आ पाएंगी। ससुराल की धूप में यह छाया देखने को नहीं मिलेगा। वहां महल में अकेले रहना पड़ेगा सखियां साथ नहीं होंगी। वहां सभी लोग गुणों के बारे में पूछेंगे और दोषारोपण करेंगे। वहां यह सोचना पडेगा कि कौन सा उत्तर दिया जाए। सास और ननद भौं सिकोड़ेंगी तथा वहां दोनों हाथ जोड़कर रहना पड़ेगा। यहां से जाने के बाद वहां ससुराल में ही आजीवन रहना होगा दुख ही दुख सहन करने होंगे। न तो मायके वापस (फिर) आना होगा और न ससुराल में यह हंसी-खुशी के मौके मिलेंगे। जिस प्रकार बहेलिया पंछी को लाकर पिंजरे में बंद कर देता है तो वह अपने अनुसार पक्षी को रखता है, उसी प्रकार ससुराल में उन्हीं के अनुसार रहना होगा।

विशेष - 1. यहां नारियों की परवशता का वर्णन किया गया है।

2. चौपाई और दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।

3. अभिधा और लक्षणा शब्द शक्ति है।

4. संपूर्ण पदावली में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।

5. माधुर्य गुण है।

6. अनुप्रास, उदाहरण, समासोक्ति, उपमा, अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

7. यहां नैहर, संसार को तथा सुसराल को परलोक बताया गया है।

4. सरवर तीर पदुमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई।।
ससिमुख अंग मलयगिरि वासा। नागिन झांपि लीन्ह चहुं पासा।।
ओनई घटा परी जग छाहां। ससि की सरन लीन्ह जनु राहां।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चांद परगस।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा मंह चांद दिखावा।।
वसन दामिनी कोकिल भाखी। भौंहे धनुक गगन लेइ राखी।।
नैन खंजन दुइ केलि करेहीं। कुच नारंग मधुकर रस लेहीं।।
सरवर रूप बिमोहा हिएं हिलोरहि लेइ।
पांव छुवै मकु पावौं तेहि मिस लहरहि देइ।।

शब्दार्थ-खोंपा = बालों का गुच्छा, जूड़ा। **छोरि** = खोलकर। **केस** = बाल। **मुकलाई** = खोलकर धोने लगी। **सरवर** = सरोवर। **तीर** = किनारा। **ससिमुख** = चन्द्रमा के समान मुख। **बासा** = सुगंध खुशबू। **नागिन** = सांपिन। **ससि** = चन्द्रमा। **जनु** = मानो। **राहा** = राहु। **भानु** = सूर्य। **छपि गै** = छिप जाना। **निसि** = रात। **नखत** = तारे। **परगसा** = प्रकट होना। **भूलि** = भूल गया। **दीठि** = देखकर। **वसन** = दांत। **दामिनी** = बिजली। **कोकिल** = कोयल। **भाखी** = बोलना, वाणी। **धनुख** = धनुष। **नैन** = आंख। **खंजन** = पक्षी का नाम। **कुच** = स्तन। **मधुकर** = भंवरा। **बिमोहा** = देखकर। **मकु** = कदाचित। **पावैं** = पांव। **मिसु** = बहाने। **केली** = क्रीड़ा। **परगसा** = प्रकट हुआ।

प्रसंग - प्रस्तुत काव्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित मलिक मुहम्म्द जायसी के 'मानसरोदक खंड' से उद्धृत है। यह खंड 'पदमावत' नामक ग्रंथ से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब राजकुमारी पद्मावती की शादी नहीं हुई थी। वह अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए जाती हैं। प्रस्तुत अवतरण में पद्मावती के रूप सौंदर्य का वर्णन किया गया है यहां उनके केशों और उनके अंग-प्रत्यंगों का सौंदर्य प्रस्तुत किया है।

व्याख्या - रानी पद्मावती मानसरोवर में स्नान करने के लिए उसके किनारे पर आई। वह अपने घने घनघोर काले बालों का बना हुआ जूड़ा खोलकर अपने बालों को धोने लगी। काले घने बालों के बीच पद्मावती का मुख चंद्रमा के समान प्रतीत हो रहा था। जैसे मलयज पर्वत पर शीतल और सुगंधित खुशबू आती रहती है, उसी प्रकार से उसके अंग-प्रत्यंग से खुशबू आ रही थी उसके काले लंबे और घुंघराले बाल काली नागिन के समान लग रहे थे और ऐसा लग रहा था मानो नागिन ने पद्मावती को अपने मुख में कैद कर लिया हो। उसके काले और घने बालों के प्रभाव से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पूरे आकाश में चारों ओर काली घनघार घटाएं छा गई हों। रात में दिखाई देने वाला चन्द्रमा को राहुल ने ग्रसित कर लिया हो, ऐसा प्रतीत हो रहा था कहने का भाव है कि पद्मावती का मुख काले घने बालों से ढक गया था जिस प्रकार रात, दिन में काफी घनघोर छाती है तो सूर्य का तेज भी उसके छिप जाता है, उसी प्रकार से दिन में भी पद्मावती का मुख काले बालों के प्रभाव से ढक गया था अर्थात बालों के कारण उसका मुख दिखाई

नहीं दे रहा था। पद्‌मावती का मुख चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहा था और अन्य सखियों के मुख तारों के समान प्रतीत हो रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो दिन में ही रात जैसा वातावरण हो गया हो। चन्द्रमा और तारे निकल आए हों। चकोर नामक पक्षी भी बालो से घिरे उसके मुख को देखकर यह सोचने लगा कि घनघोर (बिजली) के समान चमक रहे थे। कहने का भाव है कि काले बालों के बीच में पद्‌मावती के दांत चमक रहे थे। वह जब बोल रही थ तो उस समय ऐसा लग रहा था जैसे कोई कोयल बोल रही हो उसकी दोनों भौहें इन्द्रधनुष के समान प्रतीत हो रही थी। उसके दोनों आंखें खेजन पक्षी के समान प्रतीत हो रहे थे। उसके दोनों स्तन नारंगी के भांति लग रहे थे जिस प्रकार भंवरा नारंगी के रस का गान करते है, उसी प्रकार उसके दोनों स्तन नारंगी के समान लग रहे थे। मानसरोवर भी पद्‌मावती के केश सौंदर्य को देखकर हिलोरे ले रहा था उसकी इधर से उधर तरंग आने जाने लगी। ऐसा लग रहा था कि मानसरोवर पद्‌मावती के पैरों को छूने के लिए हिलोरें ले रही हो।

विशेष–1 प्रस्तुत काव्यांश में रानी पद्‌मावती के रूप–सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

2. चौपाई और दोहा छंद का प्रयुक्त हुआ है।
3. अभिधा और लक्षणा शब्द शक्ति है।
4. संपूर्ण पदावली में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।
5. माधुर्य गुण है।
6. रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, विशेष उक्ति, भ्रांतिमान, मानवीकरण, अनुप्रास और उपमा अलंकारों की छठा दर्शनीय है।

5. धरीं तीर सब कंचुकि सारीं। सरवर मह पैठी सब बारी॥
पाए नीर जानौं सब बेलीं। हुलसी करहिं काम कै केली॥
नवल बसंत संवारहि करीं। होइ परगट चाहहिं रस भरीं॥
करिले केस बिसहर बिसभरे। लहरैं लेहि कंवल मुख धरे॥
उठें कोपं जनु दारिवं दाखा। भई उनंत प्रेम कै साखा॥
सरचर नहिं समाइ संसारा। चांद नहाइ पैठ लेई तारा॥
धनि सो नीर ससि तरई उई। अब कित दीठ कंवल औ कुई॥
चकई बिछुरि पुकारै कहां मिलहु, हो नांह॥
एक चांद निसि सरग पर दिन दौसर जल मांह॥

शब्दार्थ–धरी = रखी। **तीर** = किनारे। **कंचुकि** = अंगियां। **सारी** = साड़ियां। **सरवर** = मानसरोवर। **महं पैठीं** = में उतर गई। **बारी** = बालिकाएं। **जानौं** = मानो। **बेली** = बेलें। **नीर** = पानी। **पाइ** = पाकर। **हुलसहिं** = प्रसन्न होना। **केली** = क्रीड़ाएं। **करहिं** = करने लगीं। **करिल** = काले। **केस** = केश (बाल)। **नवल** = नव (नया)। **जानहु** = मानो। **दारिवं** = अनार। **दाखा** = अंगूर। **कोप** = कोंपल। **जस** = जैसे। **पेम कै साखा** = प्रेम की डाल। **सरिवर** = सरोवर। **नहाइ** = स्नान करना। **पैठ लेइ तारा** = तारों को साथ लेकर। **धनि** = धन्य है। **नीर** = जल। **ससि** = चन्द्रमा। **तरई** = तारे। **उई** = उदित होना। **कित** = कहां। **दीठ** = दिखाई देना। **औ** = और। **कूई** = कुमुदिनी। **विछुरि** = बिछुड़कर। **हो नाहं** = हे नाथ (स्वामी)। **निसि** = रात। **सरग महं** = वियोग करता था। **दूसर** = दूसरा। **माहं** = अंदर में।

प्रसंग – प्रस्तुत काव्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित मलिक मुहम्म्द जायसी के 'मानसरोदक खंड' से उद्‌धृत है। यह खंड 'पदमावत' नामक ग्रंथ से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब राजकुमारी पद्‌मावती की शादी नहीं हुई थी। वह अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए जाती हैं। इन पंक्तियों में कवि ने सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान के लिए गई हुई पद्‌मावती की जल क्रीड़ा का वर्णन किया है।

कवि ने बताया कि है पद्मावती और उसकी सखियां परस्पर वार्तालाप कर रही हैं।

व्याख्या – कवि जायसी कहते हैं कि पद्मावती और उसकी सखियों ने अपनी-अपनी आंगियो और सीड़ियों को उताकर मानसरोवर के किनारे पर रख दिया और सभी ने बारी-बारी से सरोवर में प्रवेश किया। वे सभी सखियां इस प्रकार प्रसन्न दिखाई दे रही हैं जैसे बेलें पानी को पाकर प्रसन्न हो जाती हैं। वे प्रसन्न होकर सरोवर में जल-क्रीड़ाएं कर रही हैं। उनके काले-काले बाल विषैले सर्प के समान लग रहे हैं। जब लहरें आती हैं तो उसमें बालों की राशियां कमल रूपी मुख को पकड़कर मानो लहरें ले रही हों। ऐसा प्रतीत होता है। ये सभी सखियां किशोर अवस्था में हैं। जिस प्रकार बसंत में सभी पेड़ हरे-भरे हो जाते हैं उसी प्रकार से पद्मावी और उसकी सखियां खुश व प्रसन्न दिखाई दे रही हैं उनके जीवन का नव बसंत जैसे अनेकों रस से भरे हुए स्तनों के रूप में प्रस्फुटित हो रहा है। उनके होंठ इस प्रकार से प्रतीत हो रहे हैं मानो अनार और अंगूर की नई कोंपले प्रस्फुटित हो गई हों। ऐसा लग रहा था जैसे प्रेम की डाली फलों से लदकर झुक गई हो। सौंदर्य से परिपूर्ण उन सखियों को पाकर सरोवर की खुशियां इस संसार में समा नहीं रही हैं। जब पद्मावती और उसकी सखियां सरोवर में स्नान कर रही है तो ऐसा लगता है जैसे आकाश से चन्द्रमा तारों को साथ लेकर सरोवर में स्नान करने आ गया हो अर्थात यहां चांद पद्मावती को तथा तारे उसकी सखियों को बताया गया है। वह जल धन्य है जिसमें चन्द्रमा और तारें उदित हुए हों। अब इस जल में कमल और कुमुदिनी कहां दर्शन देंगे अर्थात व दिखाई नहीं देंगे। अपने चकवी से बिछुड़ी हुई चकवी अपने चकवे को पुराकरने लगी हे स्वामी! अब हम दोनों कैसे मिलेंगे क्योंकि एक चांद तो सरोवर में है और दूसरा चांद आकाश में है। कहने का भाव है कि एक चांद आकाश में था जो रात के समय वियोग कराता था और दूसरा दिर में वियोग कराने के लिए मानसरोवर के पानी में घुस गया है।

विशेष –1 यहां कवि ने पद्मावती के रूप-सौंदर्य का वर्णन किया है।

2. चौपाई तथा दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।
3. अभिधा और लक्षणा शब्द शक्ति है।
4. संपूर्ण पदावली में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।
5. माधुर्य गुण है।
6. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रांतिमान, अनुप्रास अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

6. **लागीं केलि करै मझ नीरा। हंस लजाइ बैठक ओइ तीरा।।**
पदुमावति कौतुक कहं राखी। तुम ससि होहु तराइन्ह साखी।।
बाल मेलि कै खेल पसारा। हार देइ जौं खेलत हारा।
संवरहि सांवरि गोरिहिं गोरी। आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी।।
बूझि खेल खेलहु एक साथ। हारू न हाइ पराएं हाथ।।
आहुहि खेल बहुरि कित होई। खेल गए कत खेलै कोई।।
धनि सो खेल खेलहिं सह पेमा। रउताई और कूसल खेमा।।
मुहमद बारी प्रेम की ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि एक संग ज्यों होइ फुलायल तेल।।

शब्दार्थ-केलि = क्रीड़ा। **मझ नीरा** = सरोवर के जल के अंदर। **लजाइ** = शर्मिन्दा होना। **तीरा** = किनारे पर। **ससि** = चन्द्रमा। **होउ** = होकर, बनकर। **तराइन्ह साखि** = तारों की गवाह। **मेलि कै** = मिलकर। **पसारा** = शुरू किया। **हार देइ** = हार। (गले का हार) देगी। **जो खेलत हारा** = जो खेल में पराजित हो जाएगा। **संवरिहि सांवरि** = सांवली सखियों ने सांवली के साथ। **गोरिहिं गोरी** = गोरी सखियों ने गोरी के साथ। **खेलहु** = खेल रही थीं। **पराए** = पराया।

हाथ आजुहि = आज। **बहुरि** = फिर। **कित** = कहां। **होई** = होगा। **खेल गए** = खेल समाप्त होने पर। **धनि** = धन्य। **रठताई** = प्रभुता या स्वामित्व। **औ** = और। **कूसल** = कुशलता। **खेमा** = संभव। **मुहमद** = जायसी। **पेम** = प्रेम। **भाव** = पसंद करना, अच्छा लगना। **फूलहिं** = फूल। **संग** = साथ। **फुलायल** = सुगंधित। **कौतुक** = खेल-तमाशा। **करि** = का।

प्रसंग - प्रस्तुत काव्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित मलिक मुहम्मद जायसी के 'मानसरोदक खंड' से उद्धृत है। यह खंड 'पदमावत' नामक ग्रंथ से लिया गया है। यह उस समय का प्रसंग है जब राजकुमारी पद्मावती की शादी नहीं हुई थी। वह अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए जाती हैं। जब पद्मावती और उसकी सखियां मानसरोवर में जल-क्रीड़ाएं करतीं हैं तब कवि इस सौंदर्ययुक्त भाव विभोर कर देने वाले दृश्य को देखकर कहता है कि

व्याख्या - तभी पद्मावती और उसकी सखियां सरोवर के जल में क्रीड़ा करने लगी। वहां पर क्रीड़ा करने वाला हंस उनके खेल को देखकर लज्जित होकर एक ओर बैठ गया अर्थात उसे अपनी क्रीड़ायें तुच्छ प्रतीत हुई। सखियों ने पद्मावती को अपने खेल का निर्णायक बनाकर कहा हे चन्द्रमा के समान पद्मावती। तुम इन सखियों रूपी नक्षत्रों के साक्षी बनकर रहो। उन्होंने शर्त रखकर खेलना प्रारंभ किया कि जो पक्ष खेल में हारेगा उसे अपना हार विपक्ष को देना पड़ेगा। सांवली के साथ सांवली और गौरी के साथ गौरी बालाओं ने मिलकर अपनी-अपनी जोड़ी बना ली। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि सभी समझ कर खेल को एक साथ खेलेंगे। इतना विशेष ध्यान रखना है कि अपना (अपने पक्ष का) हार दूसरे पक्ष में नही जाना चाहिए अन्यथा पराजय हो जाएगी। वह खेल जो आज खेला जा सकता है फिर कभी खेलना संभव नहीं है। भाव यह है कि यह जीवन भी एक खेल है जो पुनः प्राप्त करना संभव नहीं है। यह खेल (जीवन) समाप्त होने पर कोई भी नहीं खेल सकता। जायसी कवित कहते हैं कि वह खेल धन्य है जिसमें सभी प्रेमपूर्वक आनंद के साथ खेलते हैं। इस प्रकार के खेल में प्रभुता और कुशल क्षेम दोनों साथ-साथ रहते हैं इसके बिना दोनों बातें एक साथ नहीं रहतीं।

मुहम्मद जायसी कवि कहते हैं कि प्रेम की बाजी लगाकर या आधार मानकर जो खेल खेला जाता है वह खेल मन को लुभाने वाला होता है जैसे तिल और फूल को एक साथ रखने से तिल का तेल फूल की सुगंध वाला हो जाता है।

विशेष - 1 इन पंक्तियों में पद्मावती की सखियों के साथ मानसरोवर की क्रीड़ा का चित्रण है।

2. सरल, सहज व भावानुकूल साहित्यिक अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण व माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।
5. श्रृंगार रस का परिपाक हुआ है।
6. अनुप्रास, यमक, श्लेष, समासोक्ति, निदर्शना व प्रतीप अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
7. चौपाई व दोहा छंद का प्रयोग है।

7. सखी एक तेइं खेल न जाना। भै अचेत मनि हार गंवाना।
कंवल डार गहि भै बेकरारा। कासों पुकारौं आपन हारा॥
कत खेलै आइउं एहि साथा। हार गंवाइ चलिउं लेइ हाथ॥
घर पैठत पूंछब यह हारू। कौनु उतर पाउब पैसारू।
नैन सीप आंसुन्ह तस भरे। जानहु मोति गिरहिं सब ढरे।

सखिन्ह कहा भौरी कोकिला। कौनु पानि जेहि पौनु न मिला।
हारू गंवाई सो असैहि रोवा। हेरि हेराइ लेहु जौं खोवा॥
लागीं सब मिली हेरैं बूड़ि बूड़ि एक साथ
कोई उठी मोति लै काहू घोंघा हाथ॥

शब्दार्थ- एक तेइं = उनमें से एक ने। **अचेत भइ** = मूर्छित हो गयी। **हार गंवाना** = हार खो कर। **भै बेकारारा** = बेचैन हो गयी। **कासो** = किसे। **पैठत** = जाते ही। **पूंछव** = पूछेंगे। **पैसारू** = प्रवेश करते ही। **आंसुन्ह** = आंसुओं से। **ढरें** = ढुलकता। **भौरी** = भोली। **कोकिला** = कोयल। **पौन** = पवन। **हेरि** = देखना। **हेराइ** = दिखवाना। **बूडि-बूडि** = डुबकी लगाकर।

प्रसंग - प्रस्तुत अवतरण प्रेमाख्यान परंपरा के लोक प्रसिद्ध महाकवि 'जायसी' कृत 'पद्मावत' नामक महाकाव्य के 'मानसरोदक खंड' से उद्धृत है। यहां पर कवि मानसरोवर क्रीड़ा में संलग्न पद्मावती और उनकी सखियों का वर्णन करते हुए उस घटना का उल्लेख किया है तब खेल को अच्छी तरह न समझने के कारण एक सखी अपना हार खो बैठती है।

व्याख्या - पद्मावती की उन सखियों में से एक ने उस खेल को अच्छी प्रकार से नहीं समझा था। अतः वह अपने मणियों के हार को जल में खोकर मूर्छित सी हो गयी। वह कमलदंड का सहारा लेकर बेचैन हो गई। वह सोचने लगी कि मैं अपने हार को प्राप्त करने के लिए किससे कहूं? वह पछताकर सोचने लगी कि मैं इनके साथ खेलने ही क्यों आ गई कि स्वयं अपने हाथों से आपा खो चुकी है। जैसे ही मैं घर में प्रवेश करूंगी तो सभी इस हार के विषय में पूछेंगे तब मैं क्या उत्तर दूंगी और कैसे घर में प्रवेश करूंगी? यह सोचते हुए उसके नेत्रों से उसी प्रकार आंसू भरकर गिरने लगे मानो सीपी से मोती निकलकर बिखरने लगे हों। तभी उसकी सखियों ने उसे समझाकर कहा हे भोली कोकिला। वह कौन सा पानी है जिसमें पवन नहीं मिला हो अर्थात वह कौन सा दुख है जिसमें सुख न मिला हो। अतः तुम्हे इस प्रकार हार खोकर नहीं रोना चाहिए। अच्छा यही है कि तुम हार की स्वयं खोज कर लो और अन्य सखियों से खोज करा लो।

फिर सभी सखियां एक साथ मिलकर सरोवर में उसके हार को खोजने लगीं। उन्होंने मिलकर एक साथ डुबकी लगाई। परिणामस्वरूप किसी के हाथ में मोती लगा तो किसी का घोंघा ही प्राप्त हुआ अर्थात किसी को भी हार नहीं मिला।

विशेष - 1. इन पंक्तियों में कवि ने पद्मावती और उनकी सखियों की क्रीड़ा के वर्णन के अंतर्गत एक सखी के हार खो जाने और उनकी निराश मनोदशा का चित्रण किया है।

2. सरल, सहज व भावानुकूल साहित्यिक अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण व माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।
5. अनुप्रास, श्लेष, समासोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्तिप्रकाश व वक्रोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. चौपाई व दोहा छंद का प्रयोग है।
7. वर्णनात्मक शैली व दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

8. कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहां लगि आई।
भा निरमर तिन्ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसे।
मलै समीर घास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई॥

न जनौं कौनु पौन लेइ आवा। पुन्य दसा भै पाप भंवावा।

ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहंसाना॥

बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा। भै तेहिं ओप जहां जो देखा॥

पाए रूप रूप जस चहा। सखि मुख सब दरपन होइ रहा।

नैन जो देखा कंवल भा निरमर नीर सरीर।

हंसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥

शब्दार्थ-चाह = इच्छा। **पारस रूप** = पारसमणि। **पद्मावति। भा निरमर** = पवित्र हो गया। **दरसे** = देखने पर। **मलै समीर** = मलय पर्वत की सुगंधित वायु। **भा** = हो गया। **पौन** = पवन। **पाप गंवाना** = पाप नष्ट हो गये। **ततखन** = उसी समय। **बेगि** = शीघ्र। **बिगसा** = खिला। **ओप** = चमक। **जस** = जैसा। **वसन जोति** = दांतों की चमक। **उतिराना** = ऊपर तैरने लगा। **नग हीर** = नगों और हीरों।

प्रसंग- प्रस्तुत पंद्याश 'मलिक मुहम्मद जायसी' द्वारा 'पद्मावत' नामक महाकाव्य के 'मानसरोदक खंड' से उद्धृत है। यहां पर पद्मावती का सखियों के साथ जल क्रीड़ा का वर्णन करते हुए कवि पद्मावती की दिव्यता को व्यक्त करते हुए कहता है -

व्याख्या - मानसरोवर ने अपने जल पद्मावती को पाकर कहा कि मेरी जो मनोकामना या इच्छा थी वह पूर्ण हो गई है क्योंकि मैंने पारसमणि के रूप में पद्मावती को प्राप्त कर लिया है। वह कृपा करके यहां तक आ गई है। उसके चरणों का स्पर्श करके मैं पवित्र हो गया हूं। पदमावती के सुंदर रूप के दर्शन करके मैंने भी सुंदर रूप प्राप्त कर लिया है। पद्मावती के शरीर से जो मलय पर्वत की सुगंध आती थी वह सुगंधित वायु मेरे शरीर को प्राप्त हो गयी है। जिस कारण मेरा जल शीतल हो गया और मैंने अपनी तपन (ताप) समाप्त कर दी है। मुझे नहीं पता है कि वह कौन सी पवन है (कौन सी शक्ति है) जो पद्मावती को यहां तक ले आई जिससे मैं पुण्यवान हो गया हूं और मेरे समस्त पाप शक्ति हैं जो नष्ट हो गए हैं। उसी समय अचानक वह हार ऊपर तैरने लगा जिसे सखियों ने प्राप्त कर लिया और पद्मावती रूपी चन्द्रमा हंसने लगा। उस पद्मावती रूपी चन्द्रमा को देखकर सखियों रूपी कमलिनियां भी हंसने लगीं अर्थात जैसे चन्द्र को देखकर कमलिनी खिल जाती है वैसे ही पद्मावती को मुस्कराते देखकर उसकी सखियां भी हंसने लगी। उस पद्मावती रूपी सता को जिसने भी देखा उसके प्रतिबिम्ब के कारण वह उसी की हो गयी अर्थात् सभी पद्मावती के समान दिव्य रूप वाले हो गये। अत: जिसने भी जिस प्रकार के रूप (सौंदर्य) की कामना की उसे वैसा रूप मिल गया। परिणामस्वरूप सभी सखियां पद्मावती के समान हो गयीं और ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे व पद्मावती के लिए दर्पण बन गयी हों जिसमें पद्मावती का सौंदर्य झलक रहा हो।

जिसे उसके नेत्रों को देखा वे कमल बन गए जिन्होंने शरीर की निर्मलता को देखा वे स्वच्छ जल हो गये जिसने उसे हंसते देखा वे हस बन गये और जिन्होंने उसकी दन्तावली के सौंदर्य को देखा वे नग और हीरे बन गये।

अथवा पद्मावती का प्रतिबिम्ब सरोवर में इस प्रकार पड़ रहा था कि उसके नेत्र कमल के रूप में शरीर जल के रूप में हंसी हसों के रूप में तथा दांतों की चमक नगों और हीरों के रूप में दिखाई पड़ने लगी थी।

विशेष -1 प्रस्तुत पंक्तियों में पद्मावती का दिव्य रूप में चित्रण किया गया है। साथ ही 'पदमावती' के इस दिव्य चित्रण से सूफी भावना अभिव्यक्त हुई है।

2. सरल, सहज और भावानुकूल साहित्यिक अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।

3. तत्सव व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. अनुप्रास, मानवीकरण, रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति व तद्‌गुण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. चौपाई व दोहा छंद का प्रयोग है।

7. वर्णनात्मक शैली व दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

21.3.2 व्याख्या भाग : नागमती वियोग खंड

1. **नागमती चितउर पंथ हेरा। पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा।।**
नागरिक नारि काहु बस परा। तेइँ बियोहि मो सौं चितु हरा।।
सुवा काल होइ लेइ़गा पीऊ। पिऊ नहिं जात, जा बरु जीऊ।।
भएउ नरायन बांवन करा। राज करत राजा बलि छरा।।
करन वान लीन्हेउ कै छूंद। विप्र रूप धरि झिलमिल इन्दू।।
मानत भोग गोपी चंद भोगी। लै अपसवा जलंधर जोगी।।
लेइ कान्हहि भी अकरूर अलोपी। कठिन बिछोह जिअहिं किमि गोपी?
सारस जोरी किमि हरी मारि गएउ किन खग्गि।
झुरि झुरि पांजरि धनि भई बिरह कै लागी अग्गि।।

शब्दार्थ-चितउर = चित्तौड़। **पंथ हेरा** = प्रतीक्षा की, मार्ग देखा। **कीन्ह न फेरा** = वापस नहीं आए। **नागरि** = नारी, चतुर स्त्री। **तेइ** = उसी ने। **बिमोहि** = मोह लेना। **चितु हरा** = मन हटा दिया। **छंदू** = छला। **लेइगा** = ले गया। **पीऊ** = नति। **वरु** = चाहे। भले ही। **अपसवा** = चल दिया। **अलोपी** = अदृश्य हो गये। **किमि** = कैसे। **किन** = क्यों। **खग्गि** = तलवार। **पांजरि** = पिंजरा। हडिडयों का ढांचा। **अग्गि** = अग्नि।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्य सूफी काव्य शिरोमणि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्‌मावत महाकाव्य के 'नागमती वियोग खंड' से उद्‌धृत है। चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन सिंहलद्वीप की सुन्दरी पद्‌मावती को प्राप्त करने जाता है वहां लंबा समय बीत जाने पर उसकी पटरानी नागमती विरह व्याकुल हो जाती है। उसकी वियोग दशा का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि

व्याख्या - इधर चित्तौड़गढ़ में रानी नागमती प्रियतम के आने की प्रतीक्षा करते हुए सोचने लगी कि वे एक बार जरूर फिर क्यों वापिस नहीं आए। संभवतः वे किसी चतुर स्त्री के वशीभूत हो गये। उसी ने मेरे प्रियतम को विमोहित करके उनका मन मेरी ओर से हटा दिया। हीरामन नामक तोता ही मेरे लिए काल (मृत्यु) के समान बनकर आया और मेरे पति को अपने साथ ले गया था। कितना अच्छा होता कि वह मेरे प्रिय को न ले जाता, भले ही मेरे प्राण ले लेता। वह तोता तो मेरे लिए भगवान वामन की तरह हो गया जिन्होंने राज्य करते हुए राजा बलि के साथ छल-कपट किया था और उसे स्वर्ग देने के स्थान पर पाताल भेज दिया था। अथवा जिस प्रकार इंद्र ब्राह्मण का वेश धारण करके छलपूर्वक कर्ण से उसके बाण आदि को प्राप्त कर प्रसन्न हुआ था उसी प्रकार वह तोता भी खुश है। जिस प्रकार भोगों में विश्वास करने वाले तथा भोग भोगने वाले राजा गोपीचंद को जलंधर योगी अपने साथ लेकर चला गया था और वह योगी बनकर फिर वापस नहीं आए थे उसी प्रकार मेरे प्रियतम को वह तोता ले गया है जिस प्रकार अक्रूर जी श्रीकृष्ण को लेकर अदृश्य हो गये थे अर्थात अक्रूर के साथ जाने के पश्चात कृष्ण कभी वापिस नहीं लौटे और उनके वियोग में गोपियों का जीवित रहना कठिन हो गया था उसी प्रकार प्रियतम के बिना मैं कैसे जीवित रहूंगी।

हे तोते! तूने हमारी सारस जैसी जोड़ी को क्यों अलग-अलग कर दिया? इससे तो अधिक अच्छा यह रहता कि तू तलवार से मुझे मार डालता। मुझे तो विरह की अग्नि इस प्रकार लगी हुई है कि उसने मुझे झुलसाकर मुझे नारी का पिंजरा (हड्‌डियों का ढांचा) बना दिया।

विशेष -1 इन पंक्तियों में वियोगिनी नागमती प्रियतम को पद्मावती की ओर आकर्षित करने वाले हीरामन तोते को उलालंभ देती है।

2. नागमती के साथ होने वाले छल-कपट के समान अनेकों उदाहरण दिये हैं। अत: यहां सर्वत्र दृष्टान्त अलंकार का सौंदर्य है।

3. 'भएउ...छला' में उस पौराणिक कथा की ओर संकेत दिया गया है जब वामनावतार धारण करके भगवान विष्णु ने राजा बलि से तीन डग भूमि मांग कर उसके साथ छल कपट किया था।

4. जलंधर योगी ने राजा गोपीचंद को उपदेश देकर भोगों से हटाकर योगी बना दिया था।

5. 'महाभारत' के अनुसार इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण करके छल से कर्ण से दिव्य कवच, कुंडल आदि प्राप्त कर लिए थे।

6. 'सारस जोरी' सारस पक्षी युगल रूप में रहते हैं। एकाकी रहने पर प्राणान्त कर देते हैं। यहां पर उपमा अलंकार भी है।

7. 'कठिन..........गोपी' 'सारस..........खग्गि' में वक्रोक्ति अलंकार की छटा है।

8. 'विरह.........अग्गि' में रूपक अलंकार है।

9. 'झुरि-झुरि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार विद्यमान है।

10. पूरे पद में श्रृंगार (विप्रलम्भ) रस का समावेश है।

6. पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा तस बौले पिउ पीऊ।
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिउ लै सो गएउ पिय नामा।।
विरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीजि भीजि तन चोली।।
सखि हिय हेरि हार मैन मारी। हहरि परान तजै अब नारी।
खिन एक आव पेट मंह स्वासा। खिनई-जाइ सब होहि निरासा।।
पौनु डोलावहिं सींचहि चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला।
प्रान पयान होत केइं राखा को मिलाव चाांत्रिक कै भाखा।।
आह जो मारी बिरह की, आगि उठी तेहि हांक।
हंस जो रहा सरीर मंह, पांख जरे तन थाक।।

शब्दार्थ- अस = ऐसा। **बाउर** = बावला सा। **दगधै** = जलाता है। **रामा** = नारी, नागमती। **हरि** = तोता। **पिय नामा** = पति के नाम पर। **मैन मारी** = कामदेव से घायल हो चुकी। **हहरि** = हाहाकार करना। **पैन डोलावहिं** = हवा करती है। **चोला** = कपड़े। **पहरक** = एक पहर के बाद। **पयान** = निकलना। **पाथिक कै भाखा** = चातक पक्षी की भाषा। **हांक** = आवाज। **पांख** = पंख। **थाक** = रह गये।

प्रसंग - व्याख्येय पद्य खंड सूफी काव्य शिरोमणि मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' महाकाव्य के 'नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है। हीरामन तोते से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रत्नसेन उसे प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है तथा बहुत समय बीत जाने के पश्चात् भी वह वापस नहीं लौटता अवतरित पद्यांश में अपने प्रियतम के वियोग में नागमती की दयनीय अवस्था का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि

व्याख्या - प्रिय रत्नसेन के वियोग से नागमती बावली सी हो गई थी और वह अपने मुख से सदैव पपीहे की भांति 'पिउ पीउ' (प्रिय-प्रिय) पुकारने लगी। उस बेचारी नारी को कामदेव (कामवासना) और अधिक जला रहा था क्योंकि तोता उसके पति के नाम पर उसका प्राण ही ले गया उसे विरह का ऐसा बाण लग चुका है कि वह हिल भी

नहीं सकती अर्थात स्तब्ध रह गयी है तथा उसके खून से ही निकलने वाले पसीने से शरीर की चोली भी भीग गयी है। उसकी एक सखी ने देखा कि वह कामदेव से घायल होकर अब हृदय से भी हार गयी है और हाहाकार करती हुई नागमती अब अपने प्राणों को त्याग देगी। उसे एक क्षण के लिए श्वास पेट में आता है फिर क्षण भर के लिए चला जाता है तब उसकी सखियों में निराशा होने लगती है। अत: उसकी सखी उसे हवा करती है कभी उसके कपड़ों को गीला करती है। तब कहीं एक पहर के बाद वह नागमती मुख से बोलती है कि अब मेरे प्राण निकलने वाले हैं। इन्हें कौन रोक सकता है ? अब मुझे चातक की भाषा (पिउ) अर्थात प्रिय से कौन मिलाएगा? उसने विरह की ऐसी आह भरी कि उसकी आवाज से अग्नि उठने लगी। अत: शरीर में जो हसं प्राण रूपी था उसके पंख जल गये। अत: शरीर में जो हंस प्राण रूपी था उसके पंख जल गये अत: वह शरीर के अंदर ही रह गया।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद्यावतरण में नागमती की विरहावस्स्था की मार्मिक दशा का चित्रण है

2. नागमती एक प्रोषित्पतिका नायिका के रूप में अंकित है।
3. 'पिउ......पीऊ' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. 'पपिह............पीऊ' में उपमा अलंकार है।
5. 'पीउ' शब्द के दो अर्थ प्रयुक्त होने से श्लेष अलंकार है।
6. 'विरह-वान' में रूपक अलंकार है।
7. 'प्राण........भाखा' में वक्रोक्ति अलंकार की छटा है।
8. 'हंस' आत्मा या प्राण तत्व का प्रतीक है।

7. लाग कुआर नीर जग घटा। अबहुं आउ पिउ परभूमि लटा॥
तोहि देखे पिउ यलुहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया॥
उए अगस्ति हस्ति धन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा॥
चित्र मीत मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा॥
स्वाति बूंद चातिक मुख परे। सीप समुंद मोति लै भरे॥
सरवर संवरि हंस चलि आए। सारस कुलरहिं खंलन देखाए॥
भए अवगास कांस बन फूले। कंत न फिरे बिंदेसहि भूले॥
विरह हस्ति तन सालै, धाइ करै तन चूर।
बेगि आई पिय बाजहु, गाजहु होई सदूर॥

शब्दार्थ-परभूमि = पराई भूमि, विदेश। **लटा** = वापिस आओ। **पलहै** = प्रसन्न होना। **उत्तरा** = फिर गया, उत्तरा नक्षत्र। **माया** = दया। **अगस्त** = नक्षत्र का नाम। **तुरै** = घोड़े। **पलानि** = चलने लगे, प्रयाण करने लगे। **चित्राभीत** = चित्र नक्षत्र का नाम। **अवगास** = समतल मैदान। **कंत** = पति। **बाजुह गाजाऊ** = आकार गर्जना करो। **सदूर** = सिंह, शार्दूल।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य खण्ड सूफी काव्य के प्रमुखतम कवि 'जायसी' कृत 'पद्मावत' नामक महाकाव्य के 'नागमती-वियोग खंड' से उद्धृत है। इस खंड में पद्मावती को प्राप्त करने निकले पति रत्नसेन के वियोग में नागमती की विरहावस्था का चित्रण बारहमासा पद्धति पर हुआ है। अवतरित पद्यांश में प्रियतम के वियोग से कुवार के असह्य प्रभाव से पीड़ित नागमती अपने दुखों को अभिव्यक्त करते हुए कर रही है।

व्याख्या – वियोग की वेदना को सहन करते-करते आखिर कुआर का महीन लग गया है। वर्षा का जल अब धीरे-धीरे कम होने लगा है और अब तो आने-जाने के सभी मार्ग खुल गए हैं। अत: विदेश में रहने वाले प्रियतम। अब तो शीघ्र वापिस आ जाओ। हे प्रिय! तुम्हें देखकर मेरे शरीर में प्रसन्नता आ जाएगी अर्थात मैं तन-मन से सुखी हो

जाऊंगी। आपका चित्त मुझसे क्यों उतर गया है? उत्तरा नक्षत्र लग गया है। अत: शीघ्र आ कर मुझसे प्रीति करो। अगस्त नक्षत्र धीरे-धीरे चमकने लगे हैं। हाथी के समान बादल गरजना करने लगे हैं। राजा युद्ध के लिए घोड़ों पर चढ़ने लगे हैं। चित्रा नक्षत्र का मित्र चन्द्रमा अब मीन राशि में आ गया है। कोयल ने अपने प्रियतम की पुकार कर उसे प्राप्त कर लिया है। (मैंने ही तुम्हें अभी तक प्राप्त नहीं किया है) चातक पक्षी के मुख में स्वाति नक्षत्र की बूंदें पड़ चुकी हैं। अत: वह भी सुखी है। समुद्र में सीपी भी मोतियों से भर गयी हैं। हंस पक्षी भी सरोवरों का स्मरण करते हुए आ गए हैं। सारस भी क्रीड़ा करने लगे और खंजन पक्षियों के जोड़ें भी दिखाई देने लगे है। अर्थात सभी ओर जोड़ों के मिलन व उनके प्रेम के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। पानी सूखने के कारण अब सारे मैदान समतल दिखाई देने लगे है और उनमें कास के सफेद फूल खिले हुए हैं। इस प्रसन्नता के अवसर पर मेरे प्रियतम ही वापिस नहीं आए। वे विदेश में रहकर मुझे भूले गये हैं।

विरह रूपी हाथी मेरे शरीर को कष्ट दे रहा है और बार-बार खाकर मेरे शरीर का चूरा बना रहा है। हे प्रिय पति! तुम शीघ्र आओ और सिंह बनकर गर्जना करो जिससे यह विरह रूपी हाथ भाग जाए।

विशेष - 1 इन पंक्तियों में नागमती आश्विन मास में अपने प्रियतम के वापिस आने की अभिलाषा करती हुई विरह वेदना अभिव्यक्त करती है।

2. आश्विन मास में प्रकृति के सुंदर वातावरण का वर्णन करके प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है।

3. आश्विन मास में तीन नक्षत्र क्रमपूर्वक रहते है। (क) उत्तरा, (ख) हस्ति, (ग) चित्रा।

4. इस अवतरण में नक्षत्रों, राशि आदि का प्रदर्शन करने से कवि का ज्योतिष विषय का ज्ञान का पता चलता है।

5. 'उत्तरा' शब्द के दो अर्थ होने से यहां श्लेष अलंकार का सौंदर्य है।

12. फागुन पवन झंकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ किंमि सहा।।
तन जस पियर पात भा भोरौं बिरह न रहै पवन होइ झोरा।।
तरिवर झरै झरै वन ढांका। भई फूल फर साखा।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहं भा जग, दून उदासू।।
फागु कहरिं सब चौंचर जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी।।
जौं पै पियहिं जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।।
राति दिवस इहै मन मोरें। लागौ कंत भार होउं तोरें।।
यह तन जारौ छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ, परौं कंत धरै जहं पांउ।।

शब्दार्थ - **सीउ** = शीत। **किमि** = किस प्रकार। **पियर पात** = पीला या सूखा पत्ता। **झोरा** = झोंका। **ढांका** = ढाक। **फर** = फल। **बनाफति** = वनस्पति, वृक्ष आदि। **दून उदासू** = दुगनी उदासीनता। **चांचरि** = एक लोकगीत। **भावा** = अच्छा लगता है। **रोस** = क्रोध। **जारौं** = जला कर। **परौं** = पड़ना। **मकु** = संभवत:। **पांऊ** = चरण।

प्रसंग - प्रस्तुत पद्य खंड सूफी काव्य शिरोमणि 'जायसी' द्वारा 'पद्मावत' नामक महाकाव्य के 'नागमती वियोग खंड' से अवतरित किया गया है। इस खंड में कवि ने पद्मावती को प्राप्त करने के लिए निकले पति रत्नसेन के वियोग में नागमती की विरहावस्था का चित्रण बारहबासा पद्धति पर किया है। माघ महीने में नागमती की दशा का चित्रण करने के पश्चात् अवतरित पंक्तियों में कवि ने फाल्गुन माह में उसकी विरहावस्था का चित्रण किया है।

व्याख्या - नागमती पति को याद करती हुई कहती है कि अब तो फाल्गुन महीने में शीतल वायु के तेज झोंके चलने लगे हैं जिससे शीत चार गुनी हो गयी हैं उसे नागमती कैसे सहन कर सकती है? नागमती कहती है मेरा शरीर पीले या सूखे पत्ते के समान दुर्बल हो गया है। विरह के कारण यह दुर्बल शरीर भी नहीं रहेगा क्योंकि वायु का झोंका

इसे उड़ा देगा। वायु के कारण वृक्षों से पत्ते झड़ने लगे हैं और वन में ढाक भी झड़ने लगा है। फूलों और फलों से लदी रहने वाली शाखाओं पर अब पत्ते भी नहीं है। इस दशा में भी (नई कलियां आने के कारण) वनस्पति (वृक्षादि) तो उल्लास से भर गये हैं अर्थात उनमें नई खुशियां व्याप्त हो गई हैं परंतु मेरे लिए तो यह संसार दुगुनी उदासीनता से भर गया है। मेरे आसपास की सभी स्त्रियां व पुरुष अपनी-अपनी जोड़ी बनाकर सभी लोकगीत गाते हुए फाग का उत्सव मना रहे है। परंतु मेरे हृदय में तो इतनी अधिक वेदना है कि मानो किसी ने होली जला दी हो। यदि मेरे प्रियतम को मेरा इस प्रकार जलकर मरना अच्छा लगता है तो मुझे भी जल-जलकर मरने में किसी प्रकार का क्रोध नहीं आएगा परंतु रात-दिन मेरे मन में तो यही आता है कि हे प्रिय! मैं राख होकर भी अर्थात नष्ट होकर भी तुम्हारे थाल जैसे विशाल वक्ष अथवा हृदय से ही लग जाऊं या तुम्हें प्राप्त कर हृदय से लगाए रखूं।

नागमती पुनः कहती है कि मैं तो इस शरीर को जलाकर राख बना लूं और वायु से कहूं कि मुझे उड़ा ले जाए ताकि मेरी राख उस मार्ग में जाकर पड़े जहां मेरे प्रियतम अपने चरण रखें।

विशेष -1 प्रस्तुत पंक्तियों में नागमती की फाल्गुन मास से उद्दीप्त विरह वेदना का चित्रण किया गया है जबकि प्रियतम से मिलने की तीव्र आकांक्षा रखती है।

2. 'फाल्गुन........झारो' में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है।
3. 'तखिर...........हुलासू' में प्रकृति का आलम्वन रूप में वर्णन किया गया है।
4. 'जाइ कि मिसहा' में वक्रोक्ति अलंकार का सौंदर्य है।
5. 'तन........भोरा' में उपमा अलंकार की छटा है।
6. 'मोहि.........होरी' तथा 'यह तन......पाउ' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

17. **रोइ गैवाएउ बारह मासा। सहस सहस दुख एक-एक सांसा।।**
तिल तिल बरिस बरिस बस जाई। पहर-पहर जुग जुग न सिराई।।
सो न आउ पिय रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग सो नारी।।
सांझ भए झुरि पैंथ हेरा। कौनु सो धरी करै पिउ फेरा।।
दहि कोइल भै कंत सनेहा। तोला मांस रहा नहिं तेहा।
रकत न रहा विरह तन गया। रती रती होइ नैनन्हि डरा।।
रकल न रहा चेरी बनि हाहा। चूरा नेहु जुडा वहु नाहा।
बरिस देवस धनि रोइ के हारि परी चित झंखि।
मानुस घर घर पूंछि के पूंछै निसरी पंखि।।

शब्दार्थ- गेवाएउ = पूरे कर दिए अथवा गवां दिए। **सहस**= सहस्त्र, हजार। **तिल** = क्षण। **पहर** = प्रहर। **सिराई** = समान। **सो न** = सोना, वह नहीं। **पिय रूप**= पति रूपी, सुन्दर रूप। **सोहाग** = सौभाग्य, सुहागा। **सो नारी** = वह स्त्री, सुनारिन। **झंखि** = पछताना। **गरा** = गल गया। **रती-रती** = थोड़ा-थोड़ा। **नेहू** = प्रेम। **चेरी** = दासी। **पंखि** = पक्षी।

प्रसंग - प्रस्तुत पद्य खंड 'मलिक मुहम्मद जायसी' द्वारा प्रणीत सूफी काव्य 'पदमावत' के 'नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है। इस खंड में कवि ने नागमती की विरहावस्था का बारहमासा पद्धति पर चित्रण किया है। इस पद से पहले बारहों महीनों में नागमती की दशा का वर्णन करने के पश्चात प्रस्तुत पंक्तियों में उस पूरी अवधि की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कवि कहता है।

व्याख्या - नागमती ने पति के वियोग में रोते हुए किसी प्रकार बारह मास तो पूरे कर दिये। इस अवधि में उसे एक-एक सांस में हजारों दुखों का अनुभव होता था। वियोग में एक-एक क्षण उसे वर्षो लंबे प्रतीत हो रहे थे और एक-एक पहर का समय युग-युग से भी अधिक ज्ञात हो रहा था। अर्थात नागमती को पति के बिना समय काटना बहुत

कठिन हो रहा था फिर भी कृष्ण के समान सुंदर रूप वाला उसका प्रियतम नहीं आया जिसे प्राप्त करके वह नागमती सुहागिनी बन गयी थी। इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है जिस प्रकार कोई सुनारिन सोने को सुदंरता तभी प्रदान करती है जब उसमें सुहागा डाल दिया जाता है उसी प्रकार वह नागमती अपने सौभाग्य को तभी प्राप्त कर सकती है जब उसका प्रियतम आ जाये। जैसे ही संध्या का समय होता था वह अत्यंत उदास होकर प्रियतम के आगमन का मार्ग देखती थी अथवा प्रतीक्षा करती थी कि वह कौन सी घड़ी (समय) होगी जब प्रिय वापस आएंगे। पति के स्नेह की पीड़ा से वह जलकर कोयला हो गयी अर्थात बहुत काली पड़ गयी उसके शरीर में एक तोला भर मांस भी नहीं रहा। अर्थात सम्पूर्ण मांस समाप्त हो गया और अब उसमें रक्त भी नहीं रहा तथा विरह से समस्त शरीर गल गया। थोड़ा-थोड़ा करके रक्त नेत्रों के आंसुओं के रूप में निकल गया। वह दीन भरे स्वर में कहने लगी कि हे नाथ! तुम्हारी यह दासी दुख से भरकर पैर पकड़ती है और हाथ जोड़ती है तथा प्रार्थना करती है कि मेरा प्रेम तो वियोग में चूर-चूर हो गया है उसे फिर से जोड़ दीजिए अर्थात मेरे विरह को दूर कीजिए।

इस प्रकार एक वर्ष के सभी दिन उस नागमती ने रो-रोक बिता दिए और मन में पछता करके वह निराश हो गयी। घर-घर जाकर उसने मनुष्यों से पति के बारे में पूछा और जब उसे वहां से कोई उत्तर न मिला तो वह वन के पक्षियों से पति के विषय में पूछने के लिए चल दिया।

विशेष 1. इन पंक्तियों में पति के वियोग में नागमती की मार्मिक दशा और असहा पीड़ा को व्यक्त किया गया है।

2. 'सहस-सहस' 'एक-एक' 'तिल-तिल' 'बरिस-बरिस' 'पहर-पहर' 'हा-हा' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार की छटा है।

3. 'सहस...........सिराई' 'दहि.........ढरा' में अतिश्योक्ति अलंकार है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) जायसी का पूरा नाम बताओं।

(2) जायसी की प्रसिद्व रचना का नाम लिखों।

(3) पदमावत के प्रमुख पात्रों के नाम लिखों।

21.4 सारांश

उपुर्यक्त अध्याय में जायसी के पद्मावत का अध्ययन किया गया जिसमें उन्होंने राजा रत्नसेन और पद्मावती, राजा रत्नसेन और नागमती के प्रेम और विरह का वर्णन किया गया है। नागमती का विरह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि कहा गया है।

21.5 कठिन शब्दावली:

पून्यो तिथि = पूर्णिमा की तिथि। **पाल** = तट गढ़ी गई-खड़ी हो गई। **विचारी** = विचार करना। **चढहि** = चढ़कर। **हिंडोरी** = हिंडोल। **रहब** = रहना पड़ेगा। **खोंपा** = बालों का गुच्छा। **भूति** = भूल गया। **केलि** = क्रीड़ा। **मझ नीरा** = सरोवर के जल के अंदर।

21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) उत्तर - मलिक मुहम्मद जायसी।

(2) उत्तर - पदमावत

(3) उत्तर - पदमावती, राजा रत्नसेन, नागमती।

21.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) रामचन्द्र शुक्ल - पदमावत।

(2) निवास शर्मा - जायसी ग्रंथावली।

(3) कमल कुलश्रेष्ठ - मलिक मुहम्मद जायसी।

21.8 सात्रिक प्रश्न

(1) पदमावत का सार अपने शब्दों में लिखों।

(2) नागमती के विरह दशा की स्थिति का चित्रण करों।

(3) पदमावत की विशेषताओं का वर्णन करें।

*****

एम.ए. प्रथम सत्र
हिन्दी

कोर्स कोड : MNIN-101
प्रश्न पत्र–1

मध्यकालीन काव्य

पाठ – 1 से 21

संशोधित : डॉ. मंगत राम

अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त–अध्ययन केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ
समरहिल शिमला –171005

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	कबीरदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1
2.	कबीरदास : साहित्यिक विशेषताएं	10
3.	कबीर : रहस्यवाद	16
4.	कबीर : भक्ति भावना	22
5.	कबीर की भाषा शैली	28
6.	कबीरदास : व्याख्या भाग	35
7.	सूरदास – व्यक्तित्व एवं कृतित्व	41
8.	सूरदास : काव्यगत विशेषताएं	47
9.	सूरदास : काव्य भाषा	53
10.	सूरदास की भक्ति भावना	59
11.	सूरदास : व्याख्या भाग	11
12.	तुलसीदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	75
13.	तुलसीदास : दार्शिनिकता	81
14.	तुलसीदास : काव्य की विशेषताएं	89
15.	तुलसीदास की भक्ति भावना	95
16.	तुलसीदास की समन्वय भावना	101
17	तुलसीदास : व्याख्या भाग	107
18.	मलिक मुहम्मद जायसी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	112
19.	जायसी के काव्य में वर्ण्य वर्णन	123
20.	जायसी के काव्य में अप्रस्तुत विधान	135
21.	जायसी : व्याख्या भाग	148